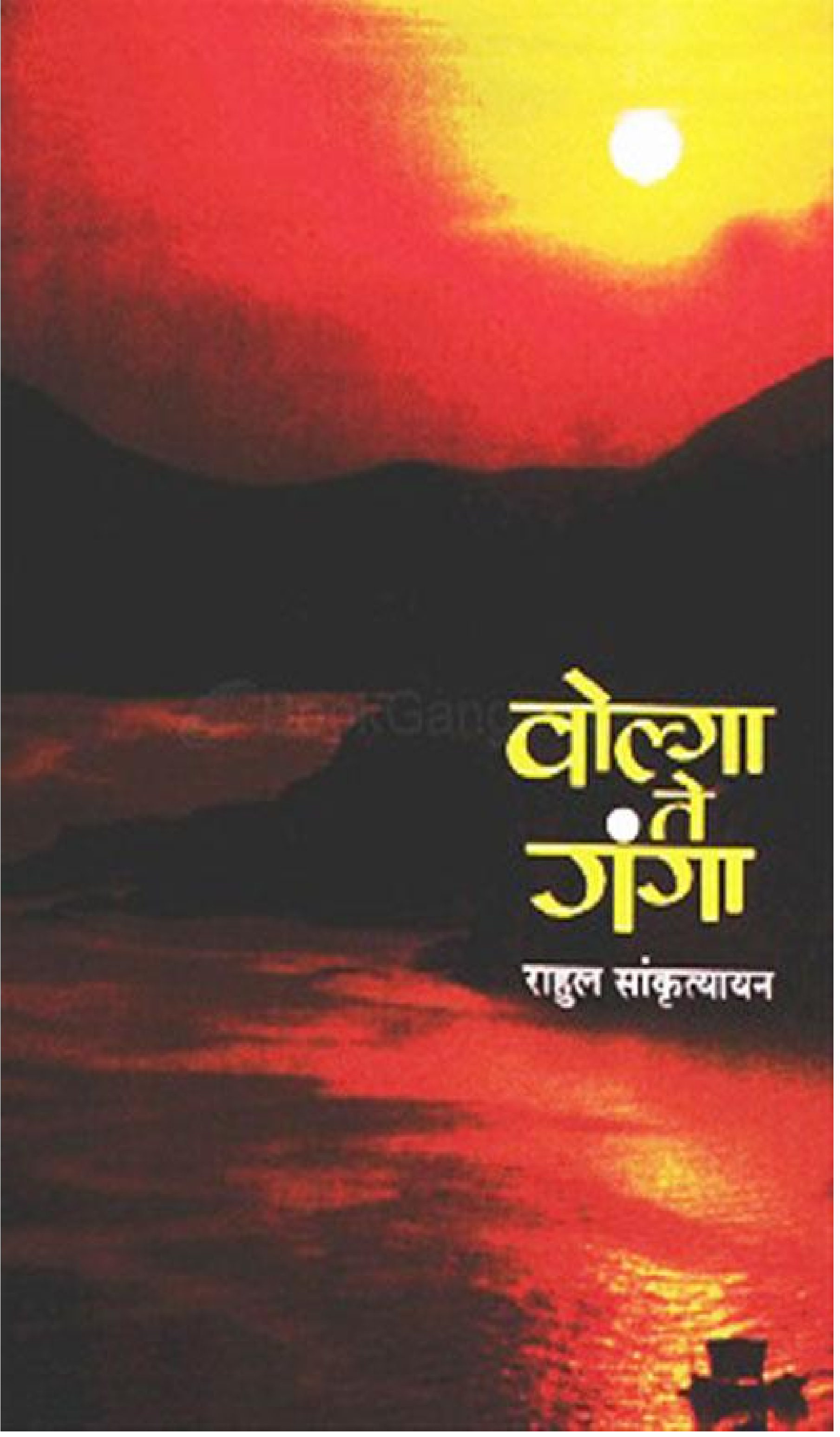
वोल्गा ते गंगा
राहुल सांकृत्यायन

-

श्री राहुलजी द्वारा अब तक संपादित, लिखित और अनूदित ग्रंथ

हिन्दी: १. साम्यवाद ही क्यों? २. बाईसवीं सदी ३. युरोप यात्रा ४ लंका ५. तिब्बतमें सवा वर्ष ६. जापान ७ ईरान ८ लद्दाख यात्रा ९. पुरातत्व निबन्धावली १०. सतमीके बच्चे ११. शैतानकी आँख १२ विस्मृतिके गर्भमें १३. जादूका मुल्क १४ सोनेकी ढाल १५. तिब्बत में बौद्धधर्म १६. कुरान-सार १७. तिब्बत-यात्रा १८. विश्वकी रूपरेखा १९ मानवसमाज २० दर्शन-दिग्दर्शन २१. वैज्ञानिक भौतिकवाद। पाली, संस्कृत और हिन्दी: २२. बुद्धचर्या २३. मज्झिम-निकाय २४. विनयपिटक २५ दीघनिकाय २६ धम्मपद २७. खुद्दकनिकाय; तिब्बती: २८. तिब्बती प्राईमर २९. तिब्बती व्याकरण; संस्कृत: ३०. अभिधर्मकोश: ३१. वादन्यायः सटीकः ३२. विज्ञप्तिमात्रता सिद्धिः ३३. प्रमाण-वार्त्तिकम् ३४. प्रमाणवार्त्तिक वृत्तिः ३६. अध्यर्द्धशतकं ३७. विग्रहव्यावर्त्तनी ३८. प्रमाणवार्त्तिकभाष्यम् ३९. प्रमाण-वार्त्तिकस्ववृत्तिटीका ४०. योगाचारभूमिः ४१. न्यायबिन्दु(?) / लक्षणभगाध्यायः।

मुद्रक—दीक्षित प्रेस, प्रयाग

सूची

विषय	पृष्ठ
१—निशा (६००० ई० पू०)	१
२—दिवा (३५०० ई० पू०)	१६
३—अमृताश्व (३००० ई० पू०)	३३
४—पुरहूत (२५०० ई० पू०)	४८
५—पुरुधान (२००० ई० पू०)	७४
६—अंगिरा (१८०० ई० पू०)	८१
७—सुदास् (१५०० ई० पू०)	९९
८—प्रवाहण (७०० ई० पू०)	११८
९—बंधुल मल्ल (४९० ई० पू०)	१३५
१०—नागदत्त (३३५ ई० पू०)	१५५
११—प्रभा (५० ई० पू०)	१८०
१२—सुपर्ण यौधेय (४२० ई०)	२१२
१३—दुर्मुख (६३० ई०)	२३३
१४—चक्रपाणि (१२०० ई०)	२४९
१५—बाबा नूरदीन (१३०० ई०)	२६७
१६—सुरैय्या (१६०० ई०)	२८५
१७—रेखा भगत (१८०० ई०)	३०३
१८—मंगल सिंह (१८५७ ई०)	३२२
१९—सफ़दर (१९२२ ई०)	३४२
२०—सुमेर (१९४२ ई०)	३६४

प्राक्कथन

मानव आज जहाँ है, वहाँ प्रारम्भमें ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिये उसे बड़े बड़े संघर्षोंसे गुजरना पड़ा। मानव समाजकी प्रगतिका सैद्धान्तिक विवेचन मैंने अपने ग्रन्थ "मानव समाज"मे किया है। इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है, और उससे प्रगतिके समझनेमें आसानी हो सकती है, इसी ख्यालने मुझे "वोल्गासे गंगा" लिखनेके लिये मजबूर किया। मैंने यहाँसे हिन्दी-युरोपीय जातिको लिया है, जिससे भारतीय पाठकोंको सुभीता होगा। मिश्री सुरियानी या सिन्धु-जाति, विकासमें, हिन्दी-युरोपीय जातिसे सहस्राब्दियों पहिले अग्रसर हुई थी, किन्तु उनको लेने पर लेखक और पाठक दोनोंकी कठिनाइयाँ बढ़ जातीं।

मैंने हर एक कालके समाजको प्रामाणिक तौरसे चित्रित करनेकी कोशिशकी है, किन्तु ऐसे प्राथमिक प्रयत्नमे गलतियाँ होना स्वाभाविक है। यदि मेरे प्रयत्नने आगेके लेखकोंको ज्यादा शुद्ध चित्रण करनेमे सहायताकी, तो मैं अपनेको कृतकार्य समझूँगा।

"बन्धुलमल्ल"के (बुद्ध)-काल पर मैंने एक स्वतंत्र उपन्यास "सिंह सेनापति" लिखा है।

सेंट्रल जेल, हजारी बाग
२३—६—४२

राहुल सांकृत्यायन

१—निशा

देश—वोल्गा-तट (ऊपरी), जाति—हिन्दी-योरोपीय,
काल—६००० ईसा-पूर्व।

(१)

दोपहरका समय है, आज कितनेही दिनोंके बाद सूर्यका दर्शन हुआ। यद्यपि इस पाँच घन्टेके दिनमें उसके तेजमे तीक्ष्णता नहीं है, तो भी बादल, बर्फ, कुहरे और झंझाके बिना इस समय चारों ओर फैलती हुई सूर्यकी किरणें देखनेमे मनोहर और स्पर्शसे मनमे आनन्दका संचार करती हैं। और चारों ओरका दृश्य! सघन नील-नभके नीचे पृथिवी कर्पूर-सी श्वेत हिमसे आच्छादित है। चौबीस घन्टेसे हिमपात न होनेके कारण, दानेदार होते हुए भी हिम कठोर हो गया है। यह हिमवसना धरती दिगन्त-व्याप्त नहीं है, बल्कि उत्तरसे दक्षिणकी ओर कुछ मील लम्बी रुपहली टेढ़ी-मेढ़ी रेखाकी भाँति चली गई है, जिसके दोनों किनारोंकी पहाड़ियों पर दूरसे देखनेपर काली वनपंक्ति है। आइए इस वनपंक्तिको कुछ समीपसे देखे। इसमें दो तरहके वृक्ष ही अधिक हैं—एक श्वेत-वल्कलधारी किन्तु आज-कल निष्पत्र भुर्ज (भोजपत्र); और दूसरे अत्यन्त सरल उत्तुंग समकोणपर शाखाओंको फैलाये अति-हरित या कृष्ण-हरित सुईसे पत्तोंवाले देवदारु। वृक्षोंका कितना ही भाग हिमसे ढँका हुआ है, उनकी शाखाओं और स्कंधोंपर जहाँ-तहाँ रुकी हुई बर्फ उन्हें कृष्ण-श्वेत बना आँखोंको अपनी ओर खींचती है।

और! भयावनी नीरवताका चारों ओर अखंड राज्य है। कहींसे न झिल्लीकी झंकार आती है, न पक्षियोंका कलरव, न किसी पशुका ही शब्द।

आओ, पहाड़ीके सर्वोच्च स्थानके देवदारुपर चढ़कर चारो ओर देखें। शायद वहाँ बर्फ, धरती, देवदारुके अतिरिक्त भी कुछ दिखाई पड़े। क्या यहा बड़े-बड़े वृक्ष ही उगते हैं? क्या इस भूमिमे छोटे पौधों, घासोंके लिए स्थान नहीं है? लेकिन इसके बारेमें हम कोई राय नहीं दे सकते। हम जाड़ेके दो भागोंको पारकर अन्तिम भागमे हैं। जिस बर्फमें ये वृक्ष गड़े हुए-से हैं वह कितनी मोटी है, इसे नापनेका हमारे पास कोई साधन नही है। हो सकता है, वह आठ हाथ या उससे भी अधिक मोटी हो। अबकी साल बर्फ ज़्यादा पड़ रही है, यह शिकायत सभीको है।

देवदारुके ऊपरसे क्या दिखलाई पड़ता है? वही बर्फ, वही वन-पंक्ति, वही ऊँची-नीची पहाड़ी भूमि। हाँ, पहाड़ीकी दूसरी ओर एक जगह धुआँ उठ रहा है। इस प्राणी-शब्द-शून्य अरण्यानी में धूमका उठना कौतूहलजनक है। चलो वहाँ चलकर अपने कौतूहलको मिटायें।

धुआँ बहुत दूर था, किन्तु स्वच्छ निरभ्र आकाशमें वह हमें बहुत समीप मालूम होता था। चलकर अब हम उसके नज़दीक पहुँच गये हैं। हमारी नाकमें आगमें पड़ी हुई चर्बी तथा मांस की गन्ध आ रही है। और अब तो शब्द भी सुनाई दे रहे हैं—ये छोटे बच्चों के शब्द हैं। हमें चुपचाप पैरो तथा साँसकी भी आहट न देकर चलना होगा, नहीं तो वे जान जायँगे, और फिर न जाने किस तरहका स्वागत वे खुद या उनके कुत्ते करेंगे।

हाँ, सचमुच ही छोटे-छोटे बच्चे हैं, इनमें सबसे बड़ा आठ साल से अधिक का नहीं है, और छोटा तो एक वर्षका है। आधे दर्जन लड़के और एक घरमें। घर नहीं यह स्वाभाविक पर्वत गुहा है, जिसके पार्श्व और पिछले भाग अन्धकारमें कहाँ तक चले गये हैं, इसे हम नहीं देख रहे हैं, और न देखनेकी कोशिश करनी चाहिए! और सयाने आदमी? एक बुढ़िया जिसके सन जैसे धूमिल श्वेत केश उलझे तथा जटाओं के रूपमें इस तरह बिखरे हुए हैं कि उसका मुँह उनमें ढँका हुआ है।

अभी बुढ़िया ने हाथ से अपने-केशोंको हटाया। उसकी भौंहें भी सफेद हैं, श्वेत चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं, जो जान पड़ती हैं सभी मुँहके भीतर से निकल रही हैं। गुहाके भीतर आगका धुआँ और गर्मी भी है, ख़ासकर जहाँ बच्चे और हमारी दादी है। दादीके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं, कोई आवरण नही। उसके दोनों सूखे-से हाथ पैरोंके पास धरती पर पड़े हुए हैं। उसकी आँखे भीतर धुसी हुई हैं, और हलके नीले रंगकी पुतलियाँ निस्तेज शून्य-सी हैं, किन्तु बीच-बीचमें उनमे तेज उछल जाता है, जिससे जान पडता है कि उनकी ज्योति बिलकुल चली नहीं गई है। कान तो बिलकुल चौकन्ने मालूम होते हैं। दादी लड़कों की आवाज़को अच्छी तरह सुन रही जान पड़ती है। अभी एक बच्चा चिल्लाया, उसकी आँख इधर घूमी। दो बरस-डेढ बरसके बच्चे हैं, जिनमे एक लड़का और एक लड़की, कद दोनोंके बराबर हैं। दोनोंके केश ज़रा-सा पीलापन लिए सफेद हैं, बुढ़िया की भाँति किन्तु ज़्यादा चमकीले, ज़्यादा सजीव। उनका शरीर पीवर पुष्ट, अरुण गौर, उनकी आँखें विशाल, पुतलियाँ घनी नीली। लड़का चिल्ला-रो रहा है, लड़की खड़ी एक छोटी हड्डी को मुँह में डाले चूस रही है। दादीने बुढापे के कम्पित स्वर में कहा—

"अगिन! आ। यहाँ आ अगिन! दादी यहाँ।"

अगिन उठ नहीं रहा था। उस समय एक आठ बरस के लड़के ने आकर उसे गोदमें ले दादीके पास पहुँचाया। इस लड़के के केश भी छोटे बच्चेके से ही पाडु-श्वेत हैं, किन्तु वे अधिक लम्बे हैं, उनमे अधिक लटे पड़ी हुई हैं। उसके आपाद नग्न शरीरका वर्ण भी वैसाही गौर है, किन्तु वह उतना पीवर नहीं है; और उसमें जगह-जगह काली मैल लिपटी हुई है। बड़े लड़केने छोटे बच्चेको दादीके पास खड़ाकर कहा—

"दादी! रोचना ने हड्डी छीनी। अगिन रोता।"

लड़का चला गया। दादीने अपने सूखे हाथोंसे अगिनको उठाया। वह अब भी रो रहा था, उसके आँसुओंसे बहती हुई धाराने उसके

मैले कपोलों पर मोटी अरुण रेखा खींच दी थी। दादीने अगिनके मुँह को चूम-पुचकार कर कहा—'अगिन! मत रो। रोचनाको मारती हूँ"—और एक हाथको नंगी किन्तु वर्षों की चर्बीसे सिक्त फर्शपर पटका। अगिनका "ऊँ-ऊँ" अब भी बन्द न था; और न बन्द थे आँसू। दादीने अपनी मैली हथेलीसे आँसुओं को पोंछते हुए अगिनके कपोलोंकी अरुण पंक्तिको काला बना दिया। फिर रोते अगिन को बहलाने के लिए सूखे चमड़ेके भीतर झलकती हुई ठठरियों के बीच कुम्हड़ेकी सूखी बतियाकी भाँति चर्ममय लटकते स्तनों से लगा दिया। अगिन ने स्तन को मुँहमें डाला, उसने रोना बन्द कर दिया। उसी समय बाहर से बातचीत की आवाज़ आने लगी। उसने शुष्क स्तन से मुँह खींचकर उधर झाँका। किसी की मीठी सुरीली आवाज़ आई—

"अगिन—!—!—!"

अगिन फिर रो उठा। दो जनियों (स्त्रियों) ने सिरपर लाये लकड़ीके गट्ठरको एक कोनेमे पटका। फिर एक रोचनाके पास और दूसरी अगिनके पास भाग गई। अगिनने और रोतेहुए "मा-मा" कहा। माने दाहिने हाथको स्वतन्त्र रखतेहुए दाहिने स्तनके ऊपर साहीके काँटे-से गुथे सफेद बैलके सरोम चमड़े को खोलकर नीचे रक्खा। जाड़ेकी भोजन-कृच्छ्रताके कारण उसके तरुण शरीरपर मास कम रह गया था तो भी उसमें असाधारण सौन्दर्य था। उसके लाल और मैल छुटे स्तनोंपर अरुण-श्वेत छवि, ललाटको बचाते हुए बिखरे हुए लट-विहीन पाडु-श्वेत केश, अल्प-मासल पृथुल वक्ष पर गोल-गोल श्यामल-मुख स्तन, अनुदर कृश-कटि, पुष्ट मध्यम परिमाण नितम्ब, पेशीपूर्ण वर्तुल जंघा, श्रमधावन-परिचित हलाकार पेंडुली। उस अष्टादशी तरुणी ने अगिनको दोनों हाथोंमे उठाकर उसके मुख, आँख और कपोलको चूमा। अगिन रोना भूल चुका था। उसके लाल होंठो से सफेद दँतुलियाँ निकलकर चमक रही थीं, उसकी आँखे अर्धमुद्रित थीं, गालोंमें छोटे-छोटे गढ़े पड़े हुए थे। नीचे गिरे वृषभ-चर्म पर

तरुणी बैठ गई, और उसने अग्निके मुँहमे अपने कोमल स्तनोंको दे दिया। अग्नि अपने दोनों हाथों से पकड़े स्तनको पीने लगा। इसी समय दूसरी नग्न तरुणी भी रोचनाको लिए पास आकर बैठ गई। उनके चेहरोंको देखनेसे ही पता लगजाता था कि दोनों बहने हैं।

(२)

गुहामे उन्हे निभृत बातचीत करते छोड़ हम बाहर आ देखते हैं, बर्फपर चमड़ेसे ढँके बहुत-से पैर एक दिशाकी ओर जारहे हैं। चलो उन्हे पकड़े हुए जल्दी-जल्दी चलें। अभी वह पद-पंक्ति तिरछी हो पारवाली पहाड़ीके जगलमे पहुँची! हम तेज़ीसे दौड़ते हुए बढ़ते जारहे हैं, किन्तु ताज़ी पद-पंक्ति ख़तम होनेकी नही आरही है। हम कभी श्वेत हिमक्षेत्रमे चलते हैं, कभी जंगलमे हो पहाड़ीकी रीढ़को पारकर दूसरे हिम-क्षेत्र, दूसरे पार्वत्य वनको लाँघते हुए बढ़ते हैं। आख़िर नीचेकी ओरसे एक वृक्षहीन पहाड़ीकी रीढ़पर हमारी नजर पड़ी। वहाँ नीचेसे उठती श्वेत हिमराशि नील नभसे मिल रही है, और उस नील नभमे अपने को अंकित करती हुई कितनी ही मानव-मूर्तियाँ पर्वत-पृष्ठकी आड़मे लुप्त होरही हैं। उनके पीछे नील आकाश न होता तो निश्चय ही हम उन्हे न देख पाते। उनके शरीरपर हिम जैसा श्वेत वृष-चर्म है। उनके हाथोंमे हथियार भी सफेद रंगसे रँगे मालूम होते हैं। फिर महान् श्वेत हिमक्षेत्रमे उनकी हिलती-डुलती मूर्तियोको भी कैसे पहचाना जासकता है?

और पास जाकर देखें। सबसे आगे सुपुष्ट शरीरकी एक स्त्री है। आयु चालीस और पचासके बीच होगी। उसकी खुली दाहिनी भुजाको देखनेसे ही पता लगता है कि वह बहुत बलिष्ठ स्त्री है। उसके केश, चेहरे, अंग-प्रत्यग गुहाकी पूर्वोक्त दोनों तरुणियोंके समान किन्तु बड़े आकारके हैं। उसके बाये हाथमें तीन हाथ लंबी भुर्जकी मोटी नोकदार लकड़ी है। दाहनेमे चमड़ेकी रस्सीसे लकड़ीके बेटमे बँधा घिसकर तेज़ किया हुआ पाषाण-परशु है। उसके पीछे-पीछे चार मर्द और दो स्त्रियाँ

चल रही हैं। एक मर्दकी आयु स्त्रीसे कुछ अधिक होगी, शेष छब्बीससे चौदह वर्षके हैं। बड़े मर्दके केश भी वैसेही बड़े-बड़े तथा पाँडु-श्वेत हैं। उसका मुँह उसी रंगकी घनी मूँछ-दाढ़ीसे ढँका हुआ है। उसका शरीर भी स्त्रीकी भाँति ही बलिष्ठ है, उसके हाथोंमें भी वैसे ही दो हथियार हैं। बाकी तीन मर्दों मे दो उसी तरहके घनी दाढी-मूँछोंवाले किन्तु उम्रमें कम हैं। स्त्रियों मे एक बाईस, दूसरी सोलहसे कम है। हम गुहाके चेहरोंको देख चुके हैं, और दादीको भी, सबको मिलानेसे साफ मालूम होता है कि इन सभी स्त्री-पुरुषोंका रूप दादीके साँचे मे ढला हुआ है।

इन नर-नारियोंके हाथके लकड़ी, हड्डी और पत्थरके हथियारों और उनकी गंभीर चेष्टासे पता लग रहा है कि वे किसी मुहिमपर जारहे हैं।

पहाड़ीसे नीचे उतरकर अगुआ—स्त्री—मा कहिए—बाईं ओर घूमती है; सभी चुपचाप उसके पीछे चल रहे हैं। बर्फपर चलते वक्त चमड़ेसे उनके ढँके पैरोंसे ज़रा भी शब्द नहीं निकलरहा है। अब आगेकी ओर लटकी हुई (प्राग्-भार पहाड़) बड़ी चट्टान है, जिसकी बग़लमे कई चट्टानें पड़ीहुई हैं। शिकारियोंने अपनी गति अत्यंत मन्द करदी है। वे तितर-बितर होकर बहुत सजग होगये हैं। वे सारे पैरोंको चीरकर बहुत देर करके एक पैरके पीछे दूसरे पैरको उठाते, चट्टानोंको हाथसे स्पर्श करते आगे बढ रहे हैं। मा सबसे पहले गुहाके द्वार-खुलाव-पर पहुँची है। वह बाहरकी सफेद बर्फको ध्यानसे देखती है, वहाँ किसी प्रकार का पद-चिह्न नहीं है। फिर वह अकेले गुहामें घुसती है, कुछ ही हाथ बढनेपर गुहा घूम जाती है, वहाँ रोशनी कुछ कम है। थोड़ी देर ठहरकर वह अपने आँखोंको अभ्यस्त बनाती है, फिर आगे बढ़ती है। वहाँ देखती है तीन भूरे भालू—मा, बाप, बच्चा—मुँह नीचे किये धरतीपर सोये, या मरे पड़े हैं—क्योंकि उनमें जीवनका कोई चिह्न नहीं दीख पड़ता।

मा धीरेसे लौट आती है। परिवार उसके खिले चेहरेको ही देखकर

भाव समझ जाता है। मा अँगूठेसे कानी अँगुलीको दबाकर तीन अँगुलियोंको फैलाकर दिखाती है। माके बाद दो मर्द हथियारों को सँभाले आगे बढते हैं, दूसरे साँस रोके वहीं खड़े रहकर प्रतीक्षा करते हैं। भीतर जाकर मा भालूके पास जाकर खड़ी होती है। बड़ा पुरुष भालुनीके पास और दूसरा बच्चेके पास। फिर वे अपने नोकदार डंडेको एक साथ ऐसे ज़ोरसे मारते हैं कि वह कोखमे घुसकर कलेजेमे पहुँच जाता है। कोई हिलता-डोलता नही। जाड़ेकी छःमासी निद्राके टूटनेमें अभी महीनेसे अधिककी देर है, किन्तु मा और परिवारको इसका क्या पता! उन्हें तो सतर्क रहकर ही काम करना होगा। डंडेकी नोक को तीन चार बार और पेटमें घुसा वे भालूको उलट देते हैं, फिर निर्भय हो उनके अगले पैरों और मुँहको पकड़कर घसीटते हुए उन्हें बाहर लाते हैं। सभी ख़ुशहो हँसते और ज़ोर-ज़ोरसे बोलते हैं।

बडे भालूको चित उलटकर माने अपने चमड़ेकी चादरसे एक चकमक पत्थरका चाक़ू निकाला। फिर घावकी जगहसे मिलाकर पेटके चमड़ेको चीर दिया—पत्थरके चाक़ूसे इतनी सफ़ाईके साथ चमड़ेका चीरना अभ्यस्त और मज़बूत हाथोंका ही काम है। उसने नरम कलेजी का एक टुकड़ा काटकर अपने मुँहमे डाला, दूसरा सबसे छोटे चौदह वर्षके लड़के के मुँहमें। बाक़ी सभी लोग भालूके गिर्द बैठ गये, मा सबको कलेजी का टुकड़ा काटकर देती जारही थी। एक भालूके बाद जब माने दूसरे भालूपर हाथ लगाया, उस वक़्त षोड़शी तरुणी बाहर गई। उसने बर्फका एक डला मुँहमें डाला उसी वक़्त बड़ा पुरुषभी बाहर आगया। उसने भी एक डलेको मुँहमे डाल षोड़शीके हाथको पकड़ लिया। वह ज़रा झिझककर शान्त होगई। पुरुष उसे अपनी भुजामे बाँध एक ओर लेगया।

षोड़शी और पुरुष हाथमे बर्फका बड़ा डला लिये जब भालूके पास लौटे तब दोनोंके गालों और आँखोंमे ज़्यादा लाली थी। पुरुषने कहा—

"मैं काटता हूँ, मा! तू थक गई है।"

माने चाकू पुरुषके हाथमे देदिया। उसने झुककर चौबीस वर्षके तरुणके मुँहको चूमा, फिर उसका हाथ पकड़कर बाहर चली गई।

उन्होंने तीनों भालुओंकी कलेजीको खाया। चार मासके निराहार सोये, भालुओंमे चर्बी कहाँसे रहेगी, हाँ बच्चे भालूका मास कुछ अधिक नरम और सुस्वादु था, जिसमेंसे भी कितनाही उन्होंने खा डाला। फिर थोड़ी देर विश्राम करनेके लिए सभी पास-पास लेट गये।

अब उन्हें घर लौटना था। नर-मादा भालुओंको दो-दो आदमियों ने चमड़ेकी रस्सीसे चारों पैरोंको बाध डंडेके सहारे कंधेपर उठाया और छोटे भालूको एक तरुणीने। मा अपना पाषाण-परशु सँभाले आगे-आगे चल रही थी।

उन जागल मानवोंको दिनके घड़ी-घन्टेका पता तो था नही, किन्तु वे यह जानते थे कि आज चाँदनी रात रहेगी। थोड़ा ही चलनेके बाद सूर्य क्षितिजके नीचे चला गया जान पड़ता था कि वह गहराईमे नहीं गया है, इसीलिए सध्या-राग घटों बना रहा, और जब वह मिटा तब धरती, अबर सर्वत्र श्वेतिमा का राज होगया।

अभी घर-गुहा दूर थी, जबकि खुली जगहमें एक जगह मा एकाएक खड़ी हो कान लगाकर कुछ सुनने लगी। सब लोग चुपचाप खड़े होगये। षोड़शीने छब्बीसे तरुणके पास जाकर कहा—"गुर्र, गुर्र वृक, वृक (मेड़िया)।" माने भी ऊपर-नीचे सिर हिलाते हुए कहा—"गुर्र, गुर्र,वृक। बहुत वृक, बहुत वृक।" फिर उत्तेजनापूर्ण स्वरमे कहा—"तैयार"।

शिकार ज़मीनपर रख दिया गया और सब अपने-अपने हथियारो को सँभाले एक दूसरेसे पीठे सटाकर चारो ओर मुँह किये खड़े होगये। बातकी बातमे सात-आठ मेड़ियोंके झुडकी लपलपाती जीभे दिखलाई देने लगीं, और वे गुर्राते हुए पास आ उनके चारों ओर चक्कर काटने लगे। मानवोंके हाथमे लकड़ीके भाले और पाषाण-परशु देख वे हमला करनेमे हिचकिचा रहे थे। इसी समय लडकेने जो घेरेके बीच

मे था, अपने डडेमे बँधी एक लकड़ी निकालकर कमरसे बँधी चमड़ेकी पतली रस्सीको चढ़ा कमान तैयारकी, फिर न जाने कहाँ छिपाये हुए तीक्ष्ण पाषाण फलवाले वाणको निकाल चौबीसे पुरुषके हाथमें थमा उसे भीतरकर ख़ुद उसकी जगह आ खड़ा होगया। चौबीसे पुरुषने प्रत्यचा को और कसा, फिर तानकर टकारके साथ वाण छोड़ एक भेड़ियेकी कोखमे मारा। भेड़िया लुढक गया, किन्तु फिर सँभलकर जिस वक़्त वह अधाधुन्ध आक्रमण की तैयारी कर रहा था, उसी वक़्त उस पुरुषने दूसरा वाण छोड़ा। अबकी भेड़ियेको घाव करारा लगा था। उसे निश्चल देख दूसरे भेड़िये उसके पास पहुँच गये। पहले उन्होंने उसके शरीरसे निकलते हुए गरम ख़ून को चाटा, फिर उसे काटकर खाने लगे।

उन्हें खानेमें व्यस्त देख, फिर लोगोंने शिकार उठाया और सतर्कताके साथ दौड़ते हुए आगे वढना शुरू किया। अबकी बार मा सबसे पीछे थी, और बीच-बीचमें घूम-घूमकर देखती जाती थी। आज वर्फ़ नहीं पड़ी थी, इसीलिए उनके पैरोंके चिह्न चाँदनी रातमें रास्तेको अच्छी तरह बतला सकते थे। गुहा आध मीलसे कम दूर रह गई होगी कि भेड़ियोंका झुण्ड फिर पहुँच गया। उन्होंने शिकारको फिर ज़मीनपर रख हथियारोंको सँभाला। अबकी धनुर्धरने कई वाण चलाये, किन्तु वह क्षण भर भी एक जगह न ठहरनेवाले भेड़ियोंका कुछ न कर सका। कितनी ही देरकी पैतरेबाज़ीके बाद चार भेड़िये एक साथ षोड़शी तरुणीके ऊपर टूट पड़े। बग़लमे खड़ी माने अपना भाला एक भेड़ियेके पेटमें घुसा ज़मीनपर गिरा दिया, किन्तु बाक़ी तीनने षोड़शीकी जाँघमे चोटकर गिरा दिया और बातकी बातमें उसका पेट चीरकर अँतड़ियाँ बाहर निकाल दीं। जिस वक़्त सबका ध्यान षोड़शीके बचानेमें लगा था, उसी वक़्त दूसरे तीनने पीछेसे खाली पा चौबीसे पुरुषपर हमला किया और बचाव का मौक़ा ज़रा भी दिये बिना ज़मीनपर पटककर उसकी भी लाद फाड़ दी। जब तक लोग उधर ध्यान दे तब

तक षोड़शीको वह पचीस हाथ दूर घसीट लेगये थे। माने देखा, चौबीसा पुरुष भी अधमरे मेड़ियेके पास दम तोड़ रहा है। अधमरे मेड़ियेके मुँहमें किसीने डंडा डाल दिया, किसीने उसके अगले दोनों पैर पकड़ लिये, फिर बाक़ीने मुँह लगाकर मेड़ियेके बहते हुए गरम-गरम नमकीन ख़ूनको पिया। माने गलेकी नाड़ी काटकर उनके काम का और आसान बना दिया। यह सब काम चंद मिनटोंमे हुआ था, लोग जानते थे कि षोड़शी की तुक्का बोटी होनेके बादही मेड़िये हमपर आक्रमण करेंगे। उन्होंने मृतप्राय चौबीमे पुरुषको वहीं छोड़ तीन भालुओं और मरे मेड़ियोंको उठा दौड़ना शुरू किया और वे सही सलामत गुहामें पहुँच गये।

आग धायँ-धायँ जल रही थी, जिसकी लाल रोशनी मे सभी बच्चे तथा दोनों तरुणियाँ सोरही थी। दादीने आहट पातेही काँपती किन्तु गम्भीर आवाजमें कहा—

"निशा—ा-ा! आगई।"

"हाँ" कहकर माने पहले हथियारोंको एक ओर रख दिया, वह चमड़ेकी पोशाक खोल दिगम्बरी बन गई। शिकारको रख उसी तरह बाक़ी सबने भी चर्म-परिधानको हटा आगके सुखमय उष्ण स्पर्शको रोम-रोममें व्याप्त होने दिया।

अब सारा सोया परिवार जाग उठा था। एक मामूली आहट पर जाग जानेके ये लोग बालपनसे ही आदी होते हैं। बहुत सँभालकर ख़र्च करते हुए माने परिवारका अब तक निर्वाह कराया था। हरिन, ख़रगोश, गाय, भेड़, बकरी, घोड़े के शिकार जाड़ा शुरू होने से पहले ही बन्द हो जाते हैं; क्योंकि उसी वक़्त वे दक्षिणके गरम प्रदेशकी ओर निकल जाते हैं। माके परिवारको भी कुछ और दक्षिण जाना चाहिए था, किन्तु षोड़शी उसी वक़्त बीमार पड़ गई। उस समयके मानव-धर्मके अनुसार परिवारकी स्वामिनी माका कर्त्तव्य था कि एक के लिए सारे परिवारकी जानको ख़तरेमें न डाले। किन्तु, माके दिलने कमजोरी

दिखलाई। आज उन्हें एक छोड़ दोको देना पड़ा। अभी शिकारोंके लौटनेमे दो महीने हैं, इस बीचमें देखें और कितनोंको देना होता है। तीन भालू और एक भेड़ियेमे तो उनका, जाड़ा नही कट सकता।

बच्चे बड़े खुश थे, बेचारे खाली पेट लेटे हुए थे। माने पहले उन्हें भेड़ियेकी कलेजी काट-काटकर दी। लड़के हप्-हप् कर खा रहे थे। चमड़ेको बिना नुक़सान पहुँचाये उतारा। चमड़ेका बड़ा काम है। मास काटकर जब दिया जाने लगा, बहुत भूखोंने तो कुछ कच्चा ही खाया, फिर सबने आगके अंगारपर भून-भूनकर खाना शुरू किया। अपने भूने टुकड़ोंमसे एक गाल काटनेके लिए माकी सभी खुशामद-कर रहे थे। माने कहा—'बस, आज पेटभर खाओ, कलसे इतना नहीं मिलेगा।''

मा उठकर गुहाके एक कोनेमे गई, वहाँसे चमड़ेकी फूली हुई झिल्लीको लाकर कहा – 'बस, यही मधु-सुरा है, आज पीयो, नाचो, क्रीड़ा करो।''

छोटोंको झिल्लीसे घूँट-घूँट करके पीनेको मिला, बड़ोंको ज़्यादा-ज़्यादा। नशा चढ़ आया। आँखें लाल हो आईं। हँसीका फिर ठहाका शुरू हुआ। किसीने गाना गाया। बड़े पुरुषने लकड़ीसे लकड़ी बजानी शुरू की, लोग नाचने लगे। आज वस्तुतः आनन्दकी रात थी। माका राज्य था, किन्तु वह अन्याय और असमानताका राज्य नहीं था। बूढ़ी दादी और बड़े पुरुषको छोड़ बाक़ी सभी माकी सन्तानें थीं; और बूढीके ही बड़ा पुरुष तथा मा बेटा-बेटी थे, इसलिए वहाँ मेरा-तेराका प्रश्न नहीं हो सकता था। वस्तुतः मेरा-तेराका युग आनेमे अभी देर थी। किन्तु हाँ, माको सभी पुरुषोंपर समान और प्रथम अधिकार था। चौबीसे पुत्र और पतिके चले जानेसे उसे अफसोस न हुआ हो यह बात नहीं, किन्तु उस समयका जीवन अतीतसे अधिक वर्त्तमान-विद्यमानकी फ़िक्र करता था। माके दो पति मौजूद थे, तीसरा -चौदह साला तैयार हो रहा था। उसके राज्यके रहते-रहते बच्चोंमेंसे

भी न जाने कितने पतिकी अवस्था तक पहुँच सकते थे। मा छब्बीसेको पसद करती थी, इसलिए बाक़ी तीन तरुणियोंके लिए एक वह पचासा पुरुष ही बचा हुआ था।

जाड़ा बीतते-बीतते दादी एक दिन सदाके लिए सोई पड़ी मिली। बच्चोंमेसे तीनको भेड़िये ले गये और बड़ा पुरुष बर्फ़ पिघलनेपर उमड़ी नदीके प्रवाहमे चला गया। इस प्रकार परिवार सोलहकी जगह नौका रह गया।

(३)

वसन्तके दिन थे। चिरमृत प्रकृतिमे नवजीवनका सचार हो रहा था। छः महीनेसे सूखे भुर्ज-वृक्षों पर टूसे पत्ते निकल रहे थे। वर्फ पिघली, धरती हरियालीसे ढँकती जारही थी। हवामे वनस्पति और नई मिट्टीकी भीगी-भीगी मादक गध फैल रही थी। जीवन-हीन दिगन्त सजीव होरहा था। कही वृक्षोंपर पक्षी नाना-भाँतिके मधुर शब्द निकालरहे थे, कहीं झिल्ली अनवरत शोर मचा रही थी, कही हिम-द्रवित प्रवाहोंके किनारे बैठे हज़ारों जलपक्षी कृमि भक्षणमे लगे हुए थे, कहीं कलहस प्रणय-क्रीड़ा कर रहे थे। अब इन हरे पार्वत्य वनोंमे कही झुण्डके झुण्ड हरिन कूदते हुए चरते दिखलाई पड़ते थे, कहीं भेड़े, कहीं बकरियाँ, कही बारहसिगे, कहीं गाये और कहीं इनकी घातमे लगे हुए चीते दुबककर बैठे हुए थे, और कही भेड़िये।

जाड़ेके लिए अवरुद्ध नदीके प्रवाहकी भाँति एक जगह रुक गये मानव-परिवार भी अब प्रवाहित होने लगे थे—अपने हथियारों, अपने चमड़ों तथा अपने बच्चोंको लादे गृह-अग्निको सँभाले अब वे खुली जगहोंमे जारहे थे। दिन बीतनेके साथ पशु-वनस्पतियोंकी भाँति उनके भी शुष्क चर्मके नीचे मास और चर्बीके मोटे स्तर जमने जारहे थे। कभी उनके लबे केशवाले बड़े-बड़े कुत्ते भेड़ या बकरी पकड़ते, कभी वे स्वय जाल, बाण या लकड़ीके भालेसे किसी जन्तु

को मारते। नदियों में भी मछलियाँ थीं, और इस वोल्गाके ऊपरी भाग के निवासियोंके जाल, आज-कल कभी खाली बाहर नहीं आते थे।

रात में अब भी सर्दी थी; किन्तु दिन गर्म था, और निशा-परिवार (मा का नाम निशा) आज-कल कई दूसरे परिवारोंके साथ वोल्गा के तटपर पड़ा हुआ था। निशाकी भाँतिही दूसरे-परिवारोंपर भी उनकी माताओंका शासन था, पिताका नहीं। वस्तुतः वहाँ किसका पिता कौन है, यह बतलाना असम्भव था। निशाके आठ पुत्रियाँ और छः पुत्र पैदा हुए, जिनमें चार लड़कियाँ और तीन पुत्र अब भी उसकी पचपन वर्षकी अवस्थामें मौजूद हैं। इनके निशा-सन्तान होनेमें सन्देह नहीं, क्योंकि इसके लिए प्रसवका साक्ष्य मौजूद है; किन्तु उनका बाप कौन है, इसे बताना संभव नहीं है। निशाके पहले जब उसकी मा—बूढ़ी दादी—का राज्य था, तब बूढ़ी दादी—उस वक्त प्रौढ़ा—के कितने ही भाई-पति, कितने ही पुत्र-पति थे, जिन्होंने कितनी ही बार निशाके साथ नाचकर गाकर उसके प्रेमका पात्र बननेमें सफलता पाई थी, फिर स्वयं रानी बन जानेपर निशाकी निरन्तर बदलती प्रेमाकांक्षा-को उसके भाई या सयाने पुत्र ठुकरानेकी हिम्मत नहीं रखते थे। इसी-लिए निशाकी जीवित सातों सन्तानोंमें किसका कौन बाप है, यह कहना असंभव है। निशाके परिवारमें आज वही सबसे बड़ी-बूढ़ी—और प्रभुताशालिनी भी—है; यद्यपि यह प्रभुता देर तक रहनेवाली नहीं है। वर्ष-दो वर्षमें वह स्वयं बूढ़ी दादी बननेवाली है, और तब सबसे बलिष्ठ निशा-पुत्री लेखा का राज्य होनेवाला है। उस वक्त लेखाकी बहनोंका उससे झगड़ा ज़रूर होगा। जहाँ हर साल परिवारके कुछ आदमियो को भेड़िये या चीतेके जबड़ों, भालूके पंजों बैलके सींगों, वोल्गाकी बाढ़ोंकी भेंट चढ़ना है, वहाँ परिवारको क्षीण होनेसे बचाना हर रानी माताका कर्त्तव्य है। तो भी ऐसा होता आया है, हम जानते हैं कि लेखाकी बहनोंमेंसे एक या दो अवश्य स्वतंत्र परिवार क़ायम करनेमें

समर्थ होगी। यह परिवार-वृद्धि तभी रुकती, यदि अनेक वीर्यके एक क्षेत्र होनेकी भाँति अनेक रजका भी एक वीर्य-क्षेत्र होता।

परिवारकी स्वामिनी निशा अपनी पुत्री लेखाको शिकारमें बहुत सफल देखती है। वह पहाड़ियोंपर हरिनोंकी भाँति चढ़ जाती है। उस दिन एक चट्टानपर, बहुत ऊँचे ऐसी जगह एक बड़ा मधुछत्र दिखाई पड़ा, जहाँ रीछ (मध्वद) भी उसे खा नहीं सकता था। लेकिन, लेखा ने लट्ठे पर लट्ठे बाँधे फिर छिपकली की भाँति सरकते हुए रातको उसने मशालसे छत्तेकी विषैली बड़ी-बड़ी मधु-मक्खियों को जलाकर उसमें छेदकर दिया। नीचेके चमड़ेके कुप्पेमें तीस सेर से कम मधु नहीं गिरा होगा। लेखाके इस साहसकी तारीफ़ सारा निशा-परिवारही नहीं पडोसी-परिवार भी कर रहा था। किन्तु निशा उससे संतुष्ट नहीं थी। वह देख रही थी, तरुण निशा-पुत्र जितना लेखा के इशारे पर नाचनेके लिए तैयार है, उतना उसकी प्रार्थनाको सुनना नहीं चाहते, यद्यपि वे अभी निशा की खुल्लम-खुल्ला अवैज्ञा करनेका साहस नहीं रखते।

निशा कितने ही दिनोंसे कोई रास्ता सोच रही थी। कभी उसे ख़याल होता लेखाको सोतेमें गला दबाकर मारदे, किन्तु वह यह भी जानती थी कि लेखा उससे अधिक बलिष्ठ है, वह अकेली उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यदि वह दूसरेकी सहायता लेना चाहे, तो क्यों कोई उसकी सहायता करेगा? परिवारके सभी पुरुष लेखाके प्रणय-पात्र कृपा पात्र बनना चाहते थे। निशाकी पुत्रियाँ भी माका हाथ बँटानेके लिए तैयार न थीं, वे लेखासे डरती थीं। वे जानती थीं कि असफल होनेपर लेखा बुरी तरहसे उनके प्राण लेगी।

निशा एकान्तमें बैठी कुछ सोच रही थी। एकाएक उसका चेहरा खिल उठा—उसे लेखाको परास्त करनेकी कोई युक्ति सूझ पड़ी।

पहरभर दिन चढ़ आया था। सारे परिवार अपने-अपने चमड़े के तम्बुओंके पीछे नंगे लेटे या बैठे धूप ले रहे थे, किन्तु निशा तम्बू

के सामने बैठी थी। उसके पास लेखाका तीन वर्षका पुत्र खेल रहा था। निशाके हाथमे दोनेमें लाल-लाल स्ट्रावरीके फल थे। वोल्गाकी धारा पाससे बह रही थी और निशाके सामने सीधे खड़े अरार तक ढालू ज़मीन थी। निशाने एक फल लुढकाया, लड़का दौड़ा और उसे पकड़कर खा गया। फिर दूसरेको लुढ़काया, उसे थोड़ा और आगे जाने पर वह पकड़ सका। निशाने जल्दी-जल्दी कितने ही फल लुढका दिये, बच्चेने उन्हें पकड़नेके लिए इतनी जल्दीकी कि एक बार उसका पैर अरारसे फिसल गया और वह धमसे वोल्गाकी तेज़ धारामें जा गिरा। निशा वोल्गाकी ओर नज़र दौड़ाये चीख उठी। कुछ दूरपर बैठी लेखाने देखा। पुत्रको न देख वह धारकी ओर झपटी। उसका पुत्र धारमें अभी नीचे-ऊपर हो रहा था। उसने छलाग मारी और पुत्रको पकड़ लेनेमे सफल हो गई। बहुत पानी पी जानेसे बच्चा शिथिल हो गया था। वोल्गा का वर्फ़ीला जल शरीरमें काँटे की तरह चुभ रहा था। लेखाको धार काटकर किनारेकी ओर बढना मुश्किल था। उसके एक हाथमें बच्चा था, दूसरे हाथ और पैरोंसे वह तैरनेकी कोशिशकर रही थी। उसी वक़्त अपने गलेको उसने किसीके मजबूत हाथोंमें फँसा देखा। लेखाको अब समझनेमे देर न लगी। वह देरसे निशाकी बदली हुई मनोवृत्तिको देख रही थी। आज निशा अपने राहके इस काँटे—लेखा—को निकालना चाहती है। लेखा अब भी निशाको अपना बल दिखला सकती थी; किन्तु उसके हाथमें बच्चा था। निशाने लेखाको ज़ोर लगाते देख अपनी छातीको उसके शिरपर रख दिया। लेखा एक बार डूब गई। छटपटानेमें उसका बच्चा हाथसे छूट गया। अब भी निशाने उसे वेक़ाबू कर रक्खा था। एकाएक उसका हाथ निशाके गलेमे पड़ गया। लेखा बेहोश थी और निशा उसके बोझके साथ तैरनेमें असमर्थ। उसने कुछ कोशिश की, किन्तु बेकार! दोनों एक साथ वोल्गा की भेंट हुईं।

परिवारकी बलिष्ठ स्त्री रोचना निशा-परिवारकी स्वामिनी बनी।

२—दिवा

देश —वोल्गा-तट (मध्य), जाति —हिन्दी-स्लाव,
काल —३५०० ई० पू० ।

'दिवा ! धूप तेज है, देख तेरे शरीरमें पसीना। आ, यहाँ शिलापर बैठें ।'

'अच्छा, सूरश्रवा-ा-ा-!' कह दिवा सूरश्रवाके साथ एक विशाल देवदारुकी छायामें शिला-तलपर बैठ गई।

ग्रीष्मका समय, मध्याह्नकी वेला फिर मृगके पीछे दौड़ना, इसपर भी दिवाके ललाटपर श्रमबिन्दु अरुण मुक्ताफलकी भाँति झलकें, यह कैसे होसकता था ? किन्तु यह स्थान ऐसा था, जहाँ उनके श्रमके दूर होनेमे देरी नही लग सकती थी। पहाड़ी नीचेसे ऊपर तक हरियालीसे लदी हुई थी। विशाल देवदारु अपनी शाखाओं और सूची-पत्रोंको फैलाये सूर्यकी किरणोंको रोके हुए थे। नीचे बीच-बीचमें तरह-तरहकी बूटियाँ, लताएँ और पौधे उगे हुए थे। जरा सा बैठनेके बाद ही तरुण-युगल अपनी थकावटको भूल गये; और आस-पास उगे पौधोंमे रंग-बिरंगे फूल और उनकी मधुर गन्ध उनके मनका आकर्षण करने लगी। तरुणने अपने धनुष-बाण और पाषाण-परशुको शिलापर रख दिया, और पासमे कल-कल बहते स्फटिक स्वच्छ जल-स्रोतके किनारे उगे पौधोंसे सफेद, बैंगनी, लाल फूलों को चुनना शुरु किया। तरुणीने भी हथियारोंको रख अपने लम्बे सुनहले केशोंमें हाथ डाला, अभी भी उनकी जड़ें आर्द्र थीं। उसने एक बार नीचे प्रशान्त प्रवाहिता वोल्गाकी धाराकी ओर देखा फिर पक्षियोंके मधुर कलरवने उसका ध्यान क्षण भरके लिए अपनी ओर आकर्षित किया, और उसने

झुककर फूल चुनते तरुणपर नजर डाली। तरुणके भी वैसे ही सुनहले केश थे, किन्तु तरुणी अपने केशोंसे तुलना नहीं कर सकती थी; वह उसे अधिक सुन्दर जान पड़ते थे। तरुण और तरुणीका मुख घने पिंगलश्मश्रु-से ढँका हुआ था, जिसके ऊपर उसकी नासा, कपोल-भाग और ललाटकी अरुणिमा दिखलाई पड़ती थी। तरुणीकी दृष्टि फिर सूरकी पुष्ट रोमश भुजाओं पर पड़ी। उस वक्त उसे याद आया कैसे सूरने उस दिन एक बड़े दन्तैल सुअरकी कमरको इन्हीं भुजाओंसे पत्थरके फरसे द्वारा एक प्रहारमें तोड़ दिया था। उस दिन यह कितनी कर्कश थीं और आज इन फूलोंको चुननेमें वह कितनी कोमल मालूम होती हैं। किन्तु उसकी मुसुकमें उछलती मुसरियाँ उसके पहुँचेमें उभड़ी नसें बाहुको विषम बनाती अबभी उसके बलका परिचय देती थीं। एक बार तरुणीके मनमें आया, उठकर उन बाहोंको चूम ले; हाँ, इस वक्त वह उसे इतनी प्यारी मालूम हो रही थीं। फिर दिवाकी दृष्टि तरुणकी जाँघों पर पड़ी। हर गतिमें उनकी पेशियाँ कितनी उछलती थीं। सचमुच चर्बीहीन पेशीपूर्ण उसकी जाँघें, पृथु पेंडली और क्षीण घुट्टी दिवाको अनोखेसे मालूम होते थे। सूरने दिवाका प्यार पानेकी कई बार इच्छा प्रकटकी थी; मुँहसे नहीं चेष्टासे। नाचोंमें उसने कई बार अपने श्रम, कौशलको दिखलाकर दिवा-को प्रसन्न करना चाहा था, लेकिन दिवाने जहाँ जनके तरुणोंको कितनी ही बार अपनी बाहें नाचनेको दीं, कई बार अपने ओठ चूमनेको दिये, कई बार उनके अंकोंमें शयन किया, वहाँ बेचारा सूर एक चुम्बन एक आलिंगन, क्या एक बार हाथ मिलाकर नाचनेसे भी वञ्चित रहा।

सूर अंजलीमें फूल भर अब दिवाकी ओर आ रहा था। उसका नग्न सर्वांग कितना पूर्ण था, उसका विशाल वक्ष, चर्बी नहीं पेशीपूर्ण कृश उदर कितना मनोहर था, इसका ख्याल आते ही दिवाको अफसोस होने लगा, उसने क्यों नहीं सूरका ख्याल किया। लेकिन, वस्तुतः इसमें दिवाका उतना दोष न था, दोष था सूरके मुँह पर लगे लज्जाके तालेका। —जिसने दर्वाजा खटखटाया उसके लिए वह खुला।

सूरके पास आने पर दिवाने मुस्कराते हुए कहा—

'कितने सुन्दर कितने सुगन्धित हैं ये फूल !'

सूरने फूलोंको शिलातल पर रखते हुए कहा—'जब मै इन्हें तेरे सुनहरे केशों मे गूँथ दूंगा, तो यह और सुन्दर लगेंगे ।'

'तो सूर ! तू मेरे लिए इन फूलोंको ला रहा है ?'

'हाँ, दिवा । मैंने इन फूलोंको देखा, तुझे देखा, फिर याद आईं जलकी परियाँ ।'

'जलकी परियाँ ?'

'हाँ, बहुत सुन्दर जलकी परियाँ, जो खुश होने पर सारी मन-वाञ्छाओंको पूर्ण कर देती हैं, और नाराज होने पर प्राण भी नहीं छोड़तीं ।'

'तो सूर ? तू मुझे कैसी जल-परी समझता है ?'

'नाराज होने वाली नहीं ।'

'किन्तु मै तुझपर कभी खुश नहीं हुई ।'

दिवा ठण्ढी साँस लेकर चुप हो गई। सूरने फिर दुहराते हुए कहा—

'नहीं दिवा ! तू मुझपर कभी नाराज नहीं हुई। याद हैं बचपन के दिन ?'

'तब भी तू शर्मीला था ।'

'किन्तु तू मुझपर नाराज न होती थी ।'

'तब मै तुझे अपने आप चूमती थी ।'

'हाँ, वह चूमना बहुत मीठा था ।'

'किन्तु जब ये मेरे गोल-गोल स्तन उभड़ने लगे। जब मेरे मुखको सारे जनके तरुण चाहने लगे, तब मैंने तुझे भुला दिया ।'—कह दिवा कुछ खिन्नमना हो गई ।

'लेकिन दिवा ! इसमें तेरा दोष नहीं है ।'

'फिर किसका दोष ?'

'मेरा, क्योंकि सारे जनके तरुण तुझसे चुम्बन माँगते, तू उन्हें चुम्बन देती; सारे जनके तरुण आलिंगन माँगते, तू आलिंगन देती। मृगयामें चतुर, नृत्यमे कुशल, शरीरमें पुष्ट और सुन्दर किसी जन-तरुण की आशाको तूने भंग नहीं किया।'

'किन्तु सूर! तू भी वैसा ही, उनसे भी बढ़कर चतुर, कुशल, पुष्ट, तरुण था और मैने तेरी आशाको भंग किया।'

'दिवा! किन्तु मैने कभी आशा नहीं प्रकटकी।'

'शब्द से नहीं। बचपनमें हम जब साथ खेला करते थे, तब भी तू शब्दसे आशा नहीं प्रकट करता था, किन्तु दिवा समझती थी, और दिवाने सूरको भुला दिया, क्या यह दिवा (दिन) उस चमकते सूर (सूर्य) को कभी भुलाती है? नहीं सूर! अब दिवा तुझे नहीं भुलायेगी।'

'तो मै फिर वही सूर और तू वही दिवा बनेगी।'

'हाँ और मैं तेरे ओंठों को चूमूँगी।'

छोटे बच्चोंकीसी इन नग्न सौंदर्य-मूर्तियोंने अपने अतिरिक्त अधरोंको मिला दिया, फिर दिवाने अपने अलसीके फूल जैसे नीले नेत्रों को सूरके वैसे ही नीले नेत्रोंमें चुभोते हुए कहा—

'और तू मेरी अपनी माँका बेटा, मै तुझे भूल गई!'

'दिवाकी आँखें गीली थीं। सूरने उन्हें अपने गालोंसे पोंछते हुए कहा—

'नहीं, तूने नहीं भुलाया दिवा! जब तू बड़ी हो गई, तेरी वाणी, आँखे और सारे अग कुछ दूसरे जैसे मालूम होने लगे, तो मै तुझसे दूर हटने लगा।'

'अपने मनसे नहीं सूर!'

'तो, दिवा!—'

'नही, कह तू मुझसे अब फिर नहीं शर्मायेगा?'

'नहीं, शर्माऊँगा। अच्छा इन फूलोंको गूँथने दे।'

सूरने एक डठलसे रेशा निकाला, फिर उसमे लाल, सफेद, बैंगनी फूलोंको गूँथना शुरू किया। उसके फूलोंके क्रममें सुरुचि थी। बालों को उसने सँभालकर पीठ पर फैला दिया। गर्मीके दिनोंमें वोल्गा-तीर के तरुण तरुणियाँ अकसर नहाने-तैरनेका आनन्द लेते हैं, इसलिए दिवाके केश साफ सुलझे हुए थे। सूरने बालोंपर तेहरी मेखलाकी भाँति स्रजको सजाया और फिर बीचमें सफेद तथा किनारे पर बैंगनी फूलोंके एक गुच्छेको ललाटके ऊपर केशोंमें खोंस दिया। दिवा शिला-तल पर बैठी रही। सूरने थोड़ा हटकर उसके चेहरेको देखा। उसे वह सुन्दर मालूम हुई। थोड़ा और दूरसे देखा। वह और भी सुन्दर मालूम हुई, किन्तु वहाँ फूलोंकी सुगन्धि न मिलती थी। सूरने पासमें बैठकर अपने गालोंको दिवाके गालोंसे मिला दिया। दिवाने अपने साथीकी आँखें चूम लीं, और दाहिने हाथको उसके कन्धे पर रख दिया। सूरने अपने बाँये हाथसे दिवाकी कटिको लपेटते हुए कहा—

'दिवा ! ये फूल पहलेसे अधिक सुन्दर हैं।'

'फूल या मैं ?'

सूरको कोई उत्तर नहीं सूझा, उसने जरा रुककर कहा—

'मैंने हटकर देखा, तुझे ज्यादा सुन्दर पाया। और हटकर देखा, और सुन्दर पाया।'

'और यदि वोल्गा-तटसे देखता ?'

'नहीं, उतनी दूरसे नहीं।—'

सूरकी आँखोंमें चिन्ताकी झलक उतर आई थी। 'दूरसे तेरी सुगन्धि जाती रहती है, और रूप भी दूरहो जाता है।'

'तो सूर ! तू मुझे दूरसे देखना चाहता है या पास रहना चाहता है ?'

'पास रहना, दिवा ! जैसे दिवाके पास चमकता सूर।'

'आज मेरे साथ नाचेगा सूर ?'

'जरूर।'

'आज मेरे साथ रहेगा?'

'जरूर।'

'सारी रात?'

'जरूर!'

'तो आज मैं जनके किसी तरुणके पास नहीं रहूँगी।' कह दिवाने सूरका आलिंगन किया।

इसी बीच कितने ही शिकारी तरुण-तरुणियाँ आ गईं। उनकी आवाजको सुनकर भी वे दोनों वैसे ही रोम-रोमसे आलिंगित खड़े रहे। उन्होंने पास आकर कहा—

'दिवा! आज तूने सूरको अपना साथी चुना?'

'हाँ!' और मुँहको उनकी ओर घुमाकर कहा—'देखो ये फूल सूरने सजाये हैं।'

एक तरुणी—'सूर! तू फूल अच्छे सजाता है। मेरे केशोंको भी सजा दे।'

दिवा—'आज नहीं, आज सूर मेरा। कल।'

तरुणी—'कल सूर मेरा।'

दिवा—'कल? कल भी सूर मेरा।'

तरुणी—'रोज-रोज सूर तेरा दिवा! यह तो ठीक नहीं।'

दिवाने अपनी गलतीको समझ कर कहा—'रोज-रोज नहीं स्वसर (बहिन)! आज और कल भर।'

धीरे-धीरे कितने ही और प्रौढ़ शिकारी आ गये। एक काला विशाल कुत्ता पास आ सूरके पैरोंको चाटने लगा। सूरको अब अपनी मारी भेड़ याद आई। दिवाके कानमें कुछ कह, वह दौड़ गया।

[२]

लकड़ीकी दीवारों और फूससे छाया एक विशाल झोंपड़ा था। पत्थरके फरसे तेज होते हैं, किन्तु उनसे इतनी लकड़ियोंका काटना संभव नहीं था। उन्होंने लकड़ीके काटनेमें आगसे भी मदद

ली थी, किन्तु पाषाण-परशुओंने काफी काम किया था, इसमें शक नहीं। और इतना बड़ा झोपड़ा! हाँ, इसीमे सारा निशा-जन—निशा नामक किसी पुराने कालकी स्त्रीकी सन्तान—रहता है। सारा जन एक छतके नीचे रहता, एक साथ शिकार करता, एक साथ फल या मधु जमा करता है। सारे जनकी एक नायिका है, सारे जनका संचालन एक समिति करती है। संचालन—हाँ, इस संचालनसे जनके व्यक्तियों के जीवनका कोई अंश छूटा हुआ नहीं है। शिकार, नाचना, प्रेम, घर बनाना, चमड़ेका परिधान तैयार करना सभी कामोंका सचालन जन-समिति (कमेटी) करती है, जिसमे जन-माताओंका प्राधान्य है। निशा-जनके इस झोपड़ेमे १५० स्त्री-पुरुष रहते हैं। तो क्या यह सब एक परिवार है? बहुत कुछ, और अनेक परिवार भी कह सकते हैं, क्योंकि माँ के जीते समय उसकी सन्तानोंका एक छोटा परिवार-सा बन जाता है, ज्यादातर इस अर्थमें कि उसके सारे व्यक्ति उस माँ के नामसे पुकारे जाते हैं—उदाहरणार्थ दिवाकी माँ न रहे और वह कई बच्चोंकी माँ हो जाये, तो उन्हें दिवा-सूनु (दिवा पुत्र) और दुहिता (दिवा-पुत्री) कहेंगे। इतना होने पर भी दिवा की सन्तानकी अपनी सम्पत्ति (मास, फल नहीं होगी। सभी जन—स्त्री, पुरुष दोनों साथ सम्पत्ति अर्जित करता है, साथ उसे भोगता है; न मिलने पर साथ भूखे मरता है। व्यक्ति जनसे अलग अपना कोई अधिकार नहीं रखते। जन-की आज्ञा, जनका रिवाज पालन करना उनके लिए उतना ही आसान मालूम पड़ता है, जितनी अपनी इच्छा।

और झोपड़ा! यह अस्थायी झोपड़ा है। जब आस-पासके शिकार चले जायेंगे, आस-पास कन्द मूल-फल न रहेंगे, तो सारा जन भी दूसरी जगह चला जायेगा। सदियोंके तजर्बेसे उन्हें मालूम है कि किसके बाद कहाँ शिकार पहुँचते हैं। यहाँसे चले जाने पर यह फूस गिर-पड़ जायगा, किन्तु लकड़ी या पत्थरकी दीवारें कई साल तक चली जायेंगी। नई जगह जा इन दीवारोंको वे फूससे ढाँक नया दम (घर) बनावेंगे,

उसमें एक स्थान सामान रखनेका होगा, एक खाना पकानेका—जन हाथसे मिट्टीका बर्तन बनाता है, खोपड़ीको भी बर्तनके तौर पर इस्तेमाल करता है। माँस कभी कच्चा खाता है, कभी ताजेको भूनता है, सूखेको भूनना जन निषिद्ध समझता है। वोल्गाके इस भागके जंगलोंमें मधु बहुत है, इसीलिए मध्वद (मधु-भक्षी रीछ) भी यहाँ बहुत हैं। निशा-जन मधुको बहुत पसंद करता है, मधुके तौर पर भी और सुराके तौर पर भी।

और यह संगीत? हाँ, स्त्री और पुरुष मधुर स्वरसे गा रहे हैं। परिधानके चमड़े को पीटनेमें तो नहीं लगे हुए हैं? जन हर एक कामको सम्मिलित ही नहीं करता, बल्कि उसे मनोरंजक ढंगसे करता है—गीत सम्मिलित कामका एक अंग है, संगीतमें वह कामके श्रमको भूल जाता है। किन्तु, यह गीत कामवाला गीत नहीं मालूम होता। यहाँ एक बार स्त्रियोंके कंठसे सरस कोमल राग निकल रहा है, एक बार पुरुषोंके कंठसे गंभीर कर्कश ध्वनि। चलें देखें।

झोपड़ेमें किन्तु उससे विभक्त उसके एक भागमें जनके नर-नारी-बच्चे, बूढ़े, जवान,—इकट्ठा हुए हैं। बीचमें छत कटी हुई है, जिसके नीचे देवदारुके काष्ठकी आग जल रही है। स्त्री-पुरुष बड़े रागसे कुछ गा रहे हैं। उसमें जो शब्द सुनाई देते हैं, वह हैं—

'ओ-ो-ो-ग्-ग्-न्-ा-ा-आ-ा-या-ा-'

क्या वह इसी अग्निकी प्रार्थना कर रहे हैं? देखो जन-नायिका तथा जन-समितिके लोग आगमें माँस, चर्बी, फल और मधु डाल रहे हैं। अबके जनको शिकार खूब मिले, फल और मधुकी भी बहुतायत रही, पशु तथा मानव शत्रुओंसे जन-सन्तानको हानि नहीं पहुँची; इसी लिए आज पूर्णिमा के दिन जन अग्निदेवके प्रति अपनी कृतज्ञता और पूजा अर्पित कर रहा है। अभी जननायिकाने मधु-सुराका एक चषक (प्याला) आगमें डाला, लोग खड़े हो गये। हाँ, सभी नंगे हैं, वैसे ही जैसे कि पैदा हुए थे। जाड़ा नहीं है, इस गर्मीमें वह अपने चमड़े

को किसी दूसरे चमड़ेसे ढाँकना सौसत समझते हैं। लेकिन, कितने सुडौल हैं इनके शरीर ? क्या इनमे किसीका पेट निकला है ? क्या इनमे किसीके चमड़ेको चर्बीने फुला रखा है ?—नहीं। सौन्दर्य इसे कहते हैं, स्वास्थ्य इसका नाम है। इनके सबके चेहरे बिल्कुल एक जैसे हैं। क्यों न होंगे, ये सभी निशाकी सन्तान हैं, बाप, भाई-पुत्रसे पैदा हुए हैं। सभी स्वस्थ और बलिष्ठ हैं। अस्वस्थ निर्बल व्यक्ति इस जीवनमें, इस प्रकृति और पशु-जगतकी शत्रुतामें जी नहीं सकता।

जन-नायिका उठकर बड़ी शालामे गई। लोग मिट्टीसे लिपे फ़र्श पर बैठ रहे हैं। मधुसुराके कुप्पेके कुप्पे आ रहे हैं। और चषक (प्याले)—किसीके पास खोपड़ीके, किसीके पास हड्डी या सींगके और किसीके दारु-पत्तेके हैं। तरुण-तरुणियाँ, प्रौढ़-प्रौढ़ाएँ, वृद्ध-वृद्धाएँ, विभक्तसे होकर पान-गोष्ठीमें लगे हुए हैं। किन्तु, यह नियम नहीं। कितनी ही वृद्धाएँ समझती हैं कि उन्होंने अपने समयमें जीवनका आनन्द पूरा ले लिया है, अब तरुणोंकी बारी है। कितनी ही तरुणियाँ किन्हीं वृद्धोंको उनके सन्ध्या-कालमें अमृतकी एक घूँट अपने हाथसे पिलाना चाहती हैं। वह देखो दिवाको। उसके पास कितनी ही तरुण-तरुणियाँ बैठी हुई हैं; आज उसका हाथ ऋभुके कन्धे पर है, सूर दमा के साथ बैठा है।

खान, पान, गान, नृत्य और फिर इसी बड़ी शालामें प्रेमी-प्रेमिकाओंका अंक-शयन। सबेरे उठ कुछ स्त्री-पुरुष घरके काम करेंगे, कुछ शिकार करने जायँगे और कुछ फल जमा करेंगे। और गुलाबी गालों वाले इनके छोटे-छोटे बच्चे ? कुछ माँकी गोदमे, कुछ वृक्ष की छायाके नीचे चमड़ों पर, कुछ सयाने बच्चोंकी पीठ या गोदमें, और कितने ही वोल्गाकी रेतकी कूद-फाँदमें रहेंगे।

वृद्ध-वृद्धाएँ अब निशाके राज्यकी अपेक्षा ज्यादा सुखी और संतुष्ट हैं। जन एक जीवित माताका राज्य नहीं, बल्कि अनेक जीवित माताओंके परिवारका एक परिवार एक जन है, यहाँ एक माताका

अकंटक राज्य नहीं। जन-समितिका शासन है, इसीलिए यहाँ किसी निशाको अपनी लेखाको वोल्गामें डुबानेकी जरूरत नहीं।

[३]

दिवा चार पुत्रों और पाँच पुत्रियोंकी माँ है, पैंतालीस वर्षकी आयुमे वह निशा-जनकी जन-नायिका बनाई गई है। पिछले पच्चीस सालोंमें निशा-जनकी संख्या तिगुनी हो गई है। इसके लिये जब कभी सूर दिवाके ओठोंको चूमकर बधाई देता है, तो वह कहती है—यह अग्निकी दया है, यह भग(वान्) का प्रताप है। जो अग्निकी शरण लेता है, जो भग(वान्)की शरण लेता है, उसके चारों ओर मधुकी धारा, इस वोल्गाकी धाराकी भाँति बहती है, उसके दारुओं (वन) में नाना मृग आकर चरते हैं।

निशा-जन जनके लिये बहुत मुश्किल है। निशाजन स्थान बदलते जहाँ जाता, वहाँ पहलेके इतने जगलसे उसका काम नहीं चलता। उसे जन-दम (जन-गृह) ही तिगुना नहीं बनाना पड़ता, बल्कि तिगुने मृगया-क्षेत्रोंको भी लेना पड़ता। आज जिस मृगया-क्षेत्रमें उसने डेरा डाला है, उसके उत्तर उषा-जनका मृगया-क्षेत्र है। दोनों मृगया-क्षेत्रके बीच कुछ अस्वामिक वन है। निशा-जन अस्वामिक वनको ही नहीं उषा-जनके क्षेत्रमे भी शिकार करने कई बार गया। जन-समितिने उषा-जनसे झगड़ा होने की सम्भावनाको देखा, किन्तु उसे कोई उपाय नहीं सूझा। दिवाने जन-समितिमें एक दिन कहा था—'भग(वान्)ने इतने मुँह दिये, उन्हींके आहारके लिए ये बन हैं। इन बनोंको छोड़ इन मुखोंको आहार नहीं दिया जा सकता; इसलिए निशा-जन इन जंगलोंके रीछों, गायों, घोड़ोंको नहीं छोड़ सकता, वैसे ही जैसे इस वोल्गाकी मछलियोंको।'

उषा-जनने निशा-जनको सरासर अन्याय करते देखा। उसकी जन-समितिने कई बार निशा-जन-समितिसे बातचीतकी। समझाया। बतलाया कि 'सनातन' कालसे हमारे दोनों जनोंमें कभी युद्ध नहीं

हुआ, हम हर शरद्में यहीं आकर रहते रहे। किन्तु भूखे मरकर न्याय करनेके लिए निशा-जन कैसे तैयार होता? सब कानून जब विफल हो जाते हैं तो जंगलके कानूनकी शरण लेनी ही पड़ती है। दोनों जन भीतर-भीतर इसके लिए तैयारी करने लगे। एकका पता दूसरेको मिल नहीं सकता था, क्योंकि प्रत्येक जन ब्याह-शादी, जीना-मरना सब कुछ अपने जनके भीतर करता था।

निशा-जनका एक गिरोह दूसरे मृगया-क्षेत्रमें शिकार करने गया, उषा-जनके लोग छिपकर बैठे हुए थे। उन्होंने आक्रमण कर दिया। निशा-जनके लोग भी डटकर लड़े, किन्तु वह तैयार होकर काफ़ी संख्यामें नहीं आये थे। कितने ही अपने मरोंको छोड़, कितने ही घायलोंको लिये वह भाग आये। जन-नायिकाने सुना, जन-समितिने इस पर विचार किया, फिर जन-संसद्—सारे जनके स्त्री-पुरुषों—की बैठक हुई। सारी बात उनके सामने रखी गई। मरोंका नाम बतलाया गया। घायलोंको सामने करके दिखलाया गया। भाइयों-बेटों माओं, बहिनों-बेटियोंने खूनका बदला लेनेके लिए सारे जनको उत्तेजित किया। खूनका बदला न लेना जन-धर्मके अत्यन्त विरुद्ध काम है, और वह जन-धर्म विरोधी कोई काम नहीं कर सकता। जनने तय किया कि मरोंके खूनका बदला लेना चाहिये।

नाचके बाजे युद्धके बाजोंमें बदल गये। बच्चों-वृद्धोंकी रक्षाके लिए कुछ नर-नारियोंको छोड़ सभी चल पड़े। उनके हाथोंमें धनुष, पाषाण-परशु, काष्ठ-शल्य, काष्ठ-मुद्गर थे। उन्होंने अपने शरीरमें सबसे मोटे चमड़ेके कंचुक पहिने थे। आगे-आगे बाजा बजता जाता था, पीछे हथियारबन्द नर-नारी। जन-नायिका दिवा आगे-आगे थी। दूर तक सुनाई पड़ती बाजेकी आवाज, और लोगोंके कोलाहलसे सारी अरण्यानी मुखरित हो रही थी। पशु-पक्षी भयभीत हो यत्र-तत्र भाग रहे थे।

अपने क्षेत्रको छोड़ वह अस्वामिक क्षेत्रमें दाखिल हुए—सीमा-चिन्ह न होने पर भी हरएक जन-शिकारी अपनी सीमाको जानता है

और वह उसके लिए झूठ नहीं बोल सकता। झूठ अभी मानवके लिए अपरिचित और अत्यन्त कठिन विद्या थी। शिकारियोंने अपने जनके पास सूचना पहुँचाई, वह जन-पुर (जनके झोंपड़े) से हथियारबन्द हो निकले। उषा-जन वस्तुतः न्याय चाहता था, वह सिर्फ अपने मृगया क्षेत्रकी रक्षा करना चाहता था, किन्तु उसके अ-मित्र इस न्यायके लिए तैयार न थे। उषा-जनके मृगया-क्षेत्रमें दोनों जनोंका युद्ध हुआ। चकमक पत्थरके तीक्ष्ण फलवाले बाण सन्-सन् बरस रहे थे, पाषाण-परशु खप्-खप् एक दूसरे पर चल रहे थे। वे भालों और मुग्दरोंसे एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। हथियार टूट या छूट जाने पर भट और भटानियाँ हाथों, दाँतों, और नीचे पड़े पत्थरोंसे लड़ रहे थे।

निशा-जनकी संख्या उषा-जनकी संख्यासे दूनी थी इसलिए उस पर विजय पाना उषा-जनके लिए असम्भव था। किन्तु, लड़ना जरूरी था, और तब तक जब तक कि एक बच्चा भी रह जाये। लड़ाई पहर भर दिन चढे शुरू हुई थी। जंगलमें उषा-जनके दो-तिहाई लोग मारे जा चुके थे—हाँ घायल नहीं मारे, जनोंके युद्धमें घायल शत्रुको छोड़ना भारी अधर्म है। बाकी एक-तिहाईने वोल्गाके तट पर लड़ते हुए प्राण दिया। वृद्धों और बच्चों सहित माताओंने दम (घर) छोड़ भागना चाहा, किन्तु अब समय बीत चुका था। निशा-जनके बर्बर नर-नारियोंने उन्हें खदेड़-खदेड़ कर पकड़ा, दूध-मुँहें बच्चोंको पत्थरों पर पटका, बूढों और बूढ़ियोंके गलेमें पत्थर बाँध कर वोल्गामें डुबाया। दमके भीतर रखे माँस फल, मधु, सुरा तथा दूसरे सामानको बाहर निकाल बाकी बचे बच्चों और स्त्रियोंको झोपड़ेके भीतर बन्द कर आग लगा दी। पोरिसों उछलती ज्वालाके भीतर उठते प्राणियोंके क्रंदनका आनन्द लेते, निशा-जनने अग्निदेवको धन्यवाद दिया फिर शत्रु-संचित माँस और सुरासे अपने देव तथा अपनेको तृप्त किया।

जन-नायिका दिवा बहुत खुश थी। उसने तीन माताओंकी छाती से छीनकर उनके बच्चोंको पत्थर पर पटका, जब उनकी खोपड़ीके फटने-

का शब्द होता, तो वह किल-किलाकर हँसती। खान-पानके बाद उसी आगके प्रकाशमें नृत्य शुरू हुआ। दिवा अपने तरुण पुत्र वसुके साथ आज नाच रही थी। दोनों नग्न मूर्तियाँ नृत्यके तालमें ही कभी एक दूसरेको चूमतीं, कभी आलिंगन करतीं, कभी चक्कर काटकर भिन्न-भिन्न नाट्य मुद्रायें दिखलातीं। सब जन जानता था कि आज उनकी जन-नायिका का प्रेम-पात्र वसु बना है, वसु विजयोन्माद-मत्त माताके प्रेमको ठुकराना नहीं चाहता था।

निशा-जनका मृगया-क्षेत्र अब चौगुनेसे अधिक हो गया था, शरदके निवासके लिए उसे बिलकुल चिन्ता न रह गई थी। चिन्ता उसे सिर्फ एक बातकी थी, उषा-जनके मारे गये लोगोंने जो बात जीवित रहते न कर पाई, उसे अब वे मरनेके बाद प्रेत हो करना चाहते थे। उसी जले दमकी जगह प्रेत-पुर बस गया था, जिससे अकेले-दुकेले गुजरना किसी निशा-जनवालेके लिए असम्भव था। कितनी ही बार शिकारियोंने दूर तक फैली आगके सामने सैकड़ों नंगी मूर्तियोंको नाचते देखा था। स्थान-परिवर्तनके समय जनको उधरसे ही जाना पड़ता था, किन्तु उस वक्त वह भारी संख्यामें होता और दिनके उजालेमें जाता था। दिवाने तो कई बार अँधेरेमें दूध-मुँहे बच्चों को जमीनसे उछलकर अपने हाथमें लिपटते देखा, उस वक्त वह चिल्लाकर भाग उठती।

[४]

दिवा अब सत्तरसे ऊपरकी है। अब वह निशा-जनकी नायिका नहीं है, किन्तु अब भी वह उसकी एक सम्माननीय वृद्धा है; क्योंकि २० वर्ष तक जन-नायिका रह उसने अपने बढ़ते हुए जनकी समृद्धिके लिए बहुत काम किया था। इन वर्षोंमें जनको कई बाहरी जनोंसे लड़ना पड़ा, जिसमें उसे भारी जन-हानि उठानी पड़ी, तो भी निशा-जन सदा विजयी रहा। अब उसके पास कई मासोंके लिए पर्याप्त मृगया-क्षेत्र है। दिवाके लिए यह सब भग(भगवान)की कृपासे था, यद्यपि हाथके पटके वे बच्चे अब भी कभी-कभी उसकी नींदको उचाट देते।

जाड़ोंका दिन था। वोल्गाकी धारा जम गई थी और महीनोंके बरसते हिमके कारण वह दूरसे रजत बालुका या धुने कपासकी राशि-सी मालूम होती थी। दूसरी ओर जंगलोंमे शिशिरकी निर्जीवता और स्तब्धता छाई थी। निशा-जनकी संख्या अब और भी ज्यादा थी, इसलिए उसके आहारकी मात्रा भी अधिक होनी जरूरी थी, किन्तु साथ ही उसके पास काम करनेवाले हाथ भी अधिक थे और कामके दिनोंमें वह अधिक मात्रामें आहार-संचय करते। जाड़ोंमे भी सधे कुत्तों-को लिए निशा-पुत्र और पुत्रियाँ शिकारमें कुछ-न-कुछ प्राप्त कर लेतीं। इधर उन्होंने शिकारका एक और नया ढंग निकाला था—चारेके अभावसे हरिन, गाय, घोड़े आदि शिकारके जानवर एक जंगलसे दूसरे जगलको चले जाते थे। निशा-जनने जमीनमें गिरे दानोंको जमते देखा था, इसलिए उन्होंने घासके दानोंको आर्द्र भूमिमें छींटना शुरू किया। इन उगाई घासोंके कारण जानवर कुछ दिन और अटकने लगे।

उस दिन ऋक्षश्रवाके कुत्तेने खरगोशका पीछा किया। ऋक्षश्रवा भी उसके पीछे दौड़ा। पसीना छूटने पर उसने अपने बड़े चर्म-कंचुक-को उतार कन्धे पर रख फिर दौड़ना शुरू किया; किन्तु, कुत्ता अभी भी नहीं दिखाई पड़ता था, बरफमें उसके पैरोंके निशान ज़रूर दिखलाई पड़ रहे थे। ऋक्ष हाँफने लगा, और विश्राम करनेके लिए एक गिरे हुए वृक्षके स्कन्ध पर बैठ गया। अभी वह पूरी तरह विश्राम नहीं कर पाया था कि उसे दूर अपने कुत्ते की आवाज सुनाई दी। वह उठकर फिर दौड़ने लगा। आवाज नजदीक आती गई। पास जाकर देखा, देवदारुके सहारे एक सुन्दरी खड़ी है। उसके शरीर पर श्वेत चर्म-कंचुक हैं। सफेद टोपीके नीचेसे जहाँ-तहाँ उसके सुनहले केश निकलकर दिखलाई दे रहे हैं। उसके पैरोंके पास एक मरा हुआ खरगोश पड़ा है। ऋक्षको देखकर कुत्ता नजदीक जा और जोर-जोरसे भूकने लगा। ऋक्षकी दृष्टि सुन्दरीके चेहरे पर पड़ी, उसने मुस्कराकर कहा—'मित्र! यह तेरा कुत्ता है?'

'हाँ, मेरा है, किन्तु मैंने तुझे कभी नहीं देखा।'

'मैं कुरुजनकी हूँ। यह कुरु-जनकी भूमि है।'

'कुरु जन की!' कह ऋक्ष सोच में पड़ गया। कुरु यहाँ उसका पड़ोसी-जन है। कितने ही वर्षों से दोनों जनोंमे अन-बन चल रही है। कभी-कभी युद्ध भी हो जाता है। किन्तु कुरु उषा-जनसे अधिक चतुर हैं, इसलिए युद्ध में सफलताकी आशा न देख वह अकसर अपने पैरों से भी काम लेते हैं, इस तरह जहाँ हाथ सफलता नहीं प्रदान करते, वहाँ पैर उन्हें जीवित रहनेमें सफल बनाते हैं। निशा-पुत्र बराबर कुरु-संहारका निश्चय करते, किन्तु अभी तक वह अपने निश्चयको कार्य रूपमें परिणत नहीं कर सके।

ऋक्षको चुप देख तरुणीने कहा—'इस खरगोशको तेरे कुत्तेने मारा है, इसे तू ले जा।'

'लेकिन, यह कुरुओंके मृगया-क्षेत्रमें मरा है।'

'हाँ, मरा है, किन्तु मै कुत्तेके मालिककी प्रतीक्षामें थी।'

'प्रतीक्षामें?'

'हाँ, कि उसके आने पर इस खरगोशको दे दूँ।'

कुरुका नाम सुनकर ऋक्षके मनमें कुछ द्वेष-सा उठ आया था, किन्तु सुन्दरीके स्नेहपूर्ण शब्दोंको सुनकर वह दूर होने लगा। उसने प्रत्युपकारके भावसे प्रेरित होकर कहा—

'शिकार ही नहीं, तूने मेरे कुत्तेको भी मुझे दिया। यह कुत्ता मुझे बहुत प्रिय है।'

'सुन्दर कुत्ता है।'

'सारे जनके बीच क्यों न हो, मेरी आवाज सुनते ही मेरे पास चला आता है।'

'इसका नाम?'

'शंभू।'

'और तेरा मित्र!'

'ऋत्‌श्रवा रोचना-सूनु।'

'रोचना-सूनु! मेरी माँका नाम भी रोचना था। ऋक्ष जल्दी न हो तो थोड़ा बैठ।'

'ऋत्तने धनुष और कंचुकको बरफ पर रखकर सुन्दरीके पैरोंके पास बैठते हुए कहा—

'तो अब तेरी मा नहीं है?'

'नहीं, वह निशा-जनके युद्धमे मारी गई। वह मुझे बहुत प्यार करती थी।'—कहते-कहते तरुणीकी आँखोंमे आँसू भर आये।

ऋक्षने अपने हाथसे उसके आँसुओंको पोंछते हुए कहा—

'यह युद्ध कितना बुरा है!'

'हाँ, जिसमें इतने प्रियोंका विछोह होता है।'

'और अब भी वह बन्द नहीं हुआ'

'बिना एकके उच्छेद हुए वह कैसे बद होगा? मैं सुनती हूँ, निशा-पुत्र फिर आक्रमण करनेवाले हैं। मैं सोचती हूँ ऋत्त! तेरे जैसे ही तरुण तो वह भी होंगे।'

'और तेरी जैसी ही तरुणियाँ कुरुओंमे भी होंगी।' '

'फिर भी हमें एक दूसरेको मारना होगा, ऋत्त! यह कैसा है?'

ऋक्षको इसी वक्त ख्याल आया कि तीन दिन बाद उसका जन कुरुओंपर आक्रमण करनेवाला है। ऋक्षके कुछ बोलनेसे पहले ही तरुणीने कहा—

'लेकिन हम अब नहीं लड़ेंगे।'

'नहीं! कुरु नहीं लड़ेंगे?'

'हाँ, हमारी सख्या इतनी कम रह गई है कि हमे जीतनेकी आशा नहीं।'

फिर कुरु क्या करेंगे?'

'बोल्गा-तटको छोड़ दूर चले जायेंगे। बोल्गा माताकी धारा

कितनी प्रिय है! अब फिर यह देखनेको नहीं मिलेगी, इसीलिए मैं घंटों यहाँ बैठी इसकी शुभ्र धाराको देखा करती हूँ।'

'तो तू वोल्गा को फिर न देख सकेगी।'

'न तैर सकूँगी। इस गभीर उद (जल) में तैरनेमें कितना आनन्द आता था!'—सुन्दरीके कपोलों पर अश्रुबिंदु ढलक रहे थे।

'कितना क्रूर, कितना निष्ठुर!'—उदास हो ऋच्छने कहा।

'किन्तु यह जन-धर्म है रोचना-सूनु।'

'और बर्बर-धर्म है।'

[आजसे सवा दो सौ पीढ़ी पहलेके एक आर्य-जनकी यह कहानी है। उस वक्त भारत, ईरान, और रूसकी श्वेत जातियोंकी एक जाति थी, जिसे—हिन्दी-स्लाव या शतं-वंश कहते हैं।]

३—अमृताश्व

देश—मध्य एशिया; पामीर (उत्तर कुरु);

जाति—हिन्दी-ईरानी; काल—२००० ई० पू०

(१)

फर्गानाके हरे-हरे पहाड़ जगह-जगह बहती सरितायें तथा चश्मे, कितने सुन्दर हैं, इसे वही जान सकते हैं, जिन्होंने काश्मीरकी सुषमा देखी है। हेमन्त बीतकर वसन्त आ गया है। और बसन्त-श्री उस पार्वत्य उपत्यकाको भू-स्वर्ग बना रही है। पशु-पाल अपने हेमन्त-निवासों, गिरि गुहाओं या पाषाण-गृहोंसे निकलकर विस्तृत गोचर-भूमिमें चले आये हैं। उनके घोड़ेके बालके तम्बुओंसे—जिनमें अधिकतर लाल रंगके हैं—धुआँ निकल रहा है। अभी एक तम्बूसे एक तरुणी मशकको कन्धेसे लटकाये नीचे पत्थरोंपर अट्टहास करती सरिताके तट पर चली। अभी वह तम्बुओं से बहुत दूर नहीं गई, कि एक पुरुष सामने आकर खड़ा हुआ। तरुणीकी भाँति उसके शरीर पर भी एक पतले सफेद ऊनी कंबलके दो छोर दाहिने कंधे पर इस तरह बँधे हुये हैं कि दाहिना हाथ मोढ़ा और वक्षार्द्ध तथा घुटनोंके नीचे का भाग छोड़, सारा शरीर ढँका हुआ है। पुरुषके पिंगल केश, श्मश्रु सुन्दर रूपसे सँवारे हुये हैं। सुन्दरी पुरुषको देख ठहर गई। उसने मुस्कराते हुये कहा—“सोमा! आज देरसे पानीके लिए जा रही है?

‘हाँ, ऋज्राश्व! किन्तु तू किधर भूल पड़ा?’

“भूला नहीं सखी! मैं तेरे ही पास चला आया।”

“मेरे पास! बहुत दिनों बाद।”

“आज सोमा याद आ गई!’

"बहुत अच्छा, मुझे पानी भरकर घर मे पहुँचाना है। अमृताश्व खाने बैठा है।"

बात करते हुये दोनों नदी तक जा, घर लौटे। ऋज्राश्वने कहा—"अमृताश्व बड़ा हो गया।"

"हाँ, तूने तो कई वर्षसे नहीं देखा ?"

"चार वर्षसे ?"

"इस वक्त वह बारह वर्षका है। सच कहती हूँ ऋज्राश्व! रूपमे वह तेरे समान है।"

"कौन जाने, उस वक्त मै भी तो तेरा कृपा-पात्र था। अमृताश्व इतने दिनों कहाँ रहा ?"

"नानाके यहाँ, वाल्हीकों मे।"

सुन्दरीने जल-पूर्ण मशक तबूमे रखी और अपने पति कृच्छ्राश्व को ऋज्राश्वके आनेकी खबरदी। दोनों और उनके पीछे अमृताश्व भी, तम्बूसे बाहर निकले। ऋज्राश्वने सम्मान प्रदर्शित करते हुये कहा—"कह, मित्र कृच्छ्राश्व! तू कैसे रहा ?"

"अग्निदेवकी कृपा है, ऋज्राश्व! आ जा, फिर अभी सोम (भाँग) को घोटकर मधु और अश्विनी-क्षीरके साथ तैयार किया है।"

"मधु-सोम! किन्तु इतने सवेरे कैसे ?"

"मै घोड़ोंके रेवड़मे जा रहा हूँ। बाहर देखा नहीं, घोड़ा तैयार है ?"

"तो आज शामको लौटना नही चाहता ?"

"शायद। इसीलिये तैयार है यह सोमकी मशक और मधुर अश्व-मास।"

"अश्व-मास!"

"हाँ, हमारे पशुओं पर अग्नि देवकी कृपा है। मैं तो अश्वोंको ही अधिक पालता हूँ।"

"हाँ, कृच्छ्राश्व! तेरा नाम उल्टा है।"

"माँ बापके समय हमारे घरमे अश्वोंकी कृच्छ्रता थी, इसीलिये यह नाम रख दिया।"

"लेकिन अब तो ऋद्धाश्व होना चाहिए।"

"अच्छा, चलो भीतर।"

"किन्तु, मित्र! इसी देव द्रुमकी छायामें हरी घास पर क्यों न?"

"ठीक, सोमा! तो लाओ, सोम और माससे यहीं मित्रको तृप्त करे।"

"किन्तु कृच्छ्र! तू अश्वोंमे जा रहा था।"

"चला जाऊँगा, आज नहीं कल। बैठ ऋज्राश्व!"

सोमा सोमकी मशक और चषक (प्याले) लिये आई। दोनों मित्रोंके बीच अमृताश्व भी बैठ गया। सोमाने सोम (भाँगके रस) और चषकको धरती पर रखते हुये कहा—"बिस्तर ला दूँ, ज़रा ठहरो।"

"नहीं सोमे! यह कोमल हरी घास बिस्तरसे अच्छी है।"—ऋज्राश्वने कहा।

"अच्छा, यह बतला ऋज्र! लवणके साथ उबाला मास खायेगा, या आगमें भूना? बछेड़ा आठ महीनेका था, मास बहुत कोमल है।"

"मुझे तो सोमे! भूना बछेड़ा पसन्द आता है। मैं तो कभी-कभी सम्पूर्ण बछेड़ेको आग पर भूनता हूँ। देर लगती है, किन्तु मास बहुत मधुर होता है। और तुझे भी मेरे चषकको अपने ओठोंसे मीठा करना होगा।"

"हाँ, हाँ, सोमे! ऋज्र बहुत समय बाद आया है।"—कृच्छ्राश्व ने कहा।

"मैं जल्दी आती हूँ, आग बहुत है, मास भूनते देर न लगेगी।"

"कृच्छ्राश्वको चषक पर चषक उँडेलते देख ऋज्राश्वने कहा—"क्या जल्दी है?"

"सोम मधुरतम है। सोमाका हाथ और सोम! सोम अमृत है। यह सोमपायीको अमृत बनाता है। पी सोम और अमृत बन जा।"

"तू अमृत क्या बनेगा ? जिस तरह चषक पर चषक उँडेले जा रहा है, उससे तो अ-चिरमें मृत-सा बन जायेगा।"

"किन्तु तू जानता है ऋज्र ! मैं सोमसे कितना प्रेम रखता हूँ ?"

इसी वक्त भुने मांसके तीन टुकड़ोंको चमड़े पर लिये सोमा आकर बोली— किन्तु कुच्छ्र ! तू सोमासे प्रेम नहीं रखता ?'

"सोमासे भी और सोमसे भी।" कुच्छ्रने परिवर्त्तित स्वरमें कहा। उसकी आँखें लालहो रही थीं, "और सोमा, आज तुझे क्या परवाह ?"

"हाँ, आज तो मै अतिथि ऋज्रकी हूँ।"

"अतिथि या पुराने मित्रकी ?"—हँसनेकी कोशिश करते हुये कुच्छ्रने कहा।

ऋज्राश्वने हाथ पकड़कर सोमाको अपनी बग़लमें बैठा लिया, और सोम पूर्ण चपकको उसके मुँहमें लगा दिया। सोमाने दो घूँट पीकर कहा—' अब तू पी ऋज्र ! बहुत समय बाद यह दिन आया है।'

ऋज्राश्वने सारे चषकको एक साँसमें साफ़ कर नीचे रखते हुए कहा—"तेरे ओठोंके लगते ही सोमे, यह सोम कितना मीठा हो जाता है !"

कुच्छ्राश्व पर सोम का असर होने लगा था। उसने झटपट अपने चषकको भर कर सोमाकी ओर बढ़ाते हुए लड़खड़ाती ज़बानसे कहा— "तो - ो - ो-सो- ो - ो-मे- े - े ! इस—स् - से-भी- ी-मू-म-धू -धु-र-बू-ब-ना-ा दे।"

सोमाने उसे ओठोंसे छू लौटा दिया। अमृताश्वको बड़ोंके प्रेमालापमें कम रस आता था, इसलिये वह समवयस्क बालक बालिकाओंके साथ खेलनेके लिये निकल भागा। कुच्छ्राश्वने झपी जाती पपनियों और गिरे जाते शिरके साथ कहा—"सो- ो-मे- े- ! गू-गा-ना-ा-गा-ऊँ ?"

"हाँ, तेरे जैसे गायक क्या कुरुमें कहीं हैं ?"

'ठ-ठी- ी-क-मू-मे-रे-ज्-जै सा-ा-ग् - गा-य-क-न-हीं- ीं- । तू-तो-सू-सु-न—"

'प्-पि-व्-व्-वे- ` - `-म्-म-सो- ो-मं—"

"रहने दे कृच्छ्र! देख तेरे संगीतसे सारे पशु-पक्षी जंगल छोड़ भाग रहे हैं।"

"हू-हु-म्-म!"

इस समय सोम पी अमृत बननेका नहीं था। आम तौरसे उसका समय सूर्यास्तके बाद होता है; किन्तु कृच्छ्राश्वको तो कोई बहाना मिलना चाहिए। उसके होश हवास छोड़ चित्त पड़ जाने पर; सोमा और ऋज्राश्वने भी प्याले रख दिये और दोनों नदीके किनारे एक चट्टान पर जा बैठे। पहाड़के बीच यहाँ धार कुछ समतल भूमिमें बह रही थी, किन्तु उसमें बड़े-छोटे पत्थरोंके ढोंके भरे हुए थे, जिन पर जल टकरा कर शब्द कर रहा था। पत्थरोंके आड़में जहाँ-तहाँ मछलियाँ अपने पखोंको हिलातीं चलती-फिरती दिखलाई पड़ती थीं। तटके पास की सूखी भूमि पर विशाल साल, देवदार आदिके वृक्ष थे। पक्षियोंके सुहावने गीतोंके साथ फूलोंसे सुगंधित मद पवनमें स्वाँस तथा स्पर्श लेना बड़े आनन्दकी चीज़ थी। बहुत वर्षों बाद दोनों इस स्वर्गीय भू-भागमें अपने पुराने प्रेमकी आवृत्ति कर रहे थे। इस वक्त फिर उन्हें वह दिन याद आ रहे थे, जब कि सोमा षोड़शी पिंगला (पिगल केशी) थी, जब बसन्तोत्सवके समय ऋज्राश्व भी वाहीकोंमें अपने मामाके घर गया था। सोमा उसके मामाकी लड़की थी। ऋज्राश्वभी उसके प्रेमियोंमें था। उस वक्त सोमाके चाहने वालोंमें होड़ लगी थी, किन्तु जयमाला कृच्छ्राश्वको मिली। दूसरोंके साथ ऋज्राश्वको भी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। अब सोमा कृच्छ्राश्वकी पत्नी है, किन्तु उस जिन्दादिल युगमें स्त्रीने अभी अपनेको पुरुषकी जगम सम्पत्ति नहीं स्वीकार किया था, इसलिये उसे अस्थायी प्रेमी बनानेका अधिकार था। अतिथियों और मित्रोंके पास स्वागतके रूपमें अपनी स्त्रीको भेजना, उस वक्तका सर्वमान्य सदाचार था। आज वस्तुतः सोमा ऋज्राश्वकी रही।

शामको ग्रामके नर-नारी महापितर (कबीलेके मुखिया या

शासक) के विस्तृत आँगनमें जमा हुये। सोम, मधुसुरा और स्वादिष्ट गो-अश्व-मांस लाया जा रहा था। महापितर पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव मना रहे थे। कृच्छ्रने अपनेको हिलने डोलने लायक नहीं रखा था, उसकी जगह सोमा और ऋज्राश्व वहाँ पहुँचे। बड़ी रात तक पान, गीत, नृत्य महोत्सव मनाया गया। सोमाके गीत और ऋज्राश्वके नृत्यको सदाकी भाँति कुरुओंने बहुत पसंद किया।

(२)

"मधुरा! तू थक तो नहीं गई?"

"नहीं, मुझे घोड़ेकी सवारी पसन्द है।"

"किन्तु उन दस्युओंने तुझे बुरी तरह पकड़ रखा था?"

"हाँ, वाल्हीक पक्थोंकी गौओं और अश्वोंको नहीं, बल्कि लड़कियोंको लूटने आये थे।"

"हाँ, पशुका लूटना दोनों जनोंमें चिरस्थायी शत्रुता पैदा करता है, किन्तु कन्याको लूटना थोड़े ही समयके लिये—आखिर ससुरको जामाताका सत्कार करना ही पड़ता है।"

"किन्तु मुझे तेरा नाम नहीं मालूम?"

"अमृताश्व, कृच्छ्राश्व-पुत्र, कौरव।"

"कौरव! कुरु मेरे मामाके कुल होते हैं।"

"मधुरा, अब तू सुरक्षित है। बोल, कहाँ जाना चाहती है?"

मधुराके मुख पर कुछ प्रसन्नताकी रेखा दौड़ने लगी थी, किन्तु वह बीच हीमें रुक गई। अमृताश्व समझ गया, और बातका रुख दूसरी ओर मोड़ते हुये बोला—"पक्थोंकी कन्यायें हमारे ग्राममें भी आई हैं।"

"सभी लूटकर?"

"नहीं, उनमें मातुल-पुत्रियाँ अधिक हैं।"

"तभी तो। किन्तु लड़कियोंके लिये यह लूट-मार मुझे बहुत बुरी मालूम होती है।"

"और मुझे भी मधुरा! वहाँ पुरुष-स्त्री यह भी नहीं जानते कि उनमे प्रेमकी सम्भावना है भी।"

"मातुल पुत्रीका व्याह इससे अच्छा है क्योंकि उसमे पहलेसे परिचित होनेका मौका मिलता है।"

"तेरा कोई ऐसा प्रेमी था मधुरा?"

"नहीं मेरी कोई बुआ नहीं है।"

"कोई दूसरा?"

"स्थायी नहीं।"

"क्या तू मुझे भाग्यवान बना सकती है!"

मधुरा की शर्मीली निगाहें नीची हो गईं। अमृताश्वने कहा—"मधुरा! ऐसे भी जनपद हैं, जहाँ स्त्रियाँ दूसरेकी नहीं, अपनी होती हैं।"

"नहीं समझी अमृताश्व!"

"उन्हें कोई लूटता नहीं, उन्हें कोई सदाके लिये अपनी पत्नी नहीं बना पाता। वहाँ स्त्री पुरुष समान होते हैं।"

"समान हथियार चला सकते हैं।"

"हाँ; स्त्री स्वतंत्र है।"

"कहाँ है वह जनपद, अमृत—आँ अमृताश्व!"

"नहीं अमृत ही कह मधुरा! वह जनपद यहाँसे पश्चिममें बहुत दूर है।"

"तू वहाँ गया है अमृत?"

"हाँ। वहाँकी स्त्री आजीवन स्वतंत्र रहती है। जैसे जंगलमें स्वतंत्र विचरता मृग, जैसे वृक्षों पर स्वतंत्र उड़तीं चिड़ियाँ।"

"वह बड़ा अच्छा जनपद होगा! वहाँ स्त्रीको कोई नहीं लूटता न?"

"स्वतंत्र बाघिनको कौन जीते जी लूट सकता है?"

"और पुरुष, अमृत?"

"पुरुष भी स्वतंत्र है।"

"बाल-बच्चे।"

"मधुरा! वहाँका घर-बार दूसरी ही तरहका है, और सारे ग्रामका एक परिवार होता है।"

"उसमें बापका कर्त्तव्य?"

"बाप नहीं कह सकते मधुरा! वहाँ स्त्री किसीकी पत्नी नहीं, उसका प्रेम स्वच्छंद है।"

"तो वहाँ कोई बापको नहीं जानता?"

"सारे घरके पुरुष बाप हैं।"

"यह कैसा रिवाज है?"

"इसीलिये वहाँ स्त्री स्वतंत्र है। वह योद्धा है; शिकारी है।"

"और गाय-घोड़ोंका पालन-पोषण?"

"वहाँ गाय-घोड़े जंगलोंमें पलते हैं, वैसे ही जैसे यहाँ हरिण।"

"और भेड़-बकरियाँ?"

"वहाँ लोग पशु-पालन नही जानते। शिकार, मछली और जंगलके फलपर गुज़ारा करते हैं।"

"सिर्फ शिकार! फिर उन लोगोंको दूध नही मिलता होगा?"

"मानवीका दूध और वह भी बचपन हीमें।"

"घोड़ेपर चढ़ना भी नहीं?"

"नहीं। और चमड़ेके सिवा दूसरा परिधान भी नहीं जानते।"

"उन्हें बड़ा दुःख होता होगा?"

"किन्तु वहाँकी स्त्रियाँ स्वतंत्र, पुरुषोंकी तरह स्वतंत्र हैं। वह फल जमा करती हैं, शिकार करती हैं, युद्धमें शत्रुओं पर पाषाण-परशु और बाण चलाती हैं।"

"मुझे भी यह पसन्द है। मैंने शस्त्र चलाना सीखा है, किन्तु युद्धमें पुरुषोंकी भाँति जानेका सुभीता कहाँ?"

"पुरुषने यह काम अपने ऊपर लिया है। घोड़ों-गायों, भेड़-

-बकरियोंको वह पालता है, स्त्रीको उसने पशु-पक्षी नहीं, गृह-पत्नी बनाया है।"

"और लड़कियोंको लूटने लायक बनाया है। वहाँ तो लड़कियाँ नहीं लूटी जाती होंगी अमृत!"

"एक जनके लड़के-लड़की सदा उसी जनमें रहते हैं, न बाहर देना, न बाहरसे लेना।"

"कैसा रिवाज है!"

"वह यहाँ नही चल सकता।"

"इसलिये लड़कियाँ लूटी जाती रहेंगी!"

"हाँ, तो मधुरा! क्या कहती है!"

"किस बारे मे!"

"मेरे प्रेमके बारेमे।"

"मैं तेरे वशमे हूँ अमृत!"

"किन्तु मैं लूटकर नहीं ले जाना चाहता।"

"क्या, मुझे युद्ध करने देगा!"

"जहाँ तक मेरा बस होगा।"

"और शिकार करने!"

"जहाँ तक मेरा बस होगा।"

"बस!"

"क्योंकि मुझे महापितरकी आज्ञा तो माननी ही पड़ेगी। अपनी ओरसे मधुरा! मैं तुझे स्वतंत्र समझूँगा।"

"प्रेम करने न करनेके लिये भी।"

"प्रेम हमारा संबंध स्थापित कर रहा है। अच्छा, उसके लिये भी।"

"तो अमृत! मैं तेरा प्रेम स्वीकार करती हूँ।"

"तो हम कुरुओंमें चलें या पक्थोंमें!"

"जहाँ तेरी मर्ज़ी।"

अमृतने घोड़ेको लौटाया और वह मधुराके बताये रास्तेसे पक्थोंके

ग्राममें पहुँचा। ग्राममें किसीके तंबूघरमें कोई मारा गया था, किसीमें कोई घायल पड़ा था; किसीकी लड़की लूटी गई थी। चारों ओर कुहराम मचा हुआ था। मधुराकी माँ रो रही थी और बाप ढाढस बँधा रहा था, जबकि घोड़ा उसके बालोंके तंबूके बाहर खड़ा हुआ।

अमृताश्वके उतर जाने पर मधुरा कूद पड़ी और अमृताश्वको बाहर खड़े रहनेके लिये कहकर भीतर चली गई। एकाएक सामने खड़ी हुई लड़कीको देख, पहले माँ-बापको विश्वास न हुआ। फिर माँने गोदमें ले, उसके मुखको आँसुओंसे भिगोना शुरू किया। उसके शांत होने पर बापने पूछा और मधुराने बतलाया—"वाह्लीक पक्थ लड़कियोंको लूट कर ले जा रहे थे। मुझे लूट कर ले जाने वाला पिछड़ गया था। मौका पाकर मैं घोड़ेसे कूद गई। वह पकड़ कर फिर चढ़ाना चाहता था। मैं उसका विरोध कर रही थी। उसी वक्त एक तरुण सवार आ गया, उसने वाह्लीकको ललकारा और उसे घायल कर गिरा दिया। वही कुरु तरुण मुझे यहाँ पहुँचाने आया है।"

बापने कहा—"तो तरुणने तुझे नहीं ले जाना चाहा?"

"बलात् नहीं।"

"किन्तु हमारे जनपदके नियमके अनुसार तू उसकी हुई।"

"और मैं उससे प्रेम भी करती हूँ तात!"

मधुराके बापने बाहर आकर अमृताश्वका स्वागत किया और उसे तंबूके भीतर लिवा लाया। गाँव वालोंको यह अजीब-सी बात मालूम हुई; किन्तु सभीके सम्मान और सहानुभूतिके साथ अमृताश्वने मधुराके साथ ससुराल छोड़ी।

(३)

अब अमृताश्व अपने कुरु-ग्रामका महापितर था। उसके पास पचासों-घोड़े गायें, तथा बहुत सी भेड़-बकरियाँ थीं। उसके चार बेटे और मधुरा रेवड़ और घरका काम देखते थे। ग्रामके दरिद्र कुलोंके कुछ आदमी भी उसके यहाँ काम करते थे—नौकरके तौर पर नहीं,

घरके एक व्यक्तिके तौर पर। एक कुरुको दूसरे कुरुसे समानताका बर्त्ताव करना पड़ता। अमृताश्वके चलते-फिरते ग्राममे पचाससे ऊपर परिवार थे। आपसी झगड़ों, मामलों-मुकदमोंका फैसला महापितरको ही देखना पड़ता। फिर पानी, रास्ते और दूसरे सार्वजनिक कामोंका संचालन भी महापितर करता। और युद्धमे—जो सदा सिर पर बैठा ही रहता—सेनाका मुखिया बनना तो महापितरका सबसे बड़ा कर्त्तव्य था। वस्तुतः युद्धोंमे सफलता ही आदमीको महापितरके पद पर पहुँचाती।

अमृताश्व एक बहादुर योद्धा था। पक्थों, बाल्हीकों तथा दूसरे जनोंके अनेक युद्धोंमे उसने अपनी बहादुरी दिखलाई थी। मधुराको दिये वचनोंका उसने पालन किया। मधुराने अमृताश्वके साथ रीछ, भेड़िये और बाघके शिकार ही नहीं किये थे, बल्कि युद्धोंमे भी भाग लिया था। यद्यपि जन-वालोंमेंसे किसी-किसीने इसे पसन्द नही किया था, उनका कहना था कि स्त्रीका काम घरके भीतर होना चाहिये।

अमृताश्व जब पहले-पहल महापितर चुना गया था, उस दिन कुरु-पुर महोत्सव मना रहा था। तरुण-तरुणियोंने आजके लिये अस्थायी प्रणय बाँधे थे। ग्रीष्मके दिनोंमे नदी की उपत्यका और पहाड़ पर घोड़ों और गायोंके रेवड़ स्वच्छद चरा करते। गाँव वाले भूल गये थे कि उनके शत्रु भी हैं। पशु-धनके होते ही उनके शत्रुओंकी संख्या बढी थी। जब कुरुजन वोल्गाके तट पर था, उस वक्त उसके पास पशु-धन नहीं था। उस वक्त उसे आहार जगलसे लेना पड़ता था; कभी शिकार मधु या फल न मिलनेसे भूखा रहना पड़ता था। अब कुरुओंने शिकारके कुछ पशुओं—गाय, घोड़े, भेड़, बकरी, खर—को पालतू बना लिया। वह उन्हें मास, दूध, चमड़ा ही नहीं, बल्कि ऊनके वस्त्र भी देते हैं। कुरुआनियाँ सूत कातने और कम्बल बुननेमे कुशल हैं। किन्तु यह कुशलता समाजमे उनके पहले स्थानको अक्षुण्ण नहीं रख सकी। अब स्त्री नहीं पुरुषका राज्य है। जन-नायिका जन-समितिका नहीं बल्कि लड़ाके महापितरका शासन है, जो जनमतका ख्याल रखते

ने देखा कि पुरुओंकी संख्या सौ के करीब होगी। अपनी चालीसकी टुकड़ीसे लड़ाई शुरू करनी चाहिये या नहीं, इस पर ज्यादा मत्थापच्ची वह करना नहीं चाहता था। उसने सींगोंके लम्बे भालेको सँभाल कर दुश्मन पर हमला करनेकी आज्ञा दी।

कुरु वीर और वीरांगनाओंने—हाँ, वीरांगनायें आधीसे कम न थीं—निर्भय हो घोड़ोंको आगे दौड़ाया। उन्हें देखतेही कुरुको पशुओं-को रोक रखनेके लिये छोड़, पुरु नीचेकी ओर दौड़ पड़े, और घोड़ोंसे पूरा फायदा उठानेके लिये नदीके किनारे एक खुली जगहमें खड़े हो, कुरुओंका इंतज़ार करने लगे। अमृताश्वकी आकृति उस वक्त देखने लायक थी। उसका घोड़ा अमृत और वह दोनों एकही शरीरके अंग मालूम होते थे। हरिणके तेज़ सींगका उसका भाला तो एक बार जिसके शरीर पर लगता, वह दूसरे वारके लिये अपने घोड़े पर बैठा नहीं रह सकता था। पुरुओंने धनुष-बाण और पाषाण-परशु पर ज्यादा भरोसा कर गलतीकी थी, यदि उनके पास भी उतनेही सींगके भाले होते, तो निश्चयही कुरु उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। एक घंटा संग्राम होते हो गया, कुरु अब भी डटे हुये थे, किन्तु उनके एक तिहाई योद्धा हताहत थे; यह डरकी बात थी। इसी वक्त तीस कुरु घुड़सवार ललकारते हुये संग्राम-क्षेत्रमें पहुँचे। कुरुओंकी हिम्मत बहुत बढ़ गई। पुरु बुरी तरहसे मरने लगे। उनकी नाज़ुक हालत देख पशुओंको रोक रखनेके लिये छोड़े हुये घुड़सवार भी आ पहुँचे; किन्तु इसी समय चालीस कुरु-कुरुआनियोंका जत्था लिये मधुरा आ पहुँची। डेढ़ घंटा जम कर युद्ध हुआ। अधिकांश पुरु हताहत हुये; कुछ भाग निकले।

घायलोंका खात्मा कर कुरु-वाहिनी पुरु-ग्रामकी ओर बढ़ी। वह चार क्रोश उपर था। सारा ग्राम सूना था। लोग तम्बुओंको छोड़ कर भाग गये थे। उनके पशु जहाँ-तहाँ चर रहे थे; किन्तु कुरुओंको पहले पुरुओंसे निबटना था। पुरु बुरी तरह घिर गये थे, ऊपर भागनेका

उतना सुभीता न था। उपत्यका सँकरी होती गई थी और चढ़ाई कड़ी थी, तो भी प्राण बचानेके लिये नर-नारी घोड़ों पर भागे जा रहे थे। आखिर ऐसा भी स्थान आया, जहाँ घोड़ा आगे नहीं बढ़ सकता था। लोग पैदल चलने लगे। कुरु उनके बहुत नज़दीक आ गये थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ तेज़ीसे नहीं बढ़ सकते थे, इसलिये उन्हें भागने का मौका देनेके लिये कुछ कुरु-भट एक सँकरी जगहमें खड़े हो गये। कुरु अपनी संख्याका पूरा इस्तेमाल नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्हें इन पुरुओंसे रास्ता साफ करनेमें कुछ घंटे लगे। पुरु और कुरु अब दोनों ही पैदल थे, किन्तु पुरुओंमें मर्द मुश्किलसे एक दर्जन रह गये थे। इसलिये वह कितनेही दिनों तक सारे पुरु परिवारकी रक्षा करते? उन्होंने एक दिन कुछ साहसी स्त्रियोंको ले, एक दुरूह पथ पकड़, वह उपत्यका छोड़ दी और पहाड़ोंको पार करते दक्खिनकी ओर बढ गये। कुरुओंने जहाँ-तहाँ छिपे प्राणोंकी भिक्षा माँगते पुरु बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियोंको पकड़ा। बन्दी बनाना इस पितृ-युगके नियमके विरुद्ध था, इसलिये बच्चेसे बूढ़े तक सारे ही पुरुषोंको उन्होंने मार डाला। स्त्रियोंको वह अपने साथ लाये। पुरुओंका सारा पशु-धन भी उनका हुआ। अब वह हरित रोद (नदी) उपत्यका नीचेसे ऊपर तक कुरुओंकी चरागाह थी। एक पीढ़ी तकके लिये महापितरने एकसे अधिक पत्नी रखनेका विधान कर दिया और इसी वक्त कुरुओंमें पहले पहल सपत्नी देखी गई। *

—

[* आजसे दो सौ पीढ़ी पहलेके एक आर्य कबीलेकी यह कहानी है। उस वक्त भारत और ईरानकी श्वेत जातियोंका एक कबीला (जन) था और दोनोंका सम्मिलित नाम आर्य था। पशु-पालन उनकी जीविका-का मुख्य साधन था।]

४—पुरहूत

देश—वक्षु-उपत्यका (ताजिकिस्तान)
जाति—हिन्दी-ईरानी, काल—२४०० ई० पू०

वक्षुकी घर्घर करती धारा बीचमे वह रही थी। उसके दाहिने तट पर पहाड़ धारासे ही शुरूहो जाते थे, किन्तु बाईं तरफ अधिक ढालुआँ होनेसे उपत्यका चौड़ी मालूम होती थी। दूरसे देखनेपर सिवाय घन-हरित उत्तुंग देवदार-वृक्षोंकी स्याहीके कुछ नहीं दिखलायी पड़ता था; और नजदीक आनेपर नीचे ज्यादा लम्बी और ऊपर छोटी होती जाती शाखाओंके साथ उनके वाण जैसे नुकीले शृङ्ग दिखलायी पड़ते थे। और उनके नीचे तरह-तरहकी वनस्पति, तथा दूसरे वृक्षभी थे। ग्रीष्मका अन्त था, अभी वर्षा शुरू नही हुई थी। यह ऐसा महीना है, जब उत्तरी भारतके मैदानोंमे लोग गर्मीसे सख्त परेशान रहते हैं, किन्तु इस सात हजार फीट ऊँची पार्वत्य-उपत्यकामे गर्मी मानों घुसनेही नहीं पाती। वक्षुके बाएँ तटसे एक तरुण जारहा था। उसके शरीरपर ऊनी कंचुक, जिसके ऊपर कई पर्त लपेटा हुआ कमरबन्द था, नीचे ऊनी सुत्थन और पैरोंमें अनेक तनिशोंकी चप्पल थी। शिरके कंटोपको उसने उतारकर अपने पीठकी कंडी पर रख लिया था, और उसके लम्बे चमकीले पिंगल केश पीठपर बिखरे हवाके हलके झोकोंमे जब तब लहरा उठते थे। तरुणकी कमरसे चमड़ेसे लिपटा ताँबेका खड्ग लटक रहा था। उसकी पीठ पर वीरोंकी पतली शाखाओंकी बुनी चोगानुमा कंडी थी; जिसमे तरुणने बहुतसी चीजे, खुला धनुष तथा वाणोंसे पूर्ण तर्कश रखा था। तरुणके हाथमे एक डंडा था, जिसे कंडीकी पेंदमे लगा कर खड़ाहो वह कभी-कभी विश्राम करने लग जाता था—अब चढ़ाई कड़ी होरही थी। उसके सामने छै मोटी-मोटी भेड़े चल रही थी, जिनकी

पीठ पर सत्तूसे भरी घोड़ेके बालकी बड़ी-बड़ी थैलियाँ थीं। तरुणके पीछे एक लाल झबरा कुत्ता चल रहा था। कलविंकके मधुर गम्भीर-स्वरसे पर्वत प्रतिध्वनित होरहा था, जिसका प्रभाव तरुण परभी मालूम होता था, और वह मुँहसे सीटी बजाता जारहा था।

अभी एक चट्टानके ऊपरसे एक पतली रुपहली धारके रूपमें गिरता चश्मा आ गया। धाराको चट्टानके प्रांतसे खुलकर गिरनेके लिए किसीने लकड़ीकी नाली लगादी थी। हाँफती भेड़े नीचे पानी पीने लगीं। तरुणने पासमें फैली अंगूरकी लताओंमें छोटे अंगूरोंके गुच्छे लटकते देखे। बैठ कर कंडीको जमीन पर उतार वह अंगूर तोड़कर खाने लगा। अभी अंगूरोंमे कसैलापन लिए तुर्शी ज्यादा थी। उनके पकनेमें महीने भरकी देर थी, किन्तु तरुण पथिकको वे अच्छे मालूम होरहे थे, इसलिए वह एक-एक दानेको मुँहमें धीरे-धीरे फेंकता जारहा था। शायद वह प्यासा ज्यादा था और तुरन्त चलकर आयेको शीतल पानी हानिकारक होता है, इसीलिए वह देरकर रहा था।

पानी पीकर भेड़े चारों ओर उगी हरी घासोंको चर रही थीं। झबरा कुत्ता गर्मी अधिक अनुभव कर रहा था, इसलिए उसने न अपने मालिकका अनुकरण किया और न भेड़ोंका, वह धारके नीचे फैले पानीमें बैठ गया। अबभी उसका पेट भाथीकी तरह फूल-पचक रहा था और उसकी लाल लम्बी जीभ खुले मुँहसे निकलकर लपलपा रही थी। तरुणने धारसे नीचे मुँह खोला, और गिरती धारासे एक साँसमे प्यास बुझा, चिल्लूमें पानी भर अगले केशोंकी जड़ भिगोते हुए मुँहको धोया। उसके अरुण गालों और लाल ओठोंको ढाँकनेके लिए पिंगल रोम अभी आरम्भिक तैय्यारीमें थे। भेड़ोंको बड़े मनसे चरते देख तरुण कंडीके पास बैठ गया और कानोंको तिरछा कर अपनी ओर ताकते झबराकी आखोंके भावोंको परख कर, कडीमे एक ओरसे हाथ डाल कर सूखी भेड़की रानको एक टुकड़ा कमरबन्दसे लटकती चमड़ेमें बन्द ताँबेकी तेज छुरीसे काट-काट कर कुछ स्वयं खाने और कुछ झबरेको खिलाने लगा।

इसी वक्त लकड़ीके घण्टेकी खन-खन करती आवाज सुनायी दी। तरुणने कुछ दूर झाड़ीसे आधा छिपे एक गदहेको आते देखा, फिर दूसरेको, और पीछे एक षोड़शी बाला अपनीही जैसी पोशाक तथा पीठ पर कंडी लिए आती देखी। तरुणके मुँहसे अनायास सीटी बजने लगी—जब वह कुछ सोचने लगता तो तरुणके मुँहसे सीटी बजने लगना साँस जैसा स्वाभाविक होजाता था। षोड़शीके कानमें सीटीकी आवाज एक बार पड़ी जरूर और उसने उस जगहकी ओर ताकाभी, किन्तु तरुण का शरीर गुल्मसे आच्छादित था। यद्यपि तरुणने ५० हाथ दूरसे देखा था किन्तु षोड़शीके मुखकी एक हल्की किन्तु सुन्दर छाप उसके अन्तस्तल पर पड़ गयी थी और उत्सुकतासे वह यह जाननेकी प्रतीक्षा कर रहा था कि वह किधर जा रही है। इधर वक्षुकी ऊपर की ओर कोई गाँव नहीं बसा हुआ है, यह तरुण जानता था। इसलिए वहभी उसीकी तरह पंथ-चारिणी है, यह वह समझ सकता था।

षोड़शीके सुन्दर किन्तु अपरिचित चेहरेको देख कर झबरा भूँकने लगा। तरुणके "चुप झबरा" कहने पर वह वहीं चुपचाप बैठ गया। षोड़शीके गदहे पानी पीने लगे, और जब वह अपनी कंडी उतारने लगी; तो तरुणने अपनी मजबूत भुजाओं में लेकर उसे नीचे रख दिया। षोड़शीने मुस्कराहटके रूपमें कृतज्ञता प्रकट करते हुआ कहा—

"बड़ी गर्मी है।"

"गर्मी नहीं है, चढ़ाईमें चलकर आनेसे ऐसाही मालूम होता है। थोड़ेसे विश्रामसे ही पसीना चला जायगा।"

"अभी दिन अच्छा है।"

"अभी दस-पन्द्रह दिन और वर्षाका डर नहीं।"

"वर्षासे मुझे डर लगता है। रास्ते, नालों और फिसलनके कारण बहुत खराबहो जाते हैं।"

"गदहोंके लिए चलना और मुश्किल होता है।"

"घर पर भेड़ें नहीं थीं, इसलिए मैंने गदहों हीको ले लिया। अच्छा, तुझे कहाँ जाना है, मित्र!"

"डाँडे पर। आजकल हमारे घोड़े, गायें, भेड़ें वहीं हैं।"

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। सत्तू, दाना, फल, नमक पहुँचाने जा रही हूँ।"

"तेरे पशुओंको कौन देखता है?"

"मेरा परदादा। और भाई, बहनें भी।"

"परदादा! वह तो बहुत बूढ़ा होगा?"

"बहुत बूढ़ा, उतना बूढ़ा आदमी तो शायद कहीं नहीं मिलेगा।"

"फिर वह पशुओंको क्या देखता होगा?"

"अभी वह बहुत मजबूत है। उसके बाल, भौं सब सफेद हैं। किंतु उसके नये दाँत हैं, देखनेमें पचास-पचपनका मालूम होता है।"

"तो उसे घर पर रखना चाहिए।"

"वह मानता ही नहीं, मेरे पैदा होनेके पहलेसे वह गाँव नहीं गया।"

"गाँव नहीं गया!"

"जाना नहीं चाहता। गाँवसे उसको घृणा है। वह कहता है, मनुष्य एक जगह बाँध कर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया। बहुत पुरानी बातें सुनाता है। अच्छा तेरा नाम क्या है मित्र?"

"पुरुहूत माद्री-पुत्र पौरव।"

"और तेरा नाम स्वसर (बहिन)?"

"रोचना माद्री।"

"तो तू मेरे मातुल-कुलकी है स्वसर! ऊपरी मद्र या निचला?"

"ऊपरी मद्र।"

वक्षु नदीके बाँये तट पर पुरुओंके ग्राम थे, लेकिन उसका निचला भाग—जो नीचेके मैदानसे मिलता है—मद्रोंके हाथमें था, और दायाँ तट ऊपर मद्रोंके, नीचे परशुओंके हाथमें। भूमि और जन-

संख्याकी दृष्टिसे पुरु मद्रोंसे कम न थे। पुरुओंके नीचेवाले मद्र निचले मद्र कहे जाते थे। रोचना उपरले मद्रकी थी। पुरुहूतके मामाका गाँव भी उपरले मद्रमें था।

इस बातके जानने पर दोनो कुछ और आत्मीयता अनुभव करने लगे। पुरुहूतने फिर बात आरम्भ करते हुए कहा—

"रोचना! लेकिन आज हम डाँडे पर नहीं पहुँच सकते। तूने अकेले आनेका साहस कैसे किया?"

"हाँ, मै जानती थी कि रातको चीतेसे गदहोंको बचाना मुश्किल है, लेकिन बाबाके लिए खानेकी चीजें लाना जरूरी था—पुरुहूत! बाबा मुझे बहुत मानता है। मैने सोचा रास्तेमें कोई और भी मिल जायेगा, आज कल डाँडेके जानेवाले बहुत होते हैं। और यह भी खयाल आया कि आग जला लेने पर काम चल जायेगा।"

"रास्ते चलते आग नहीं जलायी जा सकती। अरणी है तेरे पास, रोचना!"

"है।"

"होने पर भी अरणीको रगड़कर अग्नि-देवताको प्रकट करना आसान नहीं है। खैर, मेरे पास एक पवित्र अरणी है, वह हमारे घरमें पितामहके समयसे चली आयी है। इस अरणीसे प्रकट हुई अग्नि द्वारा बहुतसे यज्ञ, बहुतसी देव-पूजाएँ हुई हैं। मुझे अग्नि-देवताका मंत्र भी याद है, इसलिए वे इससे जल्दी प्रकट हो जाते हैं।"

"और पुरुहूत! अब हम दो हैं, इसलिए चीतेको पास आनेकी हिम्मत न होगी।"

"और हमारा झबरा भी है, रोचना।"

"झबरा!"

"हाँ, इस लाल श्वक (सग=कुत्ते) का नाम है।"

"झबरा! झबरा" बोलते ही झबरा खड़ाहो मालिकका हाथ चाटने लगा।

रोचनाने भी "झबरा, झबरा !" कहा। वह आकर उसके पैरोंको सूँघने लगा, फिर जब रोचनाने उसकी पीठ पर हाथ दिया, तो झबरा दुम हिलाते हुए उसके पैरोंमें बैठ गया।

पुरुहूतने कहा—"झबरा बहुत समझदार श्वक है रोचना !"

"और मजबूत भी।"

"हाँ, भेड़िया, भालू, चीता किसीसे नहीं डरता।"

भेड़ें और गदहे अब काफी घास चर चुके थे, थकावट भी दूर हो गयी थी, इसलिए दोनों तरुण-पथिकोंने फिर चलना शुरू किया। झबरा उनके पीछे-पीछे चल रहा था। यद्यपि उनकी पगडंडी तिरछे काट कर जा रही थी, तो भी चढ़ाई तेज थी, इसलिए वे सधे पैर धीरे-धीरे आगे बढ़ सकते थे। पुरुहूत कहीं धरतीमें चिपकी लाल स्ट्राबरियोंको तोड़ता; कहीं करोदोंको, और रोचनाको भी देता। अभी अच्छे-अच्छे फल खूब पकने पर नहीं आये थे, पुरुहूतको इसकी बड़ी शिकायत थी।

शाम तक वे इसी तरह बातें करते चढ़ते गये। सूर्यास्त हो रहा था, जब एक घने गुल्मके नीचेसे कल-कल करके बहते चश्मेको उन्होंने देखा। पास ही थोड़ी खुली जगह थी, जिसमें लकड़ीके अधजले कुन्दे, राख और घोड़ोंकी लीद पड़ी थी। पुरुहूतने झुककर राखको कुरेदा, उसमें आग दबी हुई थी। उसने बहुत खुश होकर कहा—

"रोचना ! रातके ठहरनेके लिए इससे अच्छी जगह आगे नहीं मिलेगी। पासमें पानी है, घासकी अधिकता है, सूखे लक्कड़ पड़े हैं, और फिर आज सवेरे यहाँसे जानेवाले पथिकने आगको राखके नीचे दबा दिया है।"

"हाँ, पुरुहूत ! इससे अच्छी जगह नहीं मिलेगी। आज यहीं ठहरें। अगले चश्मे तक पहुँचनेमें अंधेरा हो जायगा।"

पुरुहूतने बैठकर झट अपनी कंडीको पत्थरके सहारे धरती पर रख दिया, फिर रोचनाकी कंडीको उतारा। दोनोंने मिलकर गदहोंके

बोझको अलग किया और उनकी काठी खोल दी। गदहोंने दो तीन लोट लगायीं, फिर घासमे चले गये। भेड़ोंकी लादियोंको उतारनेमें कुछ देर लगी, क्योंकि भेड़ों को जबर्दस्ती पकड़ कर लाना पड़ता था। रोचना मशकले चश्मे पर पानी भरने गयी। पुरुहूतने पत्ते और छोटी लकड़ियाँ डाल आगको बाल दिया, और फिर बड़ी लकड़ियोंको लगा बड़ी आग तैयार करदी। जब रोचना पानी भर कर लौटी, तो पुरुहूत ताँबेकी पतीली सामने रख गायकी चौथाई टाँगको चाकूसे काट रहा था, रोचनाको देखकर बोला—

"कल शाम तक हम ऊपर पहुँच जायँगे रोचना! तेरा गोष्ठ बहुत दूर तो न होगा?"

"जहाँ हम डाँडे पर पहुँचते हैं, तो वहाँसे तीन कोस पूरब है।"

"और मेरा छै कोस पूरब। तब तो तेरे बाबाका गोष्ठ रोचना! मेरे रास्ते पर ही पड़ेगा।"

"तो पुरुहूत तू बाबाको देख पायेगा। मैं सोचती थी बाबाकी तुझसे कैसे भेंट हो।"

"एक ही दिन तो और है, इसीलिए एक चौथाई रान काफी समझी। यह पिछली रान है रोचना! बेहद् (बछिला) की।"

"मेरे पास अश्व-बछेड़े—की आधी टाँग है, पुरुहूत! आज-कल मांस ज्यादा देर होनेपर बसाने भी तो लगता है?"

"नमक डाल कर मासको पकाना कैसा रहेगा?"

"बहुत अच्छा और मेरे पास गोडी भी हैं पुरुहूत! मांस, गोडी और पीछे थोड़ा-सा सत्तू मिलाने पर अच्छा सूप तैयार हो जायेगा, सोते वक्त सूप तैयार मिलेगा।"

"मैं अकेला होता तो रोचना! सूप न बनाता, बहुत देर लगती है; किंतु तब तक पशुओंके बाँधने, बात-चीत करने में लगे रहेंगे।"

"बाबा मेरे सूपको बहुत पसन्द करता है पुरुहूत! और यह ताँबे की पतीली!

"हाँ, ताँबा बहुत महँगा है रोचना ! इस पतीली पर एक घोड़ेका दाम खर्च हुआ है, किंतु रास्तेमें यह अच्छी रहती है।"

"तो तेरे घर बहुत पशु होंगे पुरुहूत ?"

"और बहुत धान्य भी रोचना ! इसीलिए यह एक घोड़े-मूल्यकी पतीली है। अच्छा, यह ले मैंने मास काट दिया। पानी और नमक डाल तू तो मास को आग पर चढ़ा और मैं उस बगलमें भी लकड़ीकी आग तैयार करता हूँ। फिर थोड़ीसी घास काट गदहों और घोड़ोंको बीचमें यहाँ बाँधना है। जानती है न चीतेको गदहेका मास उससे भी अधिक मीठा लगता है, जितना कि हमें बछिया का। और झब्बर ! तब तक तू भी इस पर जीभ चला।"—कह जरासी मास लगी एक हड्डीको झबराके सामने फेंक दिया। झबरा पूँछ हिलाता हड्डीको पैरमें दबा दाँतोंसे तोड़नेकी कोशिश करने लगा।

पुरुहूतने ऊपरका कंचुक और कमरबन्द हटा दिया। बिना बाँहकी कुरतीके नीचे उसकी चतुरस्र छाती और पृथुल बाँहें बतला रही थीं कि इस बीस वर्षके तरुणके शरीरमें कितनी ताकत है। काम करते वक्त पुरुहूत का रोआँ नाचता था। कंडीमें से दराती निकाल उसने बातकी बातमें घासका एक ढेर जमा कर दिया, फिर कान पकड़ गदहोंको ला खूँटा गाड़कर बाँध सामने घास डाल दिया। इसी तरह भेड़ोंको भी।

और कामसे निवृत्तहो, अब पुरुहूत भी आगके पास आ बैठा। रोचना पतीलीसे उबले मास-खंडोंको निकाल कर चमड़े पर रखती जा रही थी। पुरुहूतने कंडीमेंसे एक चर्म-खंड निकाल बाहर बिछा दिया, फिर एक काठका सुन्दर चषक (प्याला) तथा झिल्लीमें रखा पेय निकाल बाहर रखा उसीके साथ बाँसुरी भी निकल कर जमीन पर गिर पड़ी। मालूम हुआ जैसे कोई कोमल शिशु गिर पड़ा है और चोटके डरसे माँ तड़प रही है; उसने जल्दीसे बाँसुरीको उठाकर कपड़ेसे पोंछा और चूम कर वह उसे कंडीमें रखने लगा। रोचना देख रही थी, वह बीचमें बोल उठी—

"पुरुहूत ! तू वंशी बजाता है ?"

"यह वंशी मुझे बहुत प्यारी है, रोचना ! जान पड़ता है मेरा प्राण इसी वंशीमे बसता है।"

"मुझे वंशी सुना पुरुहूत।"

"अभी या खानेके बाद ?"

"जरा-सा अभी।"

"अच्छा—" कह पुरुहूतने वंशीको ओंठमे लगा जब आठों उँगलियोंको उसके छिद्रों पर फेरना शुरू किया तो विशाल वृक्षोंकी छायासे निकलकर पैर फैलाते संध्या-अन्धकारकी स्तब्धतामें दिगन्तको प्रतिध्वनित करनेवाली उस मधुर-ध्वनिने चारों ओर जादू-सा फैला दिया। रोचना सब सुध-बुध भूल तन्मयहो उस ध्वनिको सुन रही थी। पुरुहूत किसी उर्वशीके वियोगमें व्याकुल पुरुरवाके व्यथापूर्ण गानको वंशीमें गा रहा था। गान बन्द होनेपर रोचनाको मालूम हुआ, वह स्वर्गसे एकाएक धरतीपर रख दी गयी। उसने आँखोंमें आनन्दाश्रु भरकर कहा—

"पुरुहूत ! तेरा वंशीका गान बहुत मधुर है, बड़ाही मधुर। मैंने ऐसी वंशी नही सुनी। कितनी प्यारी है यह लय।"

"लोग भी ऐसाही कहते हैं, रोचना ! किन्तु, मैं उसे नहीं समझ सकता। वंशीके ओठोंमें लगातेही मैं सब कुछ भूल जाता हूँ। यह वशी मेरे पास रहे, फिर मुझे दुनियामें किसी चीजकी चाह नहीं रह जाती।"

"अच्छा आ, पुरु ! अब मांस ठंढाहो जायेगा।"

"और रोचना ! माँने चलते वक्त यह द्राक्षा-सुरा दी थी। थोड़ी है किन्तु मासके साथ पीनेमें अच्छी होगी।"

"सुरा प्रिय है, तुझे पुरु।"

"प्रिय नहीं कह सकता, रोचना ! प्रियमें तृप्ति नहीं होती, किन्तु मैं तो आँखोंमें हल्की लाली उछलनेके बाद एक घूँटभी नहीं पी सकता।"

"यही हाल मेरा भी है पुरु ! नशेमें चूर आदमीको देखकर मुझे

बड़ी घृणा होती है।"—रोचनाने अपने काष्ठ-चषकको निकाल कर नीचे रख दिया।

तीन भागमे एक भाग माँस झब्बरको दिया गया, दोनोंने देरमें खान-पान समाप्त किया। चारों ओर अँधेरेकी घनी चादर तन गयी थी, मोटे लक्कड़ोंकी धधकती आगकी लाल रोशनी और उसके आस-पासकी थोड़ीसी जगहके सिवा और कुछ दिखायी नहीं देता था। हाँ, कुछ ध्वनियाँ उस वक्त सुनाई देती थीं, जो कीड़ों तथा दूसरे क्षुद्र जन्तुओं की मालूम होती थीं। बात और बीच-बीचमें वंशीकी तान चलती रही। आखिर सत्तू डालकर कई घंटेमे पका सूप भी तैयार होगया। दोनोंने गर्मा-गर्म सूप अपने चषकोंसे पिये। बड़ी रात जानेपर सोनेका प्रस्ताव हुआ। रोचना चमड़ेका बिछौना तैयारकर अपने कपड़ोंको उतारनेमें लगी; पुरुहूतने आगपर और लकड़ियाँ साजदीं, पशुओंके सामने घास डाल दिया, फिर वनके देवताओंकी प्रार्थनाकर कपड़ोंको उतार सो गया।

दूसरे दिन सबेरे उठे तो दोनों अनुभव करते थे, रात भरहीमे जैसे उन्होंने सगे बहिन भाई पा लिये। रोचनाके उठनेपर पुरुहूत अपनेको रोक नहीं सका और बोला—

"मेरा मन तेरा मुख चूमनेको करता है रोचना स्वसर (बहिन)!"

"और मेरा भी पुरु! इस जगत्मे हमने बहिन भाई पाये।"

पुरुहूतने उसके बिखरे बालोंको पीछेकी ओर सम्हालते हुए रोचनाके दोनों गालोंको चूम लिया। दोनोंके मुख प्रसन्न और नेत्र गीले थे। मुख धोकर वे थोड़ा सत्तू और सूखा माँस खाकर पशुओंको लादकर चल पड़े। बीच-बीचमे दो-तीन जगह वे बैठे भी, किन्तु बात-चीतमे समय इतना जल्दी बीता कि उन्हें मालूम नहीं हुआ कब डाँडेपर पहुँचे और कब माद्र बाबाके पास! रोचनाने परिचय दिया और बाबाने पुरुओंकी वीरताकी प्रशंसा करते हुए पुरुहूतका स्वागत किया।

(२)

इस डाडेपर मद्रोंका छोटा-सा गाँव बस गया था, जिसके सभी घर

तम्बू या फूसके झोपड़ोंके थे। जहाँ नीचे ढालू या खड़ी पहाड़ी भूमिपर घने देवदारुका जंगलही जंगल दिखलायी पड़ता था, वहाँ यहाँ डाँडेके ऊपर वृक्षोंका नाम नहीं था, जमीन अधिकतर चौरस थी, जिसपर हरी घासका मोटा फर्श बिछा हुआ था। इसी हरे मैदानमें कहीं भेड़ें, कहीं गायें, और कहीं घोड़े चर रहे थे, जिनके बीचमें कहीं-कहीं छोटे-छोटे बछड़े और बछेड़े छलाँग मारकर खेल दिखला रहे थे। इसी भूमिको देखकर तो माद्र बाबाका कहना था "मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया।" माद्र बाबाका तम्बू इस मासमें यहाँ है, जब घास कमहो जायगी तो दूसरी जगह चला जायगा। दूध, दही, मक्खन, मास की यहाँ अधिकता है। तम्बूके भीतर यही चीजें भरी हुई हैं। हर पन्द्रह-बीस दिनपर गाँवसे आदमी आता है और यहाँसे मक्खन तथा माँस ले जाता है। जाड़ोंमें इस डाँडेपर बर्फ पड़ जाती है। बाबाकी चले तो वे तब भी यहीं रहें, किन्तु पशु बर्फ खाकर तो नहीं रह सकते, इसीलिए घूम-घुमौवे रास्तेसे वे थोड़ा नीचे जंगलवाले प्रदेशमे चले आते हैं, और पशु सब नीचे गाँवमे। बाबा गाँवपर चलनेका नाम लेनेपर मारने दौड़ते हैं।

अभी दिन था जब दोनों पथिक बाबाके तम्बूपर पहुँचे थे, इसलिये सामान उतारनेके बाद जहाँ बाबाने हँसाते हुए सामने घोड़ीके दूधकी सुरा (कूमिस्) का काष्ठ-कुप्पा और प्याला रखा कि तीन चार प्यालेमें ही रास्तेकी सारी थकावट दूरहो गयी। शामको बछड़ों और बछेड़ोंको लिये रोचनाके भाई बहिन तथा गाँवके दूसरे तरुण चरवाहे भी आ गये। इधर रोचनाने बाबासे पुरुहूतकी वंशीका गुण बखाना था। फिर बाबा जैसे मौजी जीव पुरुहूतको कैसे छोड़ते। उन्हें और गोत्र (गोष्ठ) के सारे तरुणोंको वंशी बहुत पसंद है। रातको जब नृत्य हुआ तो पुरुहूतने वहाँभी अपनी करामात दिखलायी।

सबेरे पुरुहूतने जानेका नाम लिया, किन्तु बाबा इतनी जल्दी क्यों जाने देने लगे। दोपहरके भोजनके बाद बाबाने अपनी कथा शुरूकी,

और कथा शुरू हुई कंडीके पास रखी ताँबेकी पतीलीको देखकर। बाबाने कहा—

"इस ताँबे और खेतोंको देखकर मेरा दिल जल जाता है। जबसे ये चीजें वक्षुके तटपर आयी, तबसे चारों ओर पाप-अधर्म बढ़ गया, देवता भी नाराज हो गये, अधिक महामारी होने लगी, अधिक मार-काट भी।"

"तो पहले ये चीज़े नहीं थीं बाबा?"—पुरुहूतने कहा।

"नहीं बच्चा! ये चीजें मेरे बचपनमें जरा-जरा आयी, मेरे दादाने तो इनका नाम तक न सुना था। उस वक्त पत्थर, हड्डी, सींग लकड़ीके ही सारे हथियार होते थे।"

"तो लकड़ी कैसे काटते थे बाबा?"

"पत्थरके कुल्हाड़ेसे।"

"बहुत देर लगती होगी, और इतनी अच्छी तो नहीं कटती होगी?"

"इसी जल्दीने सारा काम चौपट किया। अब अपने दो महीनेके खाने तथा आधी जिंदगीके चढ़नेके एक अश्वको देकर एक अयः (ताँबेका) कुल्हाड़ा लो, फिर जगलका जंगल काट उजाड़ दो अथवा गाँवके गाँवको मार डालो। लेकिन गाँव जगलके वृक्षोंकी तरह निहत्था नहीं है, उसके पास भी उसी तरहका तेज़ कुल्हाड़ा है। इस अयः कुठारने युद्धको और क्रूर बना दिया। इसके घावसे जहर पैदा हो जाता है। पहले बाणके फल पत्थरके होते थे, वे इतने तीक्ष्ण नहीं थे, ठीक है; किंतु चतुर हाथोंमे ज्यादा कारगर होते थे। अब इन ताँबेके फलोंसे दुधमुँहें बच्चे भी बाघका शिकार करना चाहते हैं। अब काहे कोई निष्णात धनुर्धर होना चाहेगा।"

"बाबा! मैं तेरी एक बातसे सहमत हूँ; मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया।"

"हाँ वत्स! पहले दिनके किये पाखाने पर रोज-रोज पखाना करना हो तो कितना बुरा लगेगा! हमारा तबू आज यहाँ है, पशु यहाँके

तृण खा लेंगे। इसके आस-पास मनुष्यों और पशुओंके पेशाब और पाखाने दिखलायी पड़ने लगेंगे, उस समय हम इस जगहको छोड़ दूसरी जगह चले जायँगे। वहाँ नये हरे-हरे तृण अधिक होंगे, वहाँ धरती, पानी, हवा अधिक शुद्ध होगी।"

"हाँ बाबा! मैं भी ऐसी ही धरतीको पसन्द करता हूँ। ऐसी धरती पर मेरी वंशी ज्यादा सुरीली आवाज़ निकालती है।"

"ठीक कहा वत्स! पहले हम इन्हीं तम्बुओंके झुण्डको ग्राम कहते थे, और ये झुण्ड एक ही जगह साल भर क्या, तीन महीने भी नहीं रहते थे, किंतु आजके गाँव पुत्र-पौत्र सौ पीढ़ीके लिए बनते हैं। पत्थर, लकड़ी, मिट्टीकी दीवारें उठाते हैं, जिनसे हवा भीतर नहीं आ सकती। पत्थर, लकड़ी, फूसकी छत पाटते हैं, जिसके भीतर हवा क्या जायगी! आज कहनेके लिए अग्निको देवता, वायुको देवता, कहते हैं, किंतु आज उनके लिए हमारे हृदयमें वह सम्मान नहीं है। इसीलिए आज कितनी नयी-नयी बीमारियाँ होती हैं। हे मित्र! हेना सत्य! हे अग्नि! तुम जो इन मानवोंपर कोप दिखलाते हो, सो ठीक ही करते हो।"

"किंतु बाबा! इन अयः-कुठारों, अयः-खड्गों, अयः-शल्योंको छोड़कर हम जिंदा कैसे रह सकते हैं! इन्हें छोड़ दें, तो शत्रु हमें एक दिनमें खाजायँ!"

"मैं मानता हूँ वत्स! दो महीनेका भोजन या आधी जिंदगीकी सवारीवाले घोड़ेको खुशी-खुशी बेंचकर लोगोंने अयः-खड्ग नहीं खरीदा। वक्षु-माताकी कोखमें दाग लगाया, निचले मद्रों और पर्शुओंने। वक्षु-रोद (नदी) कहाँ तक जाता है मैं नहीं जानता, कोई नहीं जानता। ऐसे ही झूठ बकनेवाले कहते हैं कि पृथिवी के छोरपर जो अपार पानी है, उसमें जाता है। हाँ, यह मालूम है, मद्रों और पर्शुओंकी भूमि खतम होते ही वक्षु-रोद पहाड़ छोड़ मैदानमें चला जाता है, और आगे झूठ बोलनेवाले देव-शत्रुओंकी भूमि है। कहते हैं, वहाँ बड़ी-

बड़ी टाँगोंवाले छोटे-मोटे पहाड़ जैसे जन्तु होते हैं, क्या कहते हैं बच्चा ! अब स्मृति क्षीण होती जारही ।"

"उष्ट्र (शुतुर, ऊँट) बाबा ! लेकिन वह पहाड़ जितना नहीं होता । एक दिन एक निचला माद्र उष्ट्र का बच्चा लाया था । छै महीने का बतलाता था, वह हमारे घोड़ोंके बराबर था ।"

"हाँ वत्स ! ये जो बाहरके देशोंसे घूमकर आते हैं झूठ बोलना बहुत सीख जाते हैं । कहते थे—क्या कहते हैं ?"

"उष्ट्र ।"

"हाँ उष्ट्रकी गर्दन इतनी लम्बी होती है कि वह वक्षुके इस तट पर खड़ा हो उस तटकी घासको चर सकता है । यह भी झूठ है न बच्चा ?"

"हाँ, बाबा ! उस बच्चेकी गर्दन घोड़ेसे जरूर बड़ी थी, किंतु घास चरनेकी बात बिलकुल झूठ थी ।"

"इन्हीं झूठे मद्रों और पर्शुओंने अयः-कुठार, अयः-खड्गकी बीमारी फैलायी । पर्शुओंने हम उत्तर-मद्रोंपर इन हथियारोंसे हमला किया । बापके समयकी बात है, दो-दो घोड़े देकर एक-एक अयः-कुठार निचले मद्रोंसे हमारे लोगोंने खरीदा ।"

"अयः कुठारके सामने पाषाण-कुठार बेकार थे न बाबा ?"

"हाँ, बेकार थे वत्स ! इसीलिए मजबूर होकर अयः-शस्त्र लेने पड़े । और जब पुरुओंपर निचले मद्रोंने आक्रमण किया तो तुम्हारे लोगोंने हम मद्रोंसे अयः-शस्त्र खरीदे । उत्तर मद्रों और पुरुओंमें कभी झगड़ा नहीं सुना गया वत्स ! किंतु पर्शु और निचले मद्र सदासे दस्युका काम करते आये हैं, सदासे पुराने धर्मको छोड़कर नयी बातें करते आये हैं, और उनके कारण हमारे लोगोंको भी अपनी प्राण-रक्षाके लिए वैसा करना पड़ा । मैं समझता हूँ, जब तक निचले मद्र और पर्शु भी अयः-शस्त्रोंको नही छोड़ते, तब तक हम ऊपर वालोका उन्हें छोड़ना आत्म-हत्या करना है । किंतु अयः (ताँबा) का इतना प्रसार बुरा है, इसमे तो शक नही वत्स ! इस पापके प्रसारक यही दोनों जन हैं, इनको

कभी देवोंका आशीर्वाद नहीं मिलेगा। घोर अन्धकारवाले पातालमें थे जायेंगे वत्स! जरूर जायेंगे। इन्हींकी देखा-देखी इन्हींके डरसे हमारे मिट्टी पत्थरवाले ग्राम बसे। पहले ऐसे ही तम्बुओंवाले आज यहाँ कल वहाँ रहनेवाले—ग्राम वक्षुकी कुक्षिमें थे। किंतु इन मद्रोंने, इन पशुओंने यह बात तोड़ दी। कहाँसे देखकर धरती माताकी छाती चीरी इन्होंने इन्हीं अयः-शस्त्रोंसे। ऐसा पाप कभी किसीने नहीं किया। धरती को माता कहते हैं न वत्स?"

"हाँ, बाबा! धरतीको माता कहते हैं, देवी कहते हैं, उसकी पूजा करते हैं।"

"और उस धरती माताकी छातीको अपने हाथोंसे इन पापियोंने चीरा। और क्या किया—नाम भूलता हूँ, स्मृति काम नहीं करती वत्स!"

"कृषि, खेती।"

"हाँ, कृषि और खेती चलायी। गेहूँ बोया, व्रीहि (चावल) बोया, जौ बोया आज तक कभी यह सुना नहीं गया। हमारे पूर्वजोंने कभी धरती माताकी छाती नहीं चीरी, देवीका अपमान नहीं किया। धरती माता हमारे पशुओंके लिए घास देती थी। उसके जंगलोंमें तरह-तरहके मीठे फल थे, जो हमारे खानेसे खतम नहीं होते थे। किंतु इन मद्रोंके पाप और उनकी देखा-देखी किये गये हमारे पापके कारण वह पोरिसा भर उगनेवाली घासें कहाँ हैं? अब पहले जैसी मोटी गायें—जिनमेंसे एक सारे मद्र जनके एक दिनके भोजनको पर्याप्त हो सकतीं—कहाँ हैं? न वे गायें, न वे घोड़े, न वे भेड़ें हैं। जंगलके हरिन और भालू भी अब उतने बड़े नहीं होते। आदमी भी उतने दिनों नहीं जीते। यह सब पृथवी देवीके कोपके कारण है वत्स! और कुछ नहीं।"

"बाबा! आपने कितनी शरद (जाड़े) देखे हैं?"

"सौ से ऊपर वत्स! उस वक्त हमारे गाँवके दश तम्बू थे, अब

मिट्टी पत्थरकी दीवारोंवाले सौ घर हो गये हैं। जब खेत नहीं थे, तब हमारे चलते फिरते घर, चलते फिरते ग्राम होते थे। जब खेत हो गये, तो उनके गेहूँ को हरिनोंसे बचाओ, दूसरे पशुओंसे बचाओ। खेत क्या मनुष्यके बाँधनेके लिए खूँटे हो गये। लेकिन वत्स! मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नही पैदा किया गया। जो बात देवोंने मानवोंके लिए नही बनायी उसे इन मद्रों और पर्शुओंने बनाकर दिखाया था।"

"किन्तु बाबा! क्या अब इस खेतीको हम चाहें तो छोड़ सकते हैं? आज हमारा आधा भोजन धान्य है।"

"हाँ, यह मानता हूँ वत्स! किन्तु धान्य हमारे पूर्वज नहीं खाते थे। यहाँसे पच्चीस कोस दक्खिन गेहूँका जंगल है, वहाँ गेहूँ अपने आप जमता, अपने आप फलता, अपने आप झर जाता है। उसे गायें खातीं, उनका दूध बढ़ जाता है, घोड़े खाते हैं और खूब मोटे हो जाते हैं। हर साल हमारे पशु वहाँ जाते हैं। धरती माताने धान्यों-को आदमीके लिए नहीं पैदा किया—उनके दाने हमारे खेतवाले गेहूँसे छोटे-छोटे होते हैं—धरतीने इन्हें पशुओंके लिए बनाया था। मुझे डर लगता है कि कहीं जंगली गेहूँ नष्ट न हो जायें। हमारे खानेके लिए वत्स! ये गायें हैं, घोड़े हैं, भेड़-बकरियाँ हैं; जंगलमें भालू, हिरन, सूअर कितनी ही तरहके शिकार हैं, द्राक्षा आदि कितने तरहके फल हैं। यह सब आहार धरती माता हमे खुशीसे देती थी, किन्तु बुरा हो इन मद्रों, पर्शुओंका इन्होंने पुराना सेतु तोड़ नया रास्ता बनाया, जिससे मानवों पर देवोंका कोप उतरा। अभी वत्स! न जाने वक्षु-वासियोंके भाग्यमे क्या क्या बदा है। मैं तो पच्चीस सालसे डाँडा छोड़ ग्राममे नहीं गया। जाड़ोंमें थोड़ा नीचे एक झोपड़ीमें चला जाता हूँ। क्या जाऊँ सभी लोग पूर्वजोंके बाँधे सेतुको तोड़ फेंकना चाहते हैं। पूर्वजोंके मुँहसे निकली वाणीका भी मैं इतने दिनोंसे गोप रहा हूँ, अब भी जिसको सीखना होता है, वह यहाँ मेरे पास आता है। किन्तु

उस वाणीके न मानने वाले बहुत होते जा रहे हैं। अब सुनते हैं मद्रों-पर्शुओंका खेतीसे भी पेट नहीं भर रहा है। अब वे वक्षुवालोंके आहार-परिधानको ढो-ढोकर कहाँ दे आ रहे हैं, और उनकी जगह क्या मिलता है—देखो यही एक घोड़ेको देकर खरीदी पतीली। भूखे मरने लगे तो क्या इस पतीलीके खानेसे पेट भरेगा? अब पुरुओंको पेटके आधार तथा शरीरके वस्त्रसे रहित पाओगे, और उनकी जगह उनके घरोंमें इन पतीलियोंको पाओगे।"

"और बाबा! एक और सुना है, निचले मद्रोंकी स्त्रियोंने कानों और गलोंमें पीले सफेद आभूषण पहनने शुरू किये हैं। एक कानके आभूषणमें एक घोड़ेका दाम लग जाता है, बाबा! उसे अयः नहीं हिरण्य (सोना) कहते हैं, और सफेद को रजत।"

"कोई मार नहीं देता इन अधर्मियोंको। ये सारे वक्षु-जन-मंडल का सत्यानाश करके छोड़ेंगे, ये हमारे आहार-परिधानके लिए जो कुछ बच रहा है, उसे भी नहीं छोड़ेंगे। हमारी स्त्रियाँ भी उनकी देखा-देखी दो घोड़ेके दामका कुंडल कानोंमें पहनेंगी। हे कृपालु अग्नि! अब अधिक दिन मानवोंमें मत रखो, मुझे पितरोंके लोकमें ले चलो।"

"एक और भारी पाप बाबा! मद्र और पर्शु कहीसे आदमी पकड़ लाये हैं, उनसे अयःखड्ग, अयः-कुठार बनवाते हैं। वे बड़े चतुर शिल्पी हैं बाबा! किन्तु, मद्र पर्शु उन्हें पशुकी तरह जब चाहते हैं रखते हैं, जब चाहते बेच देते हैं। खेतीका काम, कम्बल बुननेका काम और क्या-क्या दूसरे काम ये लोग इन्हीं पकड़कर रखे लोगों—जिन्हें वे दास कहते हैं—से कराते हैं।"

"मनुष्यका खरीदना बेचना! हम तो आहार-परिधानका बेंचना भी बुरा मानते थे, किन्तु हमारे पूर्वज पितरोंको यह आशा न थी, कि ये मद्र-कुल-कलंक इतने नीचे गिर जायँगे। जब अंगुली सड़ने लगे तो उसकी दवा है, काट फेंकना, नहीं तो सारा शरीर सड़ जायगा। इन

मद्रों-पर्शुओंको वक्षु-तटपर रहने देना पाप है पुत्र ! मैं अब ज्यादा दिन तक देखनेके लिए नहीं रहूँगा !"

माद्र बाबाकी कहानियाँ बड़ी मनोरंजक और शिक्षा-प्रद मालूम होती थीं, किन्तु पुरुहूत इतना समझनेकी भी शक्ति रखता था कि जो हथियार आ गये हैं, उन्हे छोड़कर मनुष्य तथा पशु-शत्रुओंके बीच जिया नहीं जा सकता ।

तीसरे दिन जब वह विदा होने लगा, तो वृद्धने उसके ललाट और भ्रू को चूमकर आशीर्वाद दिया । रोचना उसे दूर तक पहुँचाने गयी, और अलग होते वक्त दोनोंने एक दूसरेके गालोंको अश्रु-विंदुओंसे प्रक्षालित किया ।

(२)

माद्र बाबाकी बात ठीक हुई, यद्यपि पच्चीस वर्ष बाद—निचले मद्र और पर्शु दिनपर दिन ऊपरवाले पुरुओं और मद्रोंको दबाते ही गये । जहाँ इन ऊपरवाले जनोंमें कपड़ा कंबल बनानेवाले स्वतंत्र स्त्री-पुरुष होते, जिनके खाने कपड़ेपर खर्च ज्यादा पड़ता, जिससे उनके हाथकी बनी वस्तु अच्छी होते भी अधिक मँहगी पड़ती; वहाँ नीचेके मद्रों और पर्शुओंके पास दास थे जिनकी बनायी चीजें उतनी अच्छी नहीं होतीं तो भी सस्ती पड़तीं । जब वहाँके व्यापारी इन सभी चीजोंको बाहरके देशोंमें ऊँट या घोड़े पर लादकर ले जाते, तो बहुत बिकतीं । ऊपरी जनोंको भी अब ताँबेकी वस्तुएँ अधिकाधिक सख्यामें जरूरी थीं—एक तो हर साल वह कुछ न कुछ सस्ती होती जाती थीं; दूसरे मिट्टी-काठकी चीजोंसे वे चिरस्थायी होतीं । जहाँ पच्चीस साल पहले ताँबेकी पतीली एकाध घरोंमें दिखायी पड़ती वहाँ अब उससे खाली ही घर खाली थे । सोने-चाँदीका भी रवाज बढ़ने लगा था । और इन सबके बदले इन जनोंको आहार, कंबल, चमड़ा, घोड़े या गायें बेचनी पड़ती, जिससे उनकी अवस्था गिरती जा रही थी । ऊपरके

जनोंके कुछ लोगोंने भी सीधे व्यापार करनेकी कोशिशकी, क्योंकि उन्हें संदेह होने लगा था, कि उनको नीचेके पड़ोसी ठग रहे हैं; लेकिन वक्षुके नीचे जानेका रास्ता उन्हींकी जन-भूमिसे होकर था जिसे मद्र खोलना नही चाहते थे। कई बार इसको लेकर छोटे-मोटे झगड़े भी हुए। कितनी ही बार उत्तर मद्रों और पुरुओंने बाहरके देशोंमें जानेके लिए दूसरे रास्ते निकालने चाहे, किंतु उसमे वे सफल नहीं हुए।

नीचे ऊपरके जनोंके इस संघर्षमें एक खास बात यह थी कि जहाँ नीचेवाले आपसमें मेल नही रख सकते थे, वहाँ ऊपरवाले जन मिलकर आक्रमण प्रत्याक्रमणकर सकते थे। इन युद्धोंमे अपनी वीरता और बुद्धिमानीके कारण पुरुहूत अपने जनका प्रिय हो गया था, और तीस सालकी छोटी आयुमे पुरु-जनने उसे अपना महापितर चुन लिया था।

पुरुहूतको साफ दीख रहा था कि यदि मद्रोंके इस व्यापारिक अन्यायको रोका नहीं गया तो ऊपरी जनोंके लिए कोई आशा नहीं। ताँबेका प्रचार कम होनेकी जगह दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था; हथियार, बर्तन और आभूषणके लिए ही नहीं, अब तो लोग विनिमयके लिए मनों माँस या कम्बल ले जानेकी जगह ताँबेकी तलवार या छुरी ले जाना पसंद करते थे। पुरुहूतने अपने जनकी बैठकके सामने अपने दुःखोंका कारण इन नीचेके जनोका व्यापारिक अन्याय बतलाया। सभी सहमत थे कि मार्ग-कंटक, मद्रोंको हटाये बिना वे उनके हाथकी कठपुतली बन जायँगे। शायद वे दिन भी आये जब कि वे उनके दासों जैसे हो जाये। पुरु और उत्तर-मद्रके महापितरोंकी इकट्ठा बैठक में भी लोग उसी निष्कर्षपर पहुँचे। दोनों जनोंने मिलकर युद्ध-संचालनके लिए पुरुहूतको अपना एक सम्मिलित सेनापति चुना और उसे इन्द्रकी उपाधि दी। इस प्रकार पुरुहूत प्रथम इन्द्र था।

पुरुहूतने बड़े जोरसे सैनिक तैयारी शुरू की। इन्द्र बनते ही उसने

हथियार बनानेका इंतिजाम करनेके लिए दो लोहार दासोंको अपने यहाँ शरण दी। ऊपरी जन उनके साथ बहुत अच्छा बर्ताव करते थे, और उनकी सहायतासे वह लोह (लाल धातु=ताँबा) शिल्पमें निपुणता प्राप्त करनेमें सफल हुए। इस प्रकार मद्रों और पुरुओंमें कितने ही लोह-शिल्पी तैयार हो गये। अपने लोहार दासोंको लौटा देनेके लिए पड़ोसियोंने जबान ही नही बल्कि शस्त्रको भी इस्तेमाल करना चाहा; किन्तु निचले जनोंमें बनियापनके साथ-साथ योद्धाके पराक्रमकी कमी भी आ गयी थी। लड़ाईमें सफल न होनेपर उन्होंने ताँबा देना बन्दकर दिया। किन्तु उन्हे जल्दी ही मालूम हो गया कि इससे उनका व्यापार ही चौपट हो जायगा—मद्र पुरु तो पिछले समयकी खरीदी पतीलियाँ तथा दूसरे बर्तनोंसे अपने शस्त्र तैयार करनेमें एक पीढ़ीके लिए स्वतंत्र थे।

आखिर इद्र और उसके दोनों जनोंने मद्र-पर्शुओंको मिटा डालनेका सकल्प किया। पुरुहूतने स्वय भी लोहारका काम सीखा था, और उसके सुझावके अनुसार खड्ग भाले तथा बाण-फलमे कई सुधार हुए। उसने कितने ही चतुर बलिष्ठ भटोंकी छातियोंको चोटसे बचानेके लिए ताँबेके वक्ष-त्राण बनवाये।

इन्द्रने तय किया कि पहले सिर्फ एक शत्रुको लिया जाय, और इसके लिए उसने पर्शुओंको चुना। जाड़ोंमे पर्शु अधिक सख्यामें व्यापार-के लिए बाहर चले जाते थे, इन्द्रने इसी समयको सबसे अच्छा समझा। उत्तर मद्र और पुरुके योद्धाओंको उसने युद्ध-कौशल सिखलाया। यद्यपि पशुओं और मद्रोंकी शत्रुता चिरसे चली आती थी, किंतु उनको क्या पता था कि इस तरह अचानक उनके ऊपर शत्रुका ऐसा घातक आक्रमण होगा, जिसके कारण वक्ष-उपत्यकासे उनका नाम तक मिट जायगा। इन्द्रने स्वयं अपने नेतृत्वमें चुने हुए मद्र और पुरु-योद्धाओं के साथ आक्रमण किया। युद्धके उद्देश्यको पहचाननेमें देर न हुई, और समझ जाने पर पर्शु-प्राणकी बाजी लगाकर बड़ी वीरतासे लड़े।

किंतु, उस जल्दीमें वे सारे पर्शु-ग्रामोंको एकत्र न कर सके। इन्द्रकी सेनाने एकके बाद एक पर्शु-ग्रामोंको लेते हजारों पर्शुओंका संहार किया—किसीको बंदी नहीं बनाया। उधर निचले मद्रोंने जब संकटको समझा, तो समय बीत चुका था। आखिरके कुछ गाँवही अब रह गये थे, जिनके लिए काफी भटोंको छोड़ पुरुहूत इन्द्र कुरु-भूमि में चला आया। निचले मद्रोंने आक्रमण किया, किंतु उनकी भी वही दशा हुई जो कि पर्शुओंकी हुई। निचले मद्र और पर्शु-जनोंका जो भी पुरुष—बाल, तरुण, वृद्ध—उनके हाथ आया, उसे उन्होंने जीवित नहीं छोड़ा—स्त्रियोंको अपनी स्त्रियोंमें शामिलकर लिया। हाथ आये दासोंमें जिन्होंने अपने देशमें लौट जाना चाहा, उन्हें लौटा दिया। कुछ निचले मद्र और पर्शु-स्त्री-पुरुष जान बचाकर वत्तु-उपत्यका छोड़ पश्चिम की ओर चले गये। उन्हींकी संतानें पीछे ईरानके पर्शु (पर्सियन) और मद्र (मिडियन) के नामसे प्रसिद्ध हुईं। उनके पूर्वजों पर इन्द्रके नेतृत्वमे जो अत्याचार हुआ था, उसे वे भूल नहीं सकते थे। इसी लिए ईरानी इन्द्रको अपना सबसे ज़बर्दस्त शत्रु मानने लगे। सारी वत्तु-उपत्यका उत्तर-मद्रों और पुरुओंके हाथ आयी। दोनोंने दाहिने-बाँये तटको आपसमें बाँट लिया।

वत्तुवालोंने भरसक कोशिशकी कि नयीको हटाकर पुरानी बातोंकी फिरसे स्थापना करें; किंतु वे ताम्रको छोड़ पत्थरके हथियारोंकी ओर नहीं लौट सकते थे, और ताम्रके लिए वत्तुकी पहाड़ी उपत्यकासे बाहर व्यापार-संबंध करना जरूरी था।

हाँ, दासताको उन्होंने कभी नहीं स्वीकार किया, और न बाहरी लोगोंको वत्तु-उपत्यकाका स्थायी निवासी बननेका अधिकार दिया। शताब्दियोंके बाद जब पुरुहूत इन्द्रको भी लोग भूलने लगे थे, या उसे देवता बना चुके थे, तो वंश इतना बढ़ गया कि सबका भरण-पोषण वत्तु नहीं कर सकती थी, इसलिये उनकी कितनी ही संतानें दक्षिणकी ओर बढ़नेके लिए बाध्य हुईं।

अबसे पहले एक जन दूसरेसे स्वतंत्र रहता था, महापितर की प्रधानता होने पर भी वह सब कुछ जनपर निर्भर करता था। किंतु वक्षु-तटके अंतिम संघर्षने कई जनोंके एक सेनापति, इन्द्रको जन्म दिया।*

---

*आजसे एकसौ अस्सी पीढ़ी पहलेके आर्यजनोंकी यह कहानी है। इन्हीं जनोंमें से कुछकी सन्तानें अब भारतकी ओर प्रस्थान करनेवाली थीं। उस समय कृषि और ताँबेका प्रयोग होने लगा था; आर्य दासताको स्वीकृत कर उसे फिरसे विस्मृत करना चाहते थे।

५—पुरुधान

देश—ऊपरी स्वात; जाति—हिन्दी आर्य

काल—२००० ई० पू०

वह सुवास्तुका बायाँ तट अपने हरे-भरे पर्वतों, बहते चश्मों, दूर तक फैले खेतोंमें लहराते गेहूँके पौधोंके कारण अत्यन्त सुन्दर था। किन्तु, आर्योंको सबसे अधिक अभिमान था, अपनी पत्थरकी दीवारों तथा देवदारके पल्लोंसे छाई वस्तुओं—घरों—का, तभीतो उन्होंने इस प्रदेशको सुवास्तु (सुन्दर घरोंवाला प्रदेश, स्वात) नाम दिया। वक्षुतट पार करते आर्योंने पामीर और हिन्दुकुशके दुर्गम डाँडों, तथा कुनार, पंजकोरा-जैसी नदियोंको कितनी मुश्किलसे पार किया, इसकी स्मृति शायद उन्हें बहुत दिन तक रही, और क्या जाने आज जो मंगलपुर (मंगलोर) में इन्द्र-पूजाकी भारी तैयारी है, वह इन्हीं दुर्गम पथोंसे सकुशल निकाल लानेवाले अपने इन्द्रके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए हो।

आज मंगलपुरके पुरुओंने अपने-अपने सुन्दर गृहोंको देवदारकी हरी शाखाओं और रंग-बिरंगी झंडियोंसे सजाया है। पुरुधानको एक खास तरहकी लाल झंडियाँ लगाते हुए देख, एकको हाथमें ले उसके पड़ोसी सुमेधने कहा—

"मित्र पुरु! यह तुम्हारी झंडियाँ बड़ी हल्की और चिकनी हैं। हमारे यहाँतो ऐसे वस्त्र नहीं बनते, यह दूसरीही तरहकी भेड़ें होंगी?"

'यह भेड़ोंका ऊन नहीं है सुमेध!"

"तो फिर?"

"यह ऐसा ऊन है, जो वृक्षपर उगता है।"

"हमारे यहाँ जैसे भेड़ोंके शरीरपर ऊन उगता है, उसी तरह यह ऊन जंगलमें वृक्षपर उगता है।"

'ऐसाही सुना जाता है मित्र ! मैंने स्वयं उस वृक्षको नहीं देखा।"

सुमेरने तकलेको जाँघोंसे रगड़कर घूमनेके लिए फेंक ऊनकी नई प्यूनी लगाते हुए कहा—कितने भाग्यवान होंगे वे लोग जिनके जंगलके वृक्षोंमें ऊन जमती है। क्या हमारे यहाँ यह वृक्ष नहीं लगाये जा सकते ?

"सो मालूम नहीं। सर्दी-गर्मीको वह वृक्ष कितना बरदाश्त कर सकता है, इसे हम नहीं जानते; किन्तु सुमेध ! मांस तो वृक्षपर नहीं पैदा होता !"

"जब किसी देशमें ऊन वृक्षपर पैदा होता है, तो किसीमे मास भी हो सकता है। और इसका दाम ?"

"दाम ऊनी कपड़ेसे बहुत कम; किन्तु ऊनके बराबर यह ठहरता नही।"

"कहाँसे खरीदा ?"

"असुर लोगोंके पास से। यहाँसे पचास कोसपर उनका देश है, वह लोग इसीका कपड़ा पहनते हैं।"

"इतना सस्ता है, तो हम लोगभी इसे क्यों न पहनें ?"

"किन्तु इससे जाड़ा नहीं जा सकता।"

"फिर असुर कैसे पहनते हैं ?"

"उनके यहाँ सर्दी कम पड़ती है, बरफ तो देखनेको नहीं मिलती।'

'तुम वाणिज्यके लिए पूर्व, उत्तर, पश्चिम न जा दक्खिनको ही क्यों' जाते हो ?"

"उधर नफा अधिक रहता है, और चीज़े भी बहुत तरहकी मिलती हैं; लेकिन एक बड़ी तकलीफ है—वहाँ बहुत गर्मी है, मधुर शीतल जलके लिए तो जी तरस जाता है।"

'लोग कैसे होते हैं पुरुधान ?"

"लोग नाटे-नाटे होते हैं, रंग ताँबे-जैसा। बड़े कुरूप। नाक तो, मालूम होती है, है ही नहीं—बहुत चिपटी-चिपटी भौंड़ी-भौंड़ी। और एक बहुत बुरा रिवाज है वहाँ, आदमी खरीदे-बेचे जाते हैं।"

"खरीदे-बेचे ?"

"उन्हें दास कहते हैं।"

"दासों और स्वामियोंकी सूरत-शकलमे क्या कुछ अन्तर होता है ?"

"नहीं। हाँ, दास बहुत गरीब परतन्त्र होते हैं—उनका तन-प्राण स्वामीके हाथमे होता है।"

"इन्द्र हमारी रक्षा करे, ऐसे लोगोंका मुँह देखनेको न मिले।"

"और मित्र सुमेध! अबभी तुम्हारा तकला चल रहा है; यज्ञमें नहीं चलना है ?"

"चलना क्यों नहीं है, इन्द्रकी कृपासे पीवर पशु और मधुर सोम मिलता है। उसी इन्द्रकी पूजामे कौन अभागा है, जो न शामिल होगा ?"

"और तुम्हारी गृहपत्नीका क्या हाल है, आजकलतो अखाड़ेमे उसका पता ही नहीं चलता ?"

"चसक गये हो क्या पुरुधान ?"

"चसकनेका सवालही क्या है ! तुमनेतो सुमेध जान-बूझकर बुढापेमें तरुणीसे प्रणय करना चाहा।"

"पचासमें बुढ़ापा नहीं आता।"

"लेकिन, पचास और बीसमे कितना अन्तर होता है

"तो उसने उसी दिन इन्कारकर दिया होता ?"

"उस दिनतो दाढ़ी-मूँछ मुड़ाकर अठारह वर्षके बन गये थे, और उषाके माँ-बापकी नज़र पचास वर्षपर नहीं; बल्कि तुम्हारे पशुओं पर थी।"

"छोड़ो इस बातको पुरु ! तुम तरुण लोग तो हमेशा"

"अच्छा छोड़ता हूँ सुमेध ! देखो बाजा बजने लगा है, यज्ञ आरम्भ होगा।"

"देर करा दोगे तुम; और गाली सुनेगा बेचारा सुमेध।"

"तो चलो, उषाको भी साथ लेते चलें।"

"वह क्या अब तक घरपर बैठी होगी ?"

"और इस ऊन और तकलेको तो लाओ रख चलें।"

"इससे यज्ञमे बाधा नहीं पड़नेकी।"

"इसीलिएतो उषा तुम्हें पसन्द नहीं करती।"

"पसन्दतो करती, किन्तु तुम मंगलपुरके तरुण यदि पसन्द करने-दों तब न ?"

बात करते दोनों मित्र नगरसे बाहर यज्ञ-वेदीकी ओर जा रहे थे। जिस तरुण-तरुणीकी पुरुधानसे चार आँखे होतीं, वह मुस्कुरा उठता। पुरुधान उन्हें आँखोंसे इशाराकर मुँह फेर लेता। सुमेधकी नजरोंने एक बार एक तरुणको पकड़ लिया, फिर क्या था, वह बड़बड़ाने लगा—

"मंगलपुरके कलंक हैं यह तरुण।"

"क्या बात है, मित्र!"

"मित्र-वित्र नहीं, मुझको देखकर हँसते हैं।"

"यह बदमाश है मित्र, तुमतो जानतेही हो, इसकी बातको क्या लिये हो।"

"मुझे तो मंगलपुरमे भलामानुष कोई दिखलाईही नहीं पड़ता।"

यज्ञ-वेदीके पास विस्तृत मैदान था, जिसमे जहाँ-तहाँ मंच और देवदारके पत्तोंवाले खम्भोंपर तोरण-बन्दनवार टँगे थे, ग्रामके बहुतसे स्त्री-पुरुष वेदीके आस-पास जमा थे; किन्तु अभी वह बड़ा जमावड़ा तो शामसे होनेवाला था जबकि सारे पुरुजनके नर-नारियोंका भारी मेला मंगलपुरमें लगेगा और जिसमे स्वात नदीके दूसरे तटके भद्र भी शामिल होंगे।

उषाने दोनों जोड़ीदारोंको आते देखा और वह सुमेधके पास आकर उसके हाथको अपने हाथोंमें ले तरुण-तरुणियोंका-सा प्रेमाभिनय करते बोली—

"प्रिय सुमेध! सवेरेसे ढूँढती-ढूँढती मर गई, तुम्हारा कहीं पता नहीं!"

"मैं क्या कहीं मर गया था ?"

"ऐसा वचन मुँहसे मत निकालो सुमेध ! जीते-जी मुझे विधवा न बनाओ।"

"विधवाओंको पुरुओंमें देवरोंकी कमी नहीं।"

"और सधवाओंको क्या देवर विष लगते हैं ?"—पुरुधानने कहा।

"हाँ, ठीक कहा पुरु ! यह मुझको चराने आई है। सबेरेसे ही घर से निकली है, न जाने कितने घर न्योंते बाँटे होंगे और शामको एक कहेगा मेरे साथ नाच, दूसरा कहेगा मेरे साथ। झगड़ा होगा, खून-खराबी होगी, और इस स्त्रीके लिए बदनाम होगा सुमेध।"

उषाने हाथको छोड़ आँखों और स्वरकी भावभंगीको बदलते हुए कहा—तो उषाको तुम पिटारीमें बाँधकर रखना चाहते हो ? जाओ तुम चूल्हे-भाड़में, मैं भी अपना रास्ता लेती हूँ।"

उषाने एकान्त पा पुरुधानको देख मुस्कुरा दिया, और वह वेदीके गिर्दकी भीड़में गायब हो गई।

सालमें सिर्फ आजका ही दिन है, जब स्वातकी उपत्यकामें पुराने इन्द्रको वक्षु-तटकी भाँति सबसे मोटे अश्वका मांस खानेको मिलता है, घोड़ेके लिए सारे जनमें चुनाव होता है। वैसे स्वात उपत्यकामें घोड़ा नहीं खाया जाता; किन्तु इन्द्रकी इस वार्षिक पूजाके यज्ञ-शेषको सभी भक्तिभावसे ग्रहण करते हैं। जनके महापितर—जिन्हें यहाँ जन-पति कहा जाता है—आज अपने जन-परिषद्के साथ इन्द्रको वह प्रिय बलि देनेके लिए मौजूद हैं। जनपतिको बलिदानका सारा विधि-विधान याद है, वह सारे मन्त्र याद हैं, जिनसे स्तुति करते हुए वक्षुतटवासी इन्द्रको बलि दिया करते थे। बाजे और मन्त्र-स्तुतिके साथ अश्वके स्पर्श, प्रोक्षणसे लेकर आलम्भन (मारने) तक सारी क्रिया सम्पन्न हुई। फिर अश्वके चमड़ेको अलग कर उसके शरीरके अवयवोंको अलग-अलग रखकर, कितनेको कच्चा और कितनेको बघारकर, अग्निमें आहुति दी गई। यज्ञ-शेष बँटते-बँटते शाम होनेको आई। तब तक सारा मैदान नर-नारियोंसे

भर गया। सभी अपने सुन्दरतम वस्त्रों और आभूषणोंमे थे। स्त्रियोंके शरीरमें रंगीन सूक्ष्म कम्बल दाहिने कन्धे पर तांबेके कामदार भिन्न रंग के कमरबन्दसे बँधा हुआ था, जिसके भीतर सुन्दर कंचुक था। कानों मे अधिकांशके सोनेके कुंडल थे। बसन्त समाप्त हो रहा था, उपत्यकामे बहुत तरहके फूल, मानो आजके लिए ही फूले हुए थे। तरुण-तरुणियों ने अपने लम्बे केशोंको उनसे खूब सँवारा था और आज इन्द्रोत्सवमे उन्हें स्वच्छन्द प्रणयका पूरा अधिकार था। शामको जब बनी-ठनी उषा पुरुधानके हाथको अपने हाथमें लिये घूम रही थी, तो सुमेधकी नजर उनपर पड़ी। उसने मुँह फेर लिया। क्या करता बेचारा। इन्द्रोत्सवके दिन गुस्सा भी नहीं कर सकता था। पिछले ही साल इसके लिए जनपति ने उसे फटकारा था।

आज सचमुच मधु-क्षीर मिश्रित सोम (भग) रसकी नदियाँ बह रही थीं। गाँव गाँवके लोगोंकी ओरसे बछड़े या बेहद्के स्वादिष्ट मांस और सोमरसके घट आकर रखे हुए थे। अभिनव प्रणयमें तरुण-तरुणियोंका हर जगह यह स्वागत था। वह मांस-खण्डमे मुँह डालते, सोमका प्याला पीते, इच्छा होनेपर बाजे—जो बजते या हरवक्त बजने के लिए तैयार रहते थे—पर कुछ नाचते, और फिर दूसरे ग्रामके स्वागत स्थानको चल देते। सारे जनकी ओरसे बड़े पैमाने पर तैयारी की गई थी, यहांका नाचनेका अखाड़ा भी बहुत बड़ा था।

इन्द्रोत्सव मुख्यतः तरुणोंका त्योहार था। इस एक दिन-रातके लिए तरुण सारे बन्धनोंसे मुक्त हो जाते थे।

(२)

ऊपरी स्वातका यह भाग पशुधान्यसे परिपूर्ण है, इसीलिए यहाँके लोग बहुत सुखी और समृद्ध हैं। उनको जिन वस्तुओंका अभाव है, उनमें मुख्य है तांबा और शौककी चीजोंमें सोना-चाँदी तथा कुछ रत्न, जिनकी माँग दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। इन चीजोंके लिए हर साल स्वात और कुभा (काबुल) नदियोंके संगमपर बसे असुर-नगर

जाना पड़ता है। इस असुर-नगर को पीछे आर्यलोग पुष्कलावती (चारसद्दा) के नामसे पुकारने लगे और हम भी यहाँ इसी नामको स्वीकार कर रहे हैं। जाड़ेके मध्यमें स्वात, पंजकोरा तथा दूसरी उपत्यकाओंमें रहनेवाली पहाड़ी जातियाँ—पुरु, कुरु, गंधार, मद्र, मल्ल, शिवि, उशीनर आदि—अपने घोड़ों, कम्बलों तथा दूसरी विक्रेय वस्तुओंको लेकर पुष्कलावतीके बाहरवाले मैदानमें डेरे डालती थीं। यहीं असुर व्यापारी उनकी चीजोंको ले बदले मे इच्छित वस्तुएँ देते थे। सदियोंसे यह क्रम अच्छी तरह चला आता था। अबके साल पुरुओंका सार्थ (कारवाँ) पुरुधानके नेतृत्वमे पुष्कलावती गया। इधर कई वर्षों से पहाड़ी लोगोंमे शिकायत थी कि असुर उनको बहुत ठग रहे हैं। असुर नागरिक व्यापारी इन पहाड़ियोंसे ज्यादा चतुर थे, इसमेंतो शक ही नहीं। साथ ही वह इन्हें निरे उजड्ड जंगली समझते थे, जिसमें कुछ सत्यता भी थी; किन्तु पीले बालों, नीली आँखों वाले आर्य घुड़सवार कभी अपनेको असुर नागरिकोंसे नीच माननेके लिए तैयार न थे। धीरे-धीरे जब आर्यों में से पुरुधान-जैसे कितने ही आदमी असुरोंकी भाषाको समझने लगे और उन्हें उनके समाजमें घूमनेका मौका मिला, तो पता लगा कि असुर आर्यों को पशु-मानव मानते हैं। यह आरम्भ था दोनों जातियोंमें वैमनस्यके फूट निकलने का।

असुरोंके नगर सुन्दर थे। उनमें पक्की ईटोंके मकान, पानी बहने की मोरियाँ स्नानागार, सड़कें, तालाब आदि होते थे। आर्य भी पुष्कलावतीकी सुन्दरतासे इंकार नहीं करते थे। किन्हीं-किन्हीं असुर तरुणियोंके सौन्दर्यको—नाक, केश, कदकी शिकायत रखते भी—वे माननेके लिए तैयार थे; किन्तु यह कभी स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे कि देवदारोंसे आच्छादित पर्वत-मेखलाके भीतर काष्ठकी चित्र-विचित्र अट्टालिकाओंसे सुसज्जित, स्वच्छ गृह-पंक्तियों वाला मंगलपुर किसी तरह भी पुष्कलावतीसे कम है। पुष्कलावतीमें महीना-भर काटना भी उनके लिए मुश्किल हो जाता था और बार-बार अपनी जन-भूमि याद आती

थी। यद्यपि वही स्वात नदी पुष्कलावतीके पास भी बह रही थी; किन्तु वह देखते थे, उसके जलमें वह स्वाद नहीं है। उनका कहना था, असुरोंका हाथ लगनेसे ही वह पवित्र जल कलुषित हो गया है। कुछ भी हो आर्य असुरोंको किसी तरह भी अपने बराबर माननेके लिए तैयार नहीं थे; खासकर जब कि उन्होंने उनके हजारों दास-दासियों, और कोठोंपर बैठकर अपने शरीरको बेचनेवाली वेश्याओं को देखा।

लेकिन व्यक्तिके तौर पर आर्यों के असुरोंमे और असुरोंके आर्यों मे कितनेही मित्र पैदाहो गये थे। असुरोंका राजा पुष्कलावतीसे दूर सिन्धु-तटके किसी नगरमे रहता था; इसलिए पुरुधानने उसे नहीं देखा था। हाँ, राजाके स्थानीय अफसरको उसने देखा था। वह नाटा, मोटा और भारी आलसी था, सुराके मारे उसकी मोटी पपनियाँ सदा मुँदी रहा करती थीं। उसके सारे शरीरमें दर्जनों रूपे-सोनेके आभूषण थे। कानों को फाड़कर उसने कन्धे तक लटका लिया था। यह अफसर पुरुधानकी दृष्टिमे कुरूपता और बुद्धिहीनताका नमूना था। जिस राज्यका ऐसा प्रतिनिधि हो, उसके प्रति पुरुधान-जैसे आदमीकी अच्छी सम्मति नहीं हो सकती थी। पुरुधानने सुना था कि वह असुर राजाका साला है, और इसी एक गुणके कारण वह इसपद पर पहुँचा है।

कई सालके अस्थायी सहवासके कारण पुरुधानको असुर-समाजके भीतरकी बहुत-सी निर्बलताएँ मालूमहो गई थी। उच्च वर्गके असुर चाहे चतुर जितने हों; किन्तु उनमे कायर अधिक पाये जाते हैं। वह अपने अधीनस्थ भटों और दासोंके बलपर शत्रुसे मुकाबला करना चाहते हैं, जिसमे निर्बल शत्रुपर विजय प्राप्त करनेमें भले ही सफलता प्राप्त हो, किन्तु बलवान् शत्रुके सामने ऐसी सेना ठहर नहीं सकती। असुरोंके शासक—राजा, सामन्त—अपने जीवनका एक मात्र उद्देश्य भोग-विलास समझते थे। हरेक सामन्तकी सैकड़ो स्त्रियाँ और दासियाँ होती थीं। स्त्रियोंको भी वह दासियोंकी भाँति रखते थे। हालमें असुर राजाने कुछ पहाड़ी (आर्य) स्त्रियोंको भी बलात् अपने रनिवासमे

दाखिल किया था, जिसके लिए आर्य-जनोंमें बहुत उत्तेजना फैली हुई थी। खैरियत यही थी, कि असुर राजधानी सीमान्तसे बहुत दूर थी और वहाँ तक आर्यों का पहुँचना अभी नहीं होता था; इसलिए लोग आर्य स्त्रियोंकी बातको दन्तकथा समझते थे।

पुष्कलावतीके बाज़ारोंसे तरह-तरहके आभूषण, कार्पास वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र और दूसरी चीज़े, सुवास्तु क्या कुनारके ऊपरले काँटेके खानाबदोशों के झोपड़ों तक पहुँचने लगी थी। सुवास्तुकी स्वर्ण-केशी सुन्दरियाँ तो चतुर असुर शिल्पियोंके हाथके बने आभूषणोंपर मुग्ध थीं; इसलिए सार्थके साथ हर साल अधिक-से-अधिक आर्य स्त्रियाँ पुष्कलावती आने लगी थीं। सुमेध बेचारा सचमुच उषाको विधवाकर चल बसा था, और अब वह अपने चचेरे देवर पुरुधानकी पत्नी थी। इस साल वह भी पुष्कलावती आई थी। पुष्कलावतीके नगराधिपतिके आदमियोंने पीत केशोंके तबुओंके भीतर बहुत-सी सुन्दरियोंको देख, इसकी खबर अपने स्वामीको दी, और उसने तै किया था, कि जब सार्थ लौटने लगे, तो पहाड़ (अबाजई) में घुसते ही हमला करके उसे लूट लिया जाय। यद्यपि यह काम बुद्धिहीनता का था, क्योंकि पीत-केश कितने लड़ाके होते हैं, इसका पता उसे था; किन्तु नगराधिपतिमें बुद्धिकी गंध तक न थी। नगरके बड़े-बड़े सेठ-साहूकार उससे घृणा करते थे। जिस व्यापारीसे पुरुधानकी मित्रता थी, उसकी सुन्दरी कन्याको हाल ही में नगराधिपतिने जबर्दस्ती अपने घरमें रख लिया था, जिसके लिए वह उसका जानी दुश्मन बन गया था। उषा भी असुर सौदागरके घर कई बार गई थी। यद्यपि वह सौदागर पत्नीकी एक बातको भी नहीं समझती थी; किन्तु पुरुधानके दुभाषियापन तथा सेठानीके व्यवहारके कारण दोनों आर्य-असुर नारियोंमें सखित्व कायम हो गया था। प्रस्थान करनेसे दो दिन पहले सौदागरने अपने भारी ग्राहक पुरुधानकी दावतकी, उसी वक्त उसने पुरुधानके कानमें नगराधिपतिके नीच इरादेकी बात कह दी। उसी रात पुरुधानने सारे आर्य सार्थ नायकोंको बुलाकर परामर्श किया।

जिनके पास अच्छे हथियारोंकी कमी थी, उन्होंने नये हथियार खरीदे। बेचनेके लिए लाये घोड़े तथा दूसरे भारी गट्ठर उनके बिक चुके थे, सिर्फ अपने चढ़नेके घोड़े तथा ख़रीदे सामान—आभूषण, धातुकी दूसरी चीज़े—हल्के थे; इसलिए इस ओरसे उनको कम चिन्ता थी। स्वातकी आर्य-स्त्रियोंमे आभूषण-शृंगारका शौक बढ़ रहा था, किन्तु अभी तक उनकी तरुणाई की शिक्षामे गीत-नृत्यके साथ शस्त्र-शिक्षा भी शामिल थी, इसलिए सकटकी खबर सुनते ही उन्होंने भी अपने-अपने खड्ग और चर्म (ढाल) सभाल लिये।

पुरुधान को पता था कि असुर भट सीमान्तके पहाड़ी दर्रे पर आगे से रास्ता रोककर हमला करेंगे, और उसी वक्त उनकी एक बड़ी टुकड़ी पीछेसे भी घेरना चाहेगी। इसके लिए पुरुधानने पूरी तैयारी करली थी, जो कि पहले खबरके मिल जानेसे ही सम्भव हुई। वैसे होता, तो पंजकोरा, कुनार और स्वातके सार्थ अलग-अलग बिना एक-दूसरे का ख़याल किये चल देते; किन्तु अब सब तैयार थे। यद्यपि शत्रुको पता न लगने देनेके लिए उन्होंने पुष्कलावतीसे एक-दो दिन आगे-पीछे कूच किया था; किन्तु बात तय हो चुकी थी, कि अज्जा (अबाज़ई) के द्वार पर सभी एक समय पहुँचेंगे। जब द्वार (दर्रा) कोस-दो-कोस रह गया, तो पुरुधानने पचीस शवासर पहले भेजे। आने-जाने की तरह जिस वक्त सवार द्वारके भीतर बढने लगे, उसी वक्त असुरोंने उन पर बाण छोड़ने शुरू किये। आक्रमण की बात सच निकली। सवार पीछे हट आये, और उन्होंने अपने सार्थनायक को खबर दी। पुरुधान ने पहले पीछे आनेवाले शत्रुओंसे निबटना चाहा। इसमे सुभीता भी था; क्योंकि यद्यपि असुर हर साल आर्यों से हज़ारों की सख्यामे घोड़े खरीद रहे थे, किन्तु अभी वह चुस्त सैनिक गुड़सवार नहीं बन सके थे।

सार्थ रुक गया, और रक्षाके लिए कितने ही भटोंको वहाँ छोड़ बाकी सवारोंके साथ पुरुधान पीछे मुड़ा। असुर-सेनाको आशा न थी, कि पीत-केश एकाएक उन पर आ पड़ेगे। पीत-केशोंके लम्बे भालों

और खड्गोंके सामने वह देर तक न ठहर सके; लेकिन आर्य-बल उन्हें सिर्फ पराजित करके नहीं छोड़ना चाहता था। वह इन निर्वास, काले असुरोंको बतलाना चाहता था कि पीत-केशियों पर नज़र डालना कितने खतरे की बात है। असुर-सेनाको भागते देख पुरुधानने सार्थको सूचना भेजी, और अपने सवारोंको ले पुष्कलावती पर आ पड़ा। असुर सैनिको की भाँति उनका नगराधिपति भी इसकी आशा नहीं रखता था। असुर अपनी पूरी शक्तिको इस्तेमाल करने का मौका नहीं पा सके, और आसानीसे असुर-दुर्ग तथा नगराधिपति पीत-केशोंके हाथमें आ गये। पीत-केश असुरोंके इस विश्वासघातसे बहुत उत्तेजित थे। उन्होंने बड़ी निर्दयता-पूर्वक असुर-पुरुषोंका वध किया। नगराधिपतिको तो नगरके चौरास्ते पर लेजा असुर-प्रजाके सामने एक-एक अंग काटकर मारा। उन्होंने स्त्रियों, बच्चों और व्यापारियोंको नहीं मारा यदि उस वक्त दास-बनानेकी इच्छा होती, तो सम्भव है पीत-केश (आर्य) इतना अधिक वध न करते। पुष्कलावतीके बहुतसे भागको उन्होंने आग लगाकर जला डाला। यह प्रथम असुर-दुर्ग का पतन था।

असुरों और पीत-केशोंके महान् विग्रह—देवासुर-संग्राम—का इस प्रकार प्रारम्भ हुआ।

पुरुधानने लौटकर अञ्जा दर्रेमें एकत्रित असुर सैनिकोंको खतम किया, और फिर सारे पीत-केश सार्थ अपनी-अपनी जन-भूमियोंको चले गये।

कई सालोंके लिए पुष्कलावतीका व्यापार मारा गया। पीत-केशोंने असुर-पण्यको लेनेसे इन्कार किया; किन्तु ताँबे-पीतलका बहिष्कार वह कितनी देर तक कर सकते थे†।

---

† आजसे एक सौ साठ पीढ़ी पहले आर्य (देव)-असुर संघर्ष हुआ था, उसीकी यह कहानी है। आर्योंके इस पहाड़ी समाजमें दासता स्वीकृत नहीं हुई थी। ताँबे-पीतलके हथियारों और व्यापारका जोर बढ़ चला था।

६—अंगिरा

स्थान—गंधार (तक्षशिला), जाति—हिन्दी-आर्य

काल—१८०० ई० पू०

(१)

"बेकार है यह कार्पास वस्त्र, न इससे जाड़ा रुकता है, न वर्षासे बचाव।" अपने भीगे कंचुकको हटा कंबल ओढ़ते हुये तरुणने कहा।

"किन्तु, गर्मीकी ऋतुमे यह अच्छा होता है।" दूसरे तरुणने भी कंचुकको किवाड़पर पसारते हुये कहा। शाम होनेमें अभी काफी देर थी, किन्तु आवसथ (पाथशाला) में आगके किनारे अभीसे लोग डटे हुये थे। दोनों तरुण धुंयेमें बैठनेकी जगह गवाक्षके पास हवाके ख्यालसे कम्बल ओढ़कर बैठ गये।

पहिला तरुण—"हम अभी एक योजन जा सकते थे, और कल सवेरे ही गंधार-नगरमें (तक्षशिला) पहुँच जाते, किन्तु इस पानी और हवाको क्या किया जाये।"

दूसरा—"जाड़ोंकी यह बदली और बुरी लगती है। किन्तु, जब नहीं होती तो हमारे किसान इन्द्रको पानी बरसानेके लिये प्रार्थनापर प्रार्थना करते हैं, और पशुपाल अधिक क्रदन करते हैं।"

पहिला—"सो तो है मित्र, सिर्फ पान्थही हैं, जो इसे नहीं पसंद करते। और कोई सदा पान्थ भी तो नहीं रहता।" फिर गर्दनके पीछे घावके बड़े दागको देखकर कहा "तेरा नाम मित्र ?"

"पाल माद्र। और तेरा ?"

"वरुण सौवीर। तो तू पूर्वसे आता है ?"

"हाँ, मद्रोंमेसे, और तू दक्खिनसे ? बतला मित्र ! दक्खिनमें, सुनते हैं, असुर अब भी आर्योंसे लड़रहे हैं।"

"सिर्फ समुद्रतटपर उनका एक नगर बचरहा था। जानता है,

न मित्र ! हमारे मघवा इन्द्रने किस तरह असुरोंके सौ नगर-दुर्गोंको तोड़ा था।"

"सुना है, असुरोंके नगर-दुर्ग लौह (ताँबे) के थे !"

"असुरोंके पास लौह ज्यादा है, किन्तु नगर दुर्ग बनाने भरके लिये नही। मै नहीं समझता यह कथा कैसे फैली।" असुरोंके मकान ईंटों—आगमे पकाई चौकोर किन्तु लम्बी अधिक—के होते हैं—उनके नगरोंको जिस दीवारसे घेरा गया रहता है, वह भी ईंटकी होती है। यह ईंटे लौह (लाल) वर्णकी होती हैं, किन्तु लौह (ताम्र) धातु और ईंटोंमे इतना अन्तर है, कि उसे लौह नहीं कहा जा सकता।"

"लेकिन हम तो वरुण ! असुरोंके लौह-दुर्गको ही सुनते आते हैं।"

"शायद ! हमारे इन्द्रको इन दुर्गोंके तोड़नेमें जितनी शक्ति लगानी पड़ी, उसीके कारण यह नाम पड़ा हो।"

"और शंबरके पराक्रमकी भी तो बड़ी बड़ी कथायें सुनी जाती हैं, उसका समुद्रमें घर था, उसका रथ आकाशमे चलता था।"

"रथकी बात बिल्कुल गलत है। असुर यदि किसी युद्ध-विद्यामें सबसे निर्बल हैं, तो अश्वारोहणमें। आज भी उत्सवके समय असुर अश्वरथकी जगह वृषभरथ जोड़ते हैं। मैं तो समझता हूँ पाल ! हमारे यह अश्व ही थे, जिनके कारण हम विजयी हुये, नहीं तो असुर-पुरोंको जीत न सकते थे। शंबरको मरे दो सौ साल हो गये, किन्तु, मुझे विश्वास है, उसके पास अश्वरथ भी न रहा होगा, आकाशमें चलनेकी तो बात ही क्या !"

"तो शंबर यदि इतना साधारण शत्रु था, तो उसके जीतनेसे हमारे इन्द्रकी इतनी महिमा क्यों हुई।"

"क्योकि शंबर बहुत वीर था। उसके स्वर्ण-खचित लौह कवचको मैंने सौवीरपुरमें देखा है, वह बहुत ही दृढ़ और विशाल है। असुर, आमतौरसे कदमे छोटे होते हैं। किन्तु शंबर बहुत बड़ा था, बहुत लम्बा चौड़ा और शायद कुछ अधिक मोटा। और हमारा मघवा इन्द्र उससे

पतला छरहर जवान। सिन्धुके तटपर अब भी असुरों के पुरदुर्ग देखनेको मिलते हैं। इनके भीतर रहकर कुछ सौ धनुर्धर हजारों शत्रुभटोंको पास आनेसे रोक सकते हैं। वस्तुतः ये असुरोंकी पुरियाँ अयोध्या (अ-पराजेय) थीं। और ऐसी अयोध्या पुरियोंको तोड़नेवाला हमारा मघवा इन्द्र—नहीं, आर्य सेना महापराक्रमी थी।"

"दक्खिनमें क्या अब भी असुरोंका बल मौजूद है, वरुण!"

"कहा नहीं, सागरतीरका उनका अन्तिम दुर्ग अभी हालमें टूटा है, इस युद्धमें मैं भी शामिल हुआ था" कहते हुये वरुणके अरुण मुखपर और अधिक लाली छिटक गई, और उसने अपने दीर्घ चमकीले पीले केशोंको पीछेकी ओर सहलाते हुये कहा "असुरोंके अन्तिम पुर-दुर्गका पतन हो गया।"

"तुम्हारा इन्द्र कौन था?"

"इन्द्रका पद हमने तोड़ दिया है।"

"तोड़ दिया है!"

"हाँ, क्योंकि इससे हम दक्षिणी आर्योंको डर लगने लगा।"

"डर क्यों?"

"इन्द्रका अर्थ हम सेना-नायक समझते हैं न?"

"हाँ।"

"और सेना-नायकको आर्य अपना सब कुछ नहीं मानते। युद्धके समय उसकी आज्ञाको भले ही शिरोधार्य माने, किन्तु आर्य अपनी जन-परिषदको सर्वोपरि मानते हैं, जिसमें हर आर्यको अपने विचार खुलकर रखनेका अधिकार होता है।"

"हाँ, यह है।"

"किन्तु, इसके विरुद्ध असुरोंका इन्द्र या राजा सब कुछ अपने ही है, वह किसी जन-परिषद्को अपने ऊपर नहीं मानता। असुर-राजाके मुँहसे जो निकल गया, वही हर एक असुरको करना होगा, नहीं तो उसके लिये मृत्यु है।"

"ऐसे इन्द्रको हमलोग कभी पसंद नहीं कर सकते।"

"किन्तु, असुर ऐसे ही इन्द्रको पसद करते आते थे। अपने राजाको वह मनुष्य नहीं देवता मानते थे, और उसकी जिन्दा पूजाके लिये वह जो जो करते रहे हैं, उसको सुनकर मित्र! तू विश्वास नहीं करेगा।"

"हाँ, मैंने भी देखा है, असुरपुरोहित अपने लोगोंको गदहा बनाकर रखते हैं।"

"हाँ, गदहेसे भी बढ़कर। सुना है न वह शिश्न (लिंग) और उपस्थको पूजते हैं। मैं मानता हूँ स्त्री-पुरुषके आनन्दके ये दो साधन हैं, इनके द्वारा हमारी सन्तान आगे चलती है, किन्तु इनको साक्षात् या मिट्टी-पत्थरका बनाकर पूजना कितनी भारी मूर्खता है!"

"इसमें क्या शक।"

"और असुर राजा शिश्नदेवके भारी भक्त थे। किन्तु इसमे तो मुझे निरी चालाकी मालूम होती है। आखिर, असुर राजा और उनके पुरोहित मूर्ख नहीं होते, वह हम आर्योंसे ज्यादा चतुर होते हैं। उनके नगरों जैसा नगर बनानेके लिये हमें उनसे बहुत सीखना पड़ेगा। उनकी पण्य-वीथी (बाजार), उनके कमल-शोभित सरोवर, उनकी उच्च अट्टालिकाये, उनके राजपथ ऐसी चीजें हैं, जिन्हें शुद्ध आर्य-भूमियोंमें नहीं पाया जा सकता। मैने उत्तर सौवीरके असुर-परित्यक्त नगरोंको देखा है, और इस नवपराजित नगरको भी; हम आर्य उनके पुराने नगरोंको प्रति-सस्कार (मरम्मत) करके भी उस रूपमें कायम नहीं रख सके, और यह नया नगर—जिसे कहते हैं, शबरने स्वयं बसाया था—तो देवपुर जैसा है।"

"देवपुर!"

"देवपुर! और पृथिवी पर किसीसे उपमा नही दी जा सकती मित्र! एक परिवारके रहने लायक घरको ही ले लीजिये। इसमें सजे हुये एक या दो बैठकखाने, धूमनेत्रक (चिमनी) के साथ अलग

रसोई घर, आगनमे ईंटका कुआँ, स्नानागार, शयनागार, कोष्ठागार। साधारण बनियोंके घरोंको मैंने दो-दो, तीन-तीन तलके देखे हैं। क्या बखान करूँ, असुरपुरकी उपमा मै सिर्फ देवपुरसे ही दे सकता हूँ।"

"पूरबमे भी असुरोंके नगर हैं, किन्तु हम मद्रोंकी (स्यालकोट वाली) भूमिसे वह बहुत आगे है।"

"मैंने देखा है मित्र! और ऐसे नगरोंके बसाने, बनानेवाले हमसे अधिक चतुर थे, इसे हमे मानना पड़ेगा। सागरके बारेमें तो नहीं सुना होगा?"

"नाम सुना है।"

"सिर्फ नाम सुनने या वर्णन करनेसे अन्दाज़ा नहीं लग सकता। सागरके तटपर खड़े होकर देखनेसे कुछ कुछ पता लगता है। सामने ऊपर नील जल नीले आकाशसे मिला हुआ है।"

"आकाशसे मिला हुआ, वरुण!"

"हाँ, जितना ही आगे देखे, जल ताड़ों ऊपर उठता चला गया है, और अन्तमें जाकर आकाशसे मिल जाता है। दोनोंका रग भी एकसा होता है—हाँ, सागर-जल अधिक नीला होता है। और इस अपार सागरमें असुर अपनी विशाल नौकाओंको निर्भय होकर चलाते। वर्षों-महीनोंके रास्ते जाते, और सागरसे नाना प्रकारके रत्न लाते हैं। असुरोंके साहस और चतुराईका यह भी एक नमूना है। यही नही, एक बात तो तूने सुनी भी न होगी मित्र! असुर बिना मुँहसे बोले बात-चीतकर सकते हैं।"

"बिना बोले! क्या कहा मित्र?"

"हाँ बिना बोले। मिट्टी, पत्थर, चमड़ेको दे दो, एक असुर उस पर कुछ चीन्हा खींच देगा, और दूसरा सारी बात समझ लेगा। जितना हम दो घंटा बात करके नहीं समझा सकते, उतना वह पाँच-दस चीन्होंको खींचकर बतला सकते हैं। यह बात आर्योंको कभी नहीं

मालूम थी। अब हमारे आर्य उन चीन्होंको सीखरहे हैं, किन्तु, वर्षों लगानेपर भी उनका सीखना पूरा नही होता।"

"तब, जरूर असुर हमसे अधिक चतुर थे।"

"और उनके लोहारों, दस्तकारों, कुम्भकारों, रथकारों, वंशकारों, कर्मकारों, तन्तुकारोंके हाथकी कारीगरीको तो हम सब देखते ही रहते हैं। फिर असुरोंके अधिक चतुर होनेमे सन्देह क्या हो सकता है?"

"और तूने कहा, कि असुर वीरभी होते हैं।"

"हाँ, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। आर्योंकी तरह उनका हर एक बच्चा दूध छोड़ते ही तलवारसे नहीं खेलता। उनके यहाँ योद्धाओंकी अलग श्रेणी है, शिल्पियों, व्यापारियोंकी अलग, और दासोंकी अलग। योद्धा श्रेणी को छोड़ दूसरे युद्ध-विद्या नहीं सीखते, उन्हें योद्धा बहुत नीची निगाहसे देखते हैं। और दास-दासियोंकी अवस्था तो पशुसे भी बदतर है। उन्हें खरीदते बेचते ही नहीं हैं, बल्कि वह उनके शरीर प्राणसे मनमाना कर सकते हैं।"

"उनमें योद्धा कितने होंगे?"

"सौमें एकसे भी कम, और दास-दासी सौमें चालीस, अर्धदास सौमें चालीस—शिल्पी और किसान अर्धदास हैं। और सौमें दस व्यापारी, बाकी दूसरे।"

"तभी तो असुर आर्योंसे हार गये।"

"हाँ, उनकी हारमें यह एक प्रधान कारण था,। और एक बड़ा कारण था, उनका राजाको सारे जनके ऊपर देवता मान लेना।"

"इसे तो हम आर्य कभी नहीं मान सकते।"

"इसीलिये हमें इन्द्रका पद तोड़ना पड़ा। मघवाके बादके किसी, इन्द्रकी बात है, उसने चाहा असुर-राजा जैसा बनना।"

"असुर-राजा जैसा! आर्य-जनके साथ मनमानी करना!!"

"हाँ! और वही एक नही,' उसके बाद दूसरे ने, फिर इस बात में कुछ आर्य भी उनकी सहायता करते पकड़े गये।"

"सहायता करते ?"

"कुल, परिवारके ख्यालसे। इसीलिये सौवीर-जनने तै किया, कि अब कोई इन्द्र नहीं बनाया जायेगा। इन्द्र अशनि (बिजली)-हस्त देवता का नाम भी है, जिससे लोगों में भय फैलनेका डर है।"

"अच्छा किया सौवीर-जनने मित्र!"

"लेकिन, कितने ही आर्योंके नाम लजानेवाले पैदा हो गये हैं, जो असुरोंकी हर बातकी प्रशंसा करते नही थकते। उनकी कितनी ही प्रशसनीय बातें हैं, जिनकी मैं प्रशंसा करता हूँ, उन्हें हमें लेना चाहिये। उनके हथियारों को हमने अपनाया। उनके वृषभ-रथोंकी देखा-देखी हमारे मघवा इन्द्रने अश्वरथ बनाये। धनुर्धरके लिए घोड़ेपरसे अधिक सुभीता रथमें होता है। वहाँ वह जितना चाहे उतने तरकश रख सकता है, शत्रुके तीरोंसे बचनेके लिये आवरण भी रख सकता है। उनके कवच, शक्ति, गदा आदिसे हमने बहुत-सा सीखा। उनके नगरोंसे भी हम बहुतसी बातें ले रहे हैं। उनकी सागर-यात्राको भी हमें सीखना चाहिये, क्योंकि लोह (ताँबा), दूसरे धातु, रत्न और बहुतसी चीजें सागरपारसे आती हैं, अभी भी यह सारा व्यापार असुर-व्यापारियोंके हाथमें है। यदि हम उनसे स्वतंत्र होना चाहते हैं, तो सागर-नौचालन सीखना होगा। किन्तु असुरोंकी बहुत सी बातें हैं, जिनको हमें घातक समझना चाहिये। जैसे शिश्न-पूजा।"

"लेकिन, शिश्न-पूजाको कौन आर्य पसंद करेगा?"

"मत कह मित्र! कितने ही आर्य कहरहे हैं, कि असुरोंकी भाँति हमें भी अपने पुरोहित बनाने चाहिये। हमारे यहाँ योद्धा, पुरोहित, व्यापारी, कृषक, शिल्पीका भेद नहीं। सब सभी काम इच्छानुसार कर सकते हैं, किन्तु असुरोंने अलग-अलग श्रेणियाँ बना रखी हैं। आज आर्योंमें पुरोहित बन जाने दो और देखेगे, कुछ ही वर्षोंमें शिश्न-(लिंग) पूजा भी शुरू हो जायेगी। असुर-पुरोहित बहुत मक्कार होते हैं, लाभ-लोभके लिये आर्य-पुरोहित भी वही करने लगेंगे।"

'यह तो बुरा होगा, वरुण !"

"पिछले दो सौ वर्षोंके असुर संसर्गसे आर्योंमे उनकी कितनी ही बुराइयाँ आने लगी हैं, उनको देखकर बूढ़े-बूढ़े आर्य निराश हो रहे हैं। मैं निराश नहीं हूँ। मैं समझता हूँ, यदि आर्य-जनको अपनी पुरानी बातें ठीकसे समझायी जायें, तो वह पथ-भ्रष्ट नहीं हो सकता। गंधार-नगर (तक्षशिला) मे अंगिरा नामके, सुना है, एक आर्य ऋषि (ज्ञानी) हैं, वह आर्योंकी पुरानी विद्याके भारी ज्ञाता है। वह आर्यों को आर्य-मार्गपर आरूढ़ करनेके लिये शिक्षा देते हैं। मैंने आर्योंके विजयके लिए तलवार चलाई है, अब चाहता हूँ, आर्यत्वकी रक्षाके लिए भी कुछ करूँ।"

"कैसा सयोग है, मै भी ऋषि अंगिराके पास ही जा रहा हूँ, उनसे युद्ध-विद्या सीखने।"

"किन्तु पाल ! तूने पूरबके आर्यजनोंकी बात नहीं बतलाई ?"

"पूरबमें आर्यजन वनकी आगकी तरह बढ़रहे हैं। इस गधारसे आगेकी भूमिको हम मद्रोंने लिया है। उससे आगे मल्लोंने अपना जन-पद (जनकी भूमि) बनाया है, इसी तरह, कुरु, पंचाल आदि जनोंने भी बड़े-बड़े प्रदेश अपने हाथों में किये हैं।"

"तो वहाँ बहुत भारी संख्यामें आर्य जारहे होंगे ?"

"बहुत भारी सख्यामे नहीं, जितना ही आगे बढ़ते जायें, उतनी ही असुरों और दूसरोंकी संख्या अधिक मिलती है।"

"दूसरे कौन मित्र ?"

"असुर मंगुरके चमड़े या ताँबे जैसे वर्णके होते हैं। पूरबमें एक और तरहके लोग रहते हैं, जिन्हें कोल कहते हैं वह बिल्कुल कोयले जैसे काले होते हैं। ये कोल गाँवोंमें भी रहते हैं, और जंगलोंमें मृगोंकी तरह भी। जंगली कोलोंके कितने ही हथियार पत्थरके होते हैं।"

"तो आर्य-जनों को अनार्योंके साथ बहुत लड़ना पड़ता होगा।"

"डटकर लड़ाई अब बहुत कम करनी होती है। आर्योंके घोड़ों

को देखते ही अनार्य भाग खड़े होते हैं; किन्तु वह रातको हमारी बस्तियों पर छापा मारते हैं, जिसके लिये हमें अकसर उनके साथ बहुत क्रूर बनना पड़ता है, इससे असुरों (शंबर) कोलोंके गाँवके गाँव खाली हो गये हैं—वह पूरबकी ओर भागते जारहे हैं।"

"तो तेरे यहाँ पाल ! असुरोंके चाल-व्यवहारके पकड़नेका डर नहीं है ?"

"मद्रके जनमें नहीं, और शायद यही बात मल्लोंकी भी है। आगेकी नहीं कहता। हमारे यहाँ वस्तुतः अनार्य सिर्फ जंगलोंमें रह गये हैं।"

दोनों मित्रोंका वार्तालाप अंधेरा होनेतक चलता रहा; और यदि आवसथ-रक्षिकाने आकर खान-पानके बारेमें न पूछा होता, तो शायद अभी वह खतम भी न होता। आवसथ ग्रामकी ओरसे बनाया गया था, जिसमें सभी यात्रियों—इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि पीत-केशों—के ठहरनेका प्रबध था, और जिनके पास खाना नही होता, उन्हें आवसथकी ओरसे सत्तू, गोमांस-सूप मिलता। सामान या बदलेकी चीज दे देनेपर आवसथ-रक्षिका भोजन बना देती। सोम और सुराके लिये यह आवसथ बहुत प्रसिद्ध था। वरुण और पालने आगमे भुने गोमांस और सुरासे अपनी मित्रताको मजबूत किया।

(२)

ऋषि अंगिरा सिंधुके पूर्ववाले गंधारजनके ऊँचेसे ऊँचे पद जनपति तक रह चुके थे। यद्यपि पुष्कलावती (चारसद्द)से प्रथम पुश्तके बाद असुर लोग हटने लगे थे, और जब दूसरी पीढ़ीमें कुनार तटसे आकर गधार जनकी एक शाखाने पश्चिमी गंधारको पराजित कर लिया, तो मरनेसे बँचे हुये असुर बड़ी तेजीसे पश्चिमी गंधारको खाली करने लगे। उससे तीस साल बाद ही सिन्धुके पूरबकी भूमिपर गधार और मद्रजनोंका हमला हुआ, और वितस्ता (झेलम) और सिंधुके बीचकी भूमिको गंधारों, तथा वितस्ता और इरावती (रावी)

के बीचवालीको मद्रोंने आपसमें बाँट लिया, जो पीछे क्रमशः पूर्व गंधार और मद्र जन-पदके नामसे प्रसिद्ध हुये। इस आरंभिक देव(आर्य)-असुर संग्राममें दोनों जातियोंने अमानुषिक क्रूरता दिखलानेमें होड़ लगा रखी थी, जिसका परिणाम हुआ कि गंधारमें बिलकुल ही नहीं और मद्रमें बहुत कम असुर बच रहे। लेकिन समय बीतनेके साथ, आगे असुरोंका विरोध कम पड़ने लगा, और पीतकेशोंने भी अपनी युद्ध-क्रूरता कमकी। यही नहीं, बल्कि जैसा कि वरुण सौवीरने कहा था, पीतकेशोंपर असुरोंकी बहुतसी बातोंका प्रभाव पड़ने लगा। ऋषि अंगिरा वक्षुतटसे चली आती आर्यपरंपराके बड़े पंडित ही नहीं थे, बल्कि वह चाहते थे, कि आर्य अपने रक्त तथा दूसरे आचार-व्यवहारोंकी शुद्धताको न छोड़ें। इसीलिये पूर्वी गंधारमें अश्वमांस भक्षण—जो एक प्रकार छूट गया था—को उन्होंने अश्व-पालनको उत्साहितकर फिरसे स्थापित किया। उनके इस आर्यत्व प्रेम, उनकी विद्या और युद्ध-विद्या चातुरीकी ख्याति इतनी बढ चुकी थी, कि दूरतम आर्यजनपदोंसे भी आर्यकुमार उनके पास शिक्षा ग्रहण करनेके लिये आने लगे। किन्तु, उस वक्त किसीको क्या पता था, कि आगे चलकर गंधारपुरमें अंगिराका रोपा यह विद्या-अंकुर तक्षशिलाके रूपमें एक विराट वृक्ष बन जायेगा, जिसकी छाया और मधुर फलसे लाभ उठानेके लिये सैकड़ों योजन दूरसे चलकर आर्यविद्याप्रेमी आयेंगे।

ऋषि अंगिराकी आयु ६५ सालकी थी, उनके श्वेत केश, नाभि तक लटकती श्वेत चमकती दाढ़ी उनके प्रशान्त गंभीर चेहरेपर बहुत आकर्षक मालूम होते थे। अभी लेखनी, स्याही और भुर्जपत्र इस्तेमाल करनेमें कई सदियोंकी जरूरत थी, उनका सारा अध्यापन मौखिक हुआ करता था, जिसमें पुराने गीतों और कविताओंको विद्यार्थी दुहरा दुहराकर कंठस्थ करते थे। दूरके विद्यार्थी अपने साथ खाद्यसामग्री नहीं ला सकते थे, इसलिये ऋषि अंगिराको विद्यार्थियोंके भोजन-वस्त्रका प्रबंध करना पड़ता था। अंगिराने अपने पैतृक खेतोंके अतिरिक्त विद्यार्थियोंकी

सहायतासे जंगल काटकर नये खेत आबाद किये थे, जिनसे साल भरके खानेके लिये गेहूँ पैदा हो जाता था। अभी बाग-बगीचोंका रवाज न था, किन्तु जंगलमें जब फल पकनेका समय आता, तो अपनी शिष्य-मंडलीके साथ वह वहाँ फल जमा करनेके लिये चले जाते। खेत जोतने-बोने-काटने, फूल-फल-काष्ठ जमा करनेके समय ऋषि और उनके विद्यार्थी वक्षु और सुवास्तुके तटोंपर बने गीतोंको बड़े रागसे गाया करते। सारे गधारमें सबसे बड़ा अश्वत्थ (अश्व-पालन स्थान) ऋषि अंगिराका था। दूर दूर तक अपने शिष्यों और परिचितोंसे ढुंढवाकर उन्होंने उच्च जातिके घोड़े-घोड़ियोंको जमाकर उनके वंशकी वृद्धि की थी। सैंधव (सिंधु तटवर्त्ती) घोड़ोंका जो पीछे सर्वत्र भारी नाम हुआ, उसका प्रारभ ऋषि अगिराके अश्वत्थसे ही हुआ था। इनके अतिरिक्त ऋषि अंगिराके पास हजारों गायें और भेड़ियाँ थीं। उनके शिष्योंको विद्याध्ययनके साथ साथ बराबर काम करना पड़ता था, जिसमें ऋषि भी समय समयपर हाथ बँटाते थे, यह जरूरी भी था क्योंकि इस प्रकार शिष्योंको खाने-पहिननेकी कोई तकलीफ नहीं होने पाती थी।

तक्षशिलाके पूर्वके सारे पहाड़ सुजल, सफल, हरे-भरे थे। ऋषि अगिराके साथ उस वक्त वरुण और पालकी टोली गोष्ठकी देखभाल-कर रही थी। तबुओंके बाहर कुछ दूरपर लाल उजले बछड़े फुदक रहे थे, और ऋषि अपने शिष्योंके साथ बाहर हरी घासपर बैठे हुये थे। ऋषिके बायें हाथमें बारीक ऊनकी पूनी थी, और दाहिना हाथ काठकी बड़ी तकुलीको चला रहा था। शिष्योंमें भी कोई तकुली चलारहा था, कोई ऊन निकिया रहा था, कोई हाथों लम्बी पूनी तैयार कररहा था। आज ऋषि प्राचीन और नवीन, आर्य और अनार्य रीति-रवाजों, शिल्प-व्यवसायोंमें कौन ग्राह्य हैं, कौन त्याज्य हैं, इस बातको समझा रहे थे।

“वत्सो! सभी नवीन त्याज्य है, सभी प्राचीन ग्राह्य है, यह कहना

बिल्कुल गलत है, और करना तो और भी असंभव है। वन्तुलटके आर्यों में जब पहिले-पहिल पत्थरके हथियारोंकी जगह ताँबेका हथियार प्रचरित होने लगा, तो कितनोंने इस नवीन चीजका विरोध किया था।"

ऋषिके प्रिय शिष्य वरुणने पूछा—"पत्थरके हथियारोंसे कैसे काम चलता होगा?"

"आज वत्स! ताँबेके हथियारोंसे काम चलरहा है, कल इससे भी तीक्ष्ण कोई हथियार निकल आयेगा, फिर लोग सवाल करेंगे—ताँबेके हथियारसे कैसे काम चलता होगा। जो हथियार जिस वक्त प्राप्य होता है, आदमी उसीसे काम चला लेता है। जब पाषाणके कुल्हाड़ेसे लड़ाइयाँ लड़ी जाती थीं, तो दोनों पक्षके भटोंके पास पाषाणके ही कुल्हाड़े होते थे; जैसे ही एक पक्षके पास ताँबेका कुल्हाड़ा आया, वैसे ही दूसरे पक्षको भी पाषाण छोड़ ताँबेका कुल्हाड़ा हाथमें लेना पड़ा; यदि वह ऐसा न करता तो संसारमे जीनेके लिये उसे स्थान न मिलता। इसीलिये मैंने कहा, सभी नवीन बातोंको त्याज्य कहना गलत है। यदि मैं नवीनका विरोधी होता, तो इतने सुदर घोड़े, इतनी सुदर गायें न पैदा करा सकता। मैंने देखा अच्छे घोड़े-घोड़ियोंके अच्छे बछेड़े होते हैं। मैंने कुछ अच्छे अच्छे घोड़े-घोड़ियोंको चुना, और आज पैंतीस वर्ष बाद इस वक्त तुम अंगिराके घोड़ोंकी इस नसलको देखते हो।

"असुर खेतोंकी खादका अच्छा प्रबंध करते थे, वह पहाड़ी नदियोंसे नहरें निकालकर सिंचाई करते थे। हमने गंधारमें इन बातोंको स्वीकृत किया। उनके शहर बसानेके तरीके, चिकित्साके कितने ही ढग बहुत अच्छे थे, हमने उन्हें ले लिया है। आहार, परिधान, जीवन-रक्षाके लिये उपयोगी जितनी भी चीजें मिलें, उन्हें स्वीकार करना चाहिये, इसका ख्याल किये बिना कि वह पुरानी हैं या नई, आर्योंसे आई हैं या अनार्योंसे। सुवास्तुमें और उससे पहले आर्य कपासके वस्त्रका नाम भी नहीं जानते थे, किन्तु यहाँ हमलोग उसे पहिनते हैं। गर्मियोंमें वह सुखद होता है।

"लेकिन, कितनी ही चीजें हैं जिनको हमें विषवत् त्याज्य समझना चाहिये। असुरोंका शिश्न(लिंग)पूजा-धर्म हमारे लिये निंदनीय है। उनका जाति-विभाग हमारे लिये त्याज्य है, क्योंकि उसके कारण सभी आदमी अपने जनकी रक्षाके लिये हथियार नहीं उठा सकते, आपसमें ऊँचनीचका भाव बढ़ता है। असुरोंके साथ रक्त-मिश्रण नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह असुर बननेके लिये दर्वाजा खोल देगा, और फिर आर्योंमे भी नाना शिल्पों, नाना व्यवसायोंकी छोटी-बड़ी जातियाँ बन जायेंगी।"

पाल—"रक्त-सम्मिश्रणको तो सभी आर्य बहुत बुरा समझते हैं?"

ऋषि—"हाँ, किन्तु इसके लिये उतना ध्यान देनेको तैयार नहीं हैं। क्या असुर अथवा कोल स्त्रियोंके साथ आर्य समागम नहीं करते?"

वरुण—"सीमान्त पर करते हैं, और असुरपुरोंकी वेश्याओंके पास तो हमारे भट आम तौरसे जाते हैं।"

ऋषि—"इसका परिणाम क्या होगा? वर्णसंकरता बढ़ेगी। असुरोंमें भी पीतकेश बालक-बालिकायें पैदा होंगी, जिन्हें भ्रम या धोखेमें पड़कर आर्य अपने भीतर ले लेंगे, फिर रक्तकी शुद्धता कहाँसे रहेगी? इसलिये रक्त-शुद्धताके वास्ते हमें स्त्री-पुरुष दोनों ओरसे पूरा ध्यान रखना होगा। यही नहीं, हमें आर्य जनपदमें दास-प्रथा नहीं स्वीकार करनी होगी, क्योंकि रक्तकी शुद्धताको नष्ट करनेके लिये इससे खतरनाक कोई काम नहीं। बल्कि, मैं तो कहूँगा ऐसी कोशिश करनी चाहिये, कि आर्य जनपदमें अनार्यों का वास न होने पाये।

"सबसे बड़ा खतरा और सारी बुराइयोंकी जड़ है, असुरोंकी राज-प्रथा, जिसका ही एक अंग है उनकी पुरोहित-प्रथा। असुर-जनको कोई अधिकार नहीं, असुर-राजा जो कहे उसीपर चलना हरएक असुर अपना धर्म समझता है। असुर-पुरोहित सिखलाता है कि जनताकी सभी बातोंका जिम्मा ऊपर देवताओं और नीचे राजाने ले रखा है, जनको कुछ कहने करनेका अधिकार नहीं। राजा स्वयं धरती

पर देवता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब सुना कि शिवि—सौवीरोंने इन्द्रके पदको हटा दिया। यद्यपि इन्द्रको आर्योंमें वह स्थान कभी नहीं मिला, जो कि असुर राजाको प्राप्त था—इन्द्र जनद्वारा चुना एक बड़ा योद्धा मात्र था, वह जनपर शासन करनेका कोई अधिकार नहीं रखता था। तो भी इस पदसे खतरा था, और कुछ लोगोंने उसकी आड़में आर्योंमें राजप्रथा कायम करनेका प्रयत्न किया भी। आर्य यदि अपने आर्यत्वको कायम रखना चाहते हैं, तो उन्हें किसी आदमीको राजा जैसा अधिकार नहीं देना चाहिये। आर्योंमें असुरोंके धर्मके प्रति भारी घृणा है, इसमें शक नहीं; किन्तु, जिस दिन आर्योंमें राजा बनेगा, उसी दिन असुरों जैसा पुरोहित भी आ जायेगा, और फिर आर्यत्वको डूबा ही समझो। जनके परिश्रमपर राजा मौज करेगा, और देवताओंकी सहायता दिलानेके लिये वह पुरोहितको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लेगा, इस प्रकार राजा और पुरोहित मिल जनको अपना दास बना छोड़ेंगे।

"हमें, आर्योंकी पुरानी प्रथाओंको बड़ी दृढ़ताके साथ पकड़े रहना होगा, और जहाँ भी कोई आर्य जन उससे डिगे, उसे आर्योंकी जमातसे खारिज कर देना होगा।"

(३)

सौवीरके दक्षिणी भाग (कराचीके आसपास) से इधर कितनी ही चिन्ता-जनक खबरें वरुणको मिल रही थीं; जिनसे मालूम होता था, कि अन्तिम असुर-दुर्गके पराजयके साथ आर्योंके भीतर भारी कलह उठ खड़ा होना चाहता है। वरुणने अपने गुरुके साथ सौवीरकी समस्यापर कई बार हर पहलूसे विचार किया था। ऋषि अंगिराका कहना था, कि चाहे यह कलह पहिले सौवीर में पैदा हुई हो, किन्तु इसके भीतरसे सारे आर्य-जनों को गुजरना पड़ेगा। आर्य सदासे व्यक्तिके ऊपर जनके शासनको मानते आये हैं, उधर असुरोंकी निरंकुश राज-सत्ताको देखकर कितने ही आर्यनेताओंको अधिकार और भोगका

प्रलोभन हो सकता है, इन दोनो मनोवृत्तियोंका संघर्ष जरूर होकर रहेगा, और जिस जनपद्‌मे असुरोंकी संख्या जितनी ही अधिक होगी, वहाँ इस संघर्षकी और ज्यादा सभावना है; क्योंकि वहाँ पराजित असुर आर्योंकी भीतरी फूटसे फायदा उठाना चाहेंगे।

आठ वर्ष रहनेके बाद सौवीरपुर (रोरुक, रोडी) की खबरोंको और चिन्ताजनक सुन वरुणको गंधारपुर छोड़ना पड़ा। आवसथके प्रथम साथी पालमाद्रने उसका साथ दिया। गंधारकी सीमा पारकर वह नमककी पहाड़ियोंवाले सिन्धु जनपद्‌में प्रविष्ट हुये नमककी खानोंमें काम करनेवाले अब भी असुर व्यापारी और श्रमिक ज्यादा थे, जिसका असर पीतकेशों (आर्यों) पर भी बुरा पड़ा था। उनमे ज्यादा आलस्य था, वह अपने काम को अनार्य कर्मकरोंसे कराना ज्यादा पसंद करते थे, और समझते थे, कि हमारा काम घोड़ेपर चढना और तलवार चलाना है। अनार्योंके सामने असुर राजाओं जैसी हेकड़ी दिखलाने वाले आर्य राजसत्ता अंकुरित करनेके लिये अच्छे क्षेत्र थे। लेकिन, नमककी पहाडियोंको पार करनेपर सौवीरोंका प्रथम-स्थान (मूल-स्थान, मुल्तान) जब आया, तो अवस्था कुछ अच्छी पाई। यहाँके निवासी सारे ही आर्य थे, और उनके लिये यह तारीफकी बात थी, कि यहाँकी भीषण गर्मी (वरुण और पाल गर्मीकी ऋतु हीमें यात्राकर रहे थे, यद्यपि सिन्धुमे नावसे चलनेके कारण मार्गका कष्ट कम था) को बर्दाश्तकर भी इस जनपद्‌को आर्य बनाये हुये थे।

सौवीरपुर (रोरुक, रोडी) मे गर्मीका क्या पूछना था, खासकर गांधरपुर और उसकी पहाडियोंसे होकर आनेके कारण उन्हें वह गर्मी ज्यादा परेशानकर रही थी। आर्योंमें अभी लिखनेका सकेत (लिपि) नहीं प्रचलित हुआ था, इसीलिये जब तब सौवीरके साथों द्वारा वरुणने अपने मित्रोंको जो सदेश भेजा था, वह पूरा नहीं पहुँच सकता था। इस वक्त कितनी ही बार उसे असुरोंकी लिपिका ख्याल आया था। सौवीरपुरमे पहुँचनेपर उसे मालूम होगया, कि मामला बहुत दूर तक

बढ़ चुका है। स्वयं सौवीरपुरमें सुमित्रके समर्थक बहुत कम थे, किन्तु दक्षिण सौवीरमें अन्तिम असुर दुर्गध्वंसक सुमित्रका पक्ष लेनेवाले आर्य ज्यादा थे। इस अन्तिम दुर्गके पतनके समय सेनापति सुमित्रने असुर नागरिकों पर आवश्यकतासे अधिक दया दिखलाई थी, उस वक्त वरुण इसके लिये सुमित्रका भारी प्रशंसक बन गया था। किन्तु अब उसे मालूम हो रहा था, कि यह सब सुमित्रकी चाल थी। वह समझता था, इस पराजयके बाद असुर फिर आर्योंके विरुद्ध खड़े नहीं हो सकेंगे, और इस दया-प्रदर्शनसे सागरपारके सार्थवाह असुरोंकी सम्पत्ति और शक्तिका उपयोग हम अपने व्यक्तिगत लाभके लिये कर सकेंगे।

सुमित्र अब भी सेना को लिये हुये सागरतीरके असुरपुरमें बैठा था, और बनावटी युद्धोंके बहाने वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेता था। वरुण पहिले जनके साधारण नायकोंसे मिला, उनको सुमित्रकी बातें स्पष्ट नहीं मालूम थीं। वह समझते थे, व्यक्तिगत द्वेषके कारण कुछ जननायक सुमित्रका विरोध कररहे हैं। फिर जब वह उन प्रधान नायकोंसे मिला, जिनपर जनके शासनका भार था, तो उन्होंने सारी बात बतलाई, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि सुमित्रकी बुरी नीयत हमारे लिये बिल्कुल साफ होनेपर भी जनके साधारण लोगोंके लिये साफ नहीं है, क्योंकि इसे वह दूसरे ही अर्थमें लेते हैं।

असुरपुरके विजयमें वरुण सुमित्रका उपनायक था, इसलिये, यद्यपि उस बातको बीते अब नौ साल हो गये थे, तो भी लोगोंमें उसके खड्गकी प्रशंसा बंद नहीं हुई थी। वरुणने जनको समझानेसे पहिले चाहा कि सुमित्रके बारेमें खुद जाकर पता लगाये। इसी अभिप्रायसे एक दिन दोनों मित्र दक्षिण सौवीरके लिये नौकापर सवार हुये। उन्होंने गांधार-व्यापारियों जैसा बाना बनाया। असुरपुरके देखनेसे मालूम होता था, वह सचमुच ही आर्योंका नहीं असुरोंका पुर है। उसकी पण्य-वीथियोंमें बड़े-बड़े असुर-सागर-वणिकोंके महल और देश-विदेशकी पण्य-वस्तुयें थीं। कितने ही असुर सामन्त-परिवार भी अपने मुहल्लों

में बसे हुये थे, और उनके आसपास दास-दासी भी पहिले हीकी तरह हाथ-बाँधे खड़े रहते थे। उसके मनमें जिज्ञासा होने लगी कि आखिर विजयी आर्य यहाँपर कहाँ रहते हैं। सुमित्र असुराजके महलमें रहता था। एक दिन उसने गंधारवणिककी ओरसे भेंट लेकर पालभाद्रको उसके पास भेजा। पालने लौटकर बतलाया कि पीले केशों और गौर मुखको छोड़ देनेपर सुमित्र बिलकुल असुरराजा बन गया है। उसका निवास किसी आर्य सेनापतिका सीधा-सादा घर नहीं है, बल्कि सोने-चाँदीसे चमचमाता असुर दर्बार है। उसके पार्श्वचर सैनिकोंमे भी वह सादगी नहीं है। सप्ताह बीतते-बीतते मालूम हो गया कि वहाँ आर्योंका पता लगता है असुर-कन्याओंके नृत्यों तथा सुरा-गोष्ठियोंमें। कितनी ही आर्य-स्त्रियाँ अपने पतियोंके पास जाना चाहती हैं, किन्तु बहाना-करके उन्हें आनेसे मनाकर दिया जाता है। सुमित्रने बहुत बार सन्देश भेजनेपर भी अपनी स्त्रीको आनेसे रोक दिया। वह स्वयं असुर पुरोहितकी कन्याके प्रेममें फंसा हुआ था। और वही नहीं नगरकी कितनीही असुर-सुंदरियाँ उसकी अन्तःपुरचारिणी थीं। अपने आर्य-सैनिकोंके लिये भी उसने वैसी ही छूट दे रखी थी। दूसरे आर्य जब आने लगते, तो दासोंसे दंगा करवा देता, जिससे कुछ खून-खराबी होती, और आर्य आनेसे रुक जाते।

वरुणने सारी बातोंका पूरा पता लगा अपने मित्रके साथ चुपचाप एक दिन सौवीरपुरके लिये प्रस्थान किया।

सौवीरपुरमें उसने जन-नायकोंको बतलाया; सुमित्र अपनी शक्तिको इतना दृढ़कर चुका है, कि अब हमें असुरपुरके आर्यभटों ही नहीं, असुरोंकी शक्तिसे भी मुकाबिला करना पड़ेगा, इसके लिये तैयारी करके हमें असली बात लोगोंको बतलानी होगी।

वरुण नृत्य-अखाड़ेका दुलारा था, और वर्षोंसे पतियोंका मुख न देख पानेवाली आर्य-स्त्रियाँ जब इस सुंदर नर्तकके मुँहसे एकान्तमें अपने पतियोंकी कर्तूतोंको सुनतीं, तो उन्हें पूरा विश्वास हो जाता।

फिर एक कानसे दूसरे कानमें चलकर बात बड़े वेगसे फैलने लगती। वरुण कवि भी था, उसने पति-वियोगिनी आर्य महिलाओंकी ओरसे असुर-कन्याओंको अभिशाप, तथा सुमित्रके विलासपूर्ण स्वार्थमय जीवन की कितनी ही सुन्दर गीतें बनाईं, जो दावानलकी भाँति सारे सौवीरके आर्य-ग्रामोंमें गाई जाने लगीं। आखिरमें उसने आर्य-पत्नियोंको थोड़ा-थोड़ा करके उनके पतियोंके पास भेजा, जिन्हें तिरस्कारकर लौटाने का परिणाम और भी बुरा साबित हुआ। सुमित्रको लौटनेके लिये कहनेपर भी जब वह आनेके लिये नहीं राजी हुआ तो उसके स्थानपर वरुणको सेनानायक नियुक्तकर भारी आर्य-सेनाके साथ असुरपुरके लिये रवाना किया; वरुणको सामने आया समझ—सुमित्रके सैनिकोंमें फूट पड़ गई, और कितनोंने अपने अनार्य-व्यवहारके लिए सचमुच पश्चात्ताप किया। बाकी बँची हुई सेनाकी मददसे लड़नेमें सुमित्र को सफलताकी आशा न थी, इसीलिये अन्तमें उसने वरुणको नगर समर्पितकर सौवीरपुर लौटनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रकार आर्य जन पहिली भीषण परीक्षामें सफल हुए। वरुणने असुरोंको नहीं छेड़ा, क्योंकि अब वह अस्त्रसे नहीं लड़रहे थे। हाँ, आर्योंको असुरोंके प्रभावसे अलग रखनेके लिए उसने एक अलग आर्यपुर बसाया और ऋषि अंगिराकी बतलाई कितनी ही बातोंको काममें लाना शुरू किया*।

---

* आजसे १५२ पीढ़ी पहिलेकी आर्य-कहानी।

७—सुदास्

देश—कुरु-पंचाल (पश्चिमी युक्त-प्रान्त)। जाति—वैदिक आर्य।

काल—१५०० ई० पू०

(१)

वसन्त समाप्त हो रहा था। चनाब (चन्द्रभागा) की कछारमें दूर तक पके गेहुओंके सुनहले पौधे खड़े हवाके झोंकेसे लहरा रहे थे, जिनमें जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष गीत गाते खेत काटनेमें लगे हुए थे। कटे खेतोंमे उगी हरी घास चरनेके लिए बहुत-सी बछेड़ोवाली घोड़ियाँ छोड़ी हुई थीं। धूपमें एक पान्थ आगेकी ओर अपने भूरे केशोंके जूटको दिखलाते हुए सिरमें फटे कपड़ोंकी उष्णीष (पगड़ी) बाँधे, शरीरपर एक पुरानी चादर लपेटे, घुटनों तककी धोती (अन्तरवासक) पहने, हाथमें लाठी लिए मन्द गतिसे चला जा रहा था। प्यासके मारे उसका तालू सूख रहा था। पथिकने हिम्मत बाँधी थी अगले गाँवमे पहुँचनेकी; किन्तु मार्गकी बगलमें एक कच्चे कुएँ तथा छोटे-से शमी वृक्षको देखकर उसकी हिम्मत टूट गई। उसने पहले अपने उष्णीष-वस्त्र, फिर नंगे होकर धोती, तथा एक बार दोनोंको जोड़कर छोरको पानीमे डुबानेकी कोशिश की; किन्तु वह सफल नहीं हुआ। अन्तमें निराश हो पासके वृक्षके सहारे बैठ रहा। उसे जान पड़ने लगा कि फिर इस जगहसे उठना नहीं होगा। उसी वक्त एक कन्धेपर मशक, दूसरे कन्धेपर रस्सी तथा हाथमें चमड़ेकी बाल्टी लिए एक कुमारी उधर आती दिखाई पड़ी। पान्थकी छूटी आशा लौटने लगी। तरुणीने कुएँपर आकर मशकको रख दिया, और जिस वक्त वह बाल्टीको कुएँमें डालने जा रही थी, उसी वक्त उसकी नज़र यात्रीके चेहरेपर पड़ी। उसका चेहरा मुरझाया हुआ था, ओठ फटे, गाल पिचके, आँखें कोटरलीन, पैर नगे धूल-भरे थे। किन्तु इन सबके पीछेसे उसकी तरुणाईकी झलक भी आ रही थी।

पथिकने स्वर्ण-केशोंपर कुमारियोंकी सज्जा, शरीरपर उत्तरासंग (चादर), कञ्चुक और अन्तरवासक (लुङ्गी) के साधारण, किन्तु विनीत वेशको देखा। धूपमें चलनेके कारण तरुणका मुख अधिक लाल हो गया था, और ललाट तथा ऊपरी ओठपर कितने ही श्रम-बिन्दु झलक रहे थे। कुमारीने थोड़ी देर उस अपरिचित पुरुषकी ओर निहारकर माद्रियोंकी सहज मुस्कराहटको अपने सुन्दर ओठोंपर ला तरुणकी आधी प्यासको बुझाते हुए मधुर स्वरमें कहा—'मैं समझती हूँ, तू प्यासा है भ्रातर!'

पथिकने साहसपूर्वक अपने गिरते कलेजेको दृढ़ करनेमें असफल होते हुए कहा—'हाँ, मैं बहुत प्यासा हूँ।'

'तो मैं पानी लाती हूँ।'

तरुणीने बाल्टीमें पानी भरा। तब तक तरुण भी उसके पास आकर खड़ा हो गया था। उसका दीर्घ गात्र और मोटी हड्डियाँ बतला रही थीं कि अभी उनके भीतरसे असाधारण पौरुष लुप्त नहीं हुआ है। मशकसे लटकते चमड़ेके गिलासको पथिकके हाथमें दे तरुणीने उसमें बाल्टीसे पानी भर दिया। पथिकने बड़ी घूँट भरी और गलेसे उतारनेके बाद नीचे मुँहकर बैठ गया। फिर एक साँसमें गिलासके पानीको पी गया। गिलास उसके हाथसे छूट गया और सँभालते-सँभालते भी वह पीछेकी ओर गिर पड़ा। तरुणी ज़रा देरके लिए अवाक् रह गई। फिर देखा, तरुणकी आँखें उलट गई हैं, वह बेहोश हो गया है। तरुणीने झटसे अपने सिरसे बँधे रुमालको पानी में डुबा तरुणके मुख और ललाटको पोंछना शुरू किया। कुछ क्षणमें उसने आँखें खोली, फिर तरुण कुछ लज्जित-सा हो क्षीण-स्वरमें बोला—'मुझे अफसोस है कुमारि मैंने तुझे कष्ट दिया।'

'मुझे कष्ट नहीं है; पर मैं तो डर गई थी कि ऐसा क्यों हुआ?'

'कोई बात नहीं, खाली पेट था, प्यासमें बहुत पानी पी गया। किन्तु अब कोई हर्ज नहीं।'

'खाली पेट ?'—कह पथिकको बोलनेका कुछ भी अवसर दिए बिना तरुणी वहाँसे दौड़ गई और थोड़ी देरमें एक कटोरेमें दही, सत्तू और मधु लेकर आ उपस्थित हुई। तरुणके चेहरेपर संकोच और लज्जाकी रेखा फिरी देखकर कुमारीने कहा—'तू संकोच न कर पथिक! मेरा भी एक भाई कई साल हुए घरसे निकल गया है। यह थोड़ी-सी तेरी सहायता करते वक्त मुझे अपना भाई याद आ रहा है।'

पथिकने कटोरेको ले लिया। तरुणीने बाल्टीसे जल दिया। तरुण सत्तू घोलकर धीरे-धीरे पी गया। पीनेके बाद उसके चेहरेकी आधी मुरझाहट जाती रही और अपने संयत मुखकी मूक मुद्रासे कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह कुछ बोलनेकी सोच ही रहा था कि तरुणीने मानो उसके भावोंको समझकर कहा—'संकोच करनेकी ज़रूरत नहीं भ्रातर! तू दूरसे आया मालूम होता है?'

'हाँ, बहुत दूर पूरबसे—पंचालसे।'

'कहाँ जायगा?'

'यहाँ, वहाँ, कहीं भी।'

'तो भी।'

'अभी तो कोई काम चाहता हूँ, जिसमें अपने तन और कपड़ोंकी व्यवस्था कर सकूँ।'

'खेतोंमें काम करेगा?'

'क्यों नहीं? मैं खेत काट-बो-जोत सकता हूँ। खलिहानका काम कर सकता हूँ। घोड़े-गायकी चरवाही कर सकता हूँ। मेरे शरीरमें बल है; अभी सूख गया है; किन्तु थोड़े ही समयमें मैं भारी बलके कामको भी करने लगूँगा। कुमारि! मैंने कभी अपने किसी मालिकको नाराज़ नहीं किया।'

'तो मैं समझती हूँ, पिता तुझे कामपर रख लेंगे। पानी भरती हूँ, मेरे साथ चलना।'

तरुणने मशक ले चलनेकी बहुत कोशिश की; किन्तु तरुणी राज़ी

न हुई। खेतमें एक लाल तम्बू लगा था, जिसके बाहर चालीसके क़रीब स्त्री-पुरुष बैठे थे। तरुण पहचान नहीं सकता था कि इनमें कौन तरुणी-का पिता है। सबके एक-से सादे वस्त्र, एक-से पीले केश, गोरा शरीर, अदीन मुख। तरुणीने मशक और बाल्टीको उतार बीचमें बिछे चमड़ेपर रखा, फिर साठ वर्षके एक बूढ़े किन्तु स्वस्थ बलिष्ट आदमीके पास जाकर कहा—'यह परदेसी तरुण काम करना चाहता है, पितर!'

'खेतोंमें दुहितर!'

'हाँ, कहीं भी।'

'तो यहाँ काम करे। वेतन जो यहाँ दूसरे पुरुषोंको मिलेगा, वही इसे भी मिल जायगा।'

तरुण सुन रहा था। वृद्धने यही बात उसके सामने दुहराई, जिसे उसने स्वीकार किया। फिर वृद्धने कहा—'आ तरुण! तू भी आ जा। हम सब मध्याह्न-भोजन कर रहे हैं।'

'अभी मैंने सत्तू पिया है, तेरी दुहिताने दिया था, आर्य!'

'आर्य-वार्य नहीं, मैं जेता ऋभु-पुत्र मात्र हूँ। तू जो कुछ भी खा-पी सके, खा-पी! अपाला! मेरय (कच्ची शराब) देना, अश्विनी-क्षीरका। धूपमें अच्छा होता है तरुण! बात शामको करूँगा, इस वक्त नाम-भर जानना चाहता हूँ।'

'सुदास् पांचाल।'

'सुदास् नहीं, सुदाः—सुन्दर दान देनेवाला। तुम पूरबवाले भाषा भी ठीकसे बोलना नहीं जानते! पंचाल जनपदसे! अच्छा, अपाले! यह पूरबवाले लज्जालु होते हैं। इसे खिलाना, जिसमें शाम तक कुछ काम करने लायक हो जाय।'

सुदास्ने आपालाके आग्रहपर मेरयके दो-तीन प्याले पिए और एकाध टुकड़ा रोटीका गलेसे नीचे उतारा। दो दिनसे भूखे रहनेके कारण उसकी भूख मर-सी गई थी।

जैसे-जैसे सूर्यकी चण्डता मन्द होती जा रही थी, वैसे ही वैसे

सुदास् अपने भीतर नई स्फूर्ति आती देख रहा था, और शामको काम छोड़नेसे पहले गेहूँ काटनेमें वह किसीसे कम न था।

रातको लोग वहाँसे दूर खलिहान-घरोंके पास गए। जेताकी खेती बड़ी थी, यह खलिहानमें रातको जमा हुए दो सौसे ऊपर कमकर बतला रहे थे। खलिहानके घरोंमें खानाबनानेवाले अपने काममें लगे हुए थे। एक भारी बैल मारा गया था, जिसकी हड्डियों, अँतड़ियों और कुछ मासको बड़े-बड़े देगोंमें तीन घंटा दिन रहते ही चढ़ा दिया गया था। बाक़ी आध-आध सेरके टुकड़े अलग नमकके साथ उबाले जा रहे थे। घरोंके बाहर एक भारी चिकना मैदान खलिहानके लिए था; जिसकी एक ओर एक पक्का कुआँ तथा पानीसे भरा कुण्ड था। स्त्री-पुरुषोंने कुण्डपर जाकर हाथ-मुँह धोए। जिन्हें शरीर धोनेकी इच्छा थी, उन्होंने शरीर भी धोया। अँधेरा होतेके साथ पाँतीसे बैठे स्त्री-पुरुषोंके सामने रोटी, मास-खंड और सुरा-भाँड़ रखे गए। सुदास्की लज्जाका ख़याल कर अपाला—पानी लाने वाली—ने उसे अपने पास बैठाया, यद्यपि इसमें उसकी लज्जाका उतना ख़याल न था, जितना कि परदेश गए भाई की स्मृतिका। भोजन-पानके बाद गान-नृत्य शुरू हुआ, जिसमें यद्यपि सुदास् आज सम्मिलित नहीं हो सका; किन्तु आगे चलकर वह सर्व-प्रिय गायक और नर्त्तक बना।

खेतकी कटाई, ढोलाई और दँवाई डेढ़ महीने तक चलती रही; किन्तु दो सप्ताह बीतते-बीतते ही सुदास् पहचाना नहीं जा सकता था। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें उभर आई थीं। उसके गालोंपर स्वाभाविक लाली दौड़ चुकी थी। उसके शरीरकी नसें व हड्डियाँ पेशियों-से ढँक गई थीं। जेताने सप्ताह बाद ही उसे नए कपड़े दे दिए थे।

खलिहान क़रीब-क़रीब उठ चुका था। छः-सात आदमियों—जिनमें बाप-बेटी और सुदास् भी थे—को छोड़ बाक़ी लोग अपने अनाज को लेकर चले गए थे। इन लोगोंके पास खेत थोड़े थे, इसलिए अपने खेतोंको काटकर वह जेताके खेतोंमें काम करने आए थे। इन डेढ़

महीनोंमें जेता और उसकी लड़की अपने तरुण कमकरके सरल, हँसमुख स्वभावसे बहुत परिचित हो चुके थे। एक दिन साध्यसुराके बाद जेताने सुदाससे पूरबवालोंकी बात छेड़ दी। अपाला भी पास बैठी सुन रही थी। जेताने कहा—'सुदाः! पूरबमें मैं बहुत दूर तक तो नही गया हूँ; किन्तु पचालपुर (अहिच्छत्र) को मैंने देखा है। मै अपने घोड़े को लेकर जाड़ोंमें गया था।'

'पंचाल (रुहेलखंड) कैसा लगा आर्यवृद्ध ?'

'जनपदमें कोई दोष नहीं। वह मद्र-जैसा ही स्वस्थ-समृद्ध है, बल्कि उसके खेत यहाँसे भी अधिक उपजाऊ मालूम हुए; किन्तु...'

'किन्तु क्या ?'

'क्षमा करना सुदाः! वहाँ मानव नहीं बसते।'

'मानव नहीं बसते ? तो क्या देव या दानव बसते हैं ?'

'मैं इतना ही कहूँगा कि वहाँ मानव नहीं बसते।'

'मैं नाराज़ नहीं होऊँगा आर्यवृद्ध! तुझे क्यों ऐसा ख़याल हुआ ?'

'सुदाः! तूने देखा मेरे खेतोंमें काम करनेवाले दो सौ नर-नारियोंको ?'

'हाँ।'

'क्या मेरे खेतमें काम करने, मेरे हाथसे वेतन पानेके कारण उन्हें ज़रा भी मेरे सामने दैन्य प्रकट करते देखा ?'

'नहीं, बल्कि मालूम होता था, सभी तेरे परिवारके आदमी हैं।'

'हाँ, इनको मानव कहते हैं। ये मेरे परिवारके हैं। सभी माद्र और माद्रियाँ हैं। पूरबमें ऐसी बातको देखनेको जी तरसता है। वहाँ दास या स्वामी मिलते हैं, मानव नहीं मिलते, बन्धु नहीं मिलते।'

'सत्य कहा, आर्यवृद्ध! मानवका मूल्य मैंने शतद्रु (सतलज) पारकर—ख़ासकर इस मद्रभूमिमे आकर देखा। मानवमें रहना आनन्द, अभिमान और भाग्यकी बात है।'

मुझे खुशी है पुत्र ! तूने बुरा नहीं माना। अपनी-अपनी जन-भूमिका सबको प्रेम होता है।'

'किन्तु प्रेमका अर्थ-दोषोंसे आँख मींचना नहीं होना चाहिए।'

'मैंने कुरु-पंचालकी यात्रा करते वक्त बहुत बार सोचा, यहाँसे भी पंडितोंसे चर्चा की। मुझे इस दोषके आनेका कारण तो मालूम हुआ; किन्तु प्रतिकार नहीं।'

'क्या कारण आर्यवृद्ध ?'

'यद्यपि पंचाल जन-पद पंचालोंका कहा जाता है; किन्तु उसके निवासियोंमें आधे भी पंचाल-जन नहीं हैं।'

'हाँ, आगन्तुक बहुत हैं।'

'आगन्तुक नहीं पुत्र ! मूलनिवासी बहुत हैं। वहाँकी शिल्पी जातियाँ, वहाँके व्यापारी, वहाँके दास पंचाल-जनोंके उस भूमिपर पग रखनेसे बहुत पहलेसे मौजूद थे। उनका रंग देखा है न ?'

'हाँ, पंचाल-जनोंसे बिल्कुल भिन्न काला, साँवला या ताम्रवर्ण।'

'और पंचाल-जनोंका वर्ण मद्रों-जैसा गौर होता है।'

'बहुत-कुछ।'

'हाँ बहुत-कुछ ही, क्योंकि दूसरे वर्णवालोंके साथ मिश्रण होनेसे वर्ण (रंग) में विकार होता ही है। मैं समझता हूँ, यदि मद्रकी भाँति वहाँ भी आर्य— पिंगल-केश—ही बसते, तो शायद मानव वहाँ भी दिखलाई पड़ते। आर्य और आर्य-भिन्नोंके ऊँच-नीच भावमें तो भिन्न वर्ण होना कारण हो सकता है।'

'और शायद आर्यवृद्ध ! तुझको मालूम होगा कि इन आर्य-भिन्नों-जिन्हें पूर्वज असुर कहते थे—में पहले ही से ऊँच-नीच और दास-स्वामी होते आते थे।'

'हाँ, किन्तु पंचाल तो आर्य जन थे एक खून एक शरीरसे उत्पन्न। फिर वहाँ उनमें भी ऊँच-नीचका भाव वैसा ही पाया जाता है। पंचाल-राज दिवोदासूने मेरे कुछ घोड़े खरीदे थे, इसके लिए एक

दिन मैं उसके सामने गया था। उसका पुष्ट गौर तरुण शरीर सुन्दर था; किन्तु उसके सिरपर लाल-पीली भारी-भरकम डलिया (मुकुट), फटे कानोंमें बड़े-बड़े छल्ले, हाथों और गलेमें भी क्या-क्या तमाशे थे। यह सब देखकर मुझे उसपर दया आने लगी। जान पड़ा, चन्द्रमाको राहु ग्रस रहा है। उसके साथ उसकी स्त्री भी थी, जो रूपमें मद्र-सुन्दरियोंसे कम न थी; किन्तु इन लाल-पीले बोझोंसे बेचारी झुकी जा रही थी।'

सुदासका हृदय वेगसे चलने लगा था। उसने अपने भावोंसे चेहरेको न प्रभावित होने देनेके लिए पूरा प्रयत्न किया; किन्तु असफल होते देख बातको बदलनेकी इच्छासे कहा—'पंचाल-राजने घोड़ोंको लिया न आर्यवृद्ध ?'

'लिया और अच्छा दाम भी दिया। याद नहीं, कितने हिरण्य; किन्तु वहाँ यह देखकर ज्वर आ रहा था कि पंचाल-जन भी उसके सामने घुटने टेककर वन्दना करते, गिड़गिड़ाते हैं। मर जानेपर भी कोई मद्र ऐसा नहीं कर सकता, पुत्र !'

'तुझे तो ऐसा नहीं करना पड़ा आर्यवृद्ध ?'

'मैं तो लड़ पड़ता, यदि मुझे ऐसा करनेको कहा जाता। पूरबवाले राजा हमें वैसा करनेको नहीं कहते। यह सनातनसे चला आया है।'

'क्यों ?'

'क्यों पूछता है पुत्र ! इसकी बड़ी कहानी है। जब पश्चिमसे आगे बढ़ते-बढ़ते पंचाल-जन यमुना, गंगा, हिमवान्‌के बीच (उत्तर-दक्षिणके पंचालों) की इस भूमिमें गए, तो वह बिल्कुल मद्रोंकी ही भाँति एक परिवार—एक बिरादरी—की तरह रहते थे। असुरोंसे संसर्ग बढ़ा, उनकी देखादेखी इन आर्य-पंचालोंमें से कुछ सर्दार राजा और पुरोहित बननेके लिए लालायित होने लगे।'

'लालायित क्यों होने लगे ?'

'लोभके लिए, बिना परिश्रमके दूसरेकी कमाई खानेके लिए।

इन्हीं राजाओं और पुरोहितोंने पंचालोंमें भेद-भाव खड़ा किया, उन्हें मानव नहीं रहने दिया।'—कहते-कहते जेता किसी कामसे उठ गए।

(२)

मद्रपुर (शाकला या स्यालकोट) मे जेताके कुलमें रहते सुदास्को चार वर्ष बीत गए थे। जेताकी स्त्री मर चुकी थी। उसकी विवाहिता बहनों और बेटियोंमे से दो-एक बराबर उसके घरमें रहती थीं; किन्तु घरके स्थायी निवासी थे जेता, सुदास् और अपाला। अपाला अब बीस सालकी हो रही थी। उनके व्यवहारसे पता लगता था कि अपाला और सुदास्का आपसमें प्रेम है। अपाला मद्रपुरकी सुन्दरियोंमें गिनी जाती थी और वहाँ सुन्दर तरुणोंकी कमी न थी। उसी तरह सुदास्-जैसे सुन्दर तरुणके लिए भी वहाँ सुन्दरियोंकी कमी न थी; किन्तु लोगोंने सदा सुदास्को अपाला और अपालाको सुदास्के ही साथ नाचते देखा। जेताको भी इसका पता था, और वह इसे पसन्द करता, यदि सुदास् मद्रपुरमें रहनेके लिए तैयार हो जाता। किन्तु सुदास् कभी-कभी अपने माता-पिताके लिए उत्कठित हो जाता था। जेता जानता था कि सुदास् अपने माँ-बापका अकेला पुत्र है।

एक दिन अपाला और सुदास् प्रेमियोंकी नदी चन्द्रभागा (चनाब)में नहाने गए थे। नहाते वक्त कितनी ही बार सुदास्ने अपालाके नग्न अरुण शरीरको देखा था। किन्तु आज पचासों नग्न सुन्दरियोंके बीच उसके सौन्दर्यकी तुलनाकर उसे पता लगा, जैसे आज ही उसने अपालाके लावण्यकी पूरी परख पाई है। रास्तेमे लौटते वक्त उसे मौन देखकर अपालाने कहा—'सुदास्! आज तू बोलता नहीं, थक गया है क्या? चन्द्रभागाकी धारको दो बार पार करना कम मेहनतकी बात नहीं है।'

'तू भी तो अपाले! आर-पार तैर गई, और मैं तो दो क्या, समय हो तो दस बार चन्द्रभागाको पार कर सकता हूँ।'

'बाहर निकलनेपर मैंने देखा, तेरे वक्ष कितने फूले हुए थे! तेरी बाँहों और जाघोंकी पेशियाँ तो दूनी मोटी हो गई थीं।'

'तैरना भारी व्यायाम है। यह शरीरको बलिष्ठ और सुन्दर बनाता है। किन्तु तेरे सौन्दर्यमें क्या वृद्धि होगी, अपाले! तू तो अभी भी तीनों लोकोंकी अनुपम सुन्दरी है।'

'अपनी आँखोंसे कहता है न सुदास्?'

'किन्तु मोहसे नहीं अपाले! तू यह जानती है।'

'हाँ, तूने चुम्बन तक कभी मुझसे नहीं माँगा, यद्यपि मद्र-तरुणियाँ उसके वितरणमें बहुत उदार होती हैं।'

'बिना माँगे भी तो तूने उसे देनेकी उदारता की है।'

'किन्तु उस वक्त, जबकि मै तुझमें भैया श्वेतश्रवाको देखा करती थी।'

'और अब क्या न देगी?'

'माँगनेपर चुम्बन क्यों न दूँगी?'

'और माँगनेपर तू मेरी—'

'यह मत कह, सुदास्! इन्कार करके मुझे दुःख होगा।'

'किन्तु उस दुःखको न आने देना तेरे हाथमें है?'

'मेरे नहीं, तेरे हाथमें है।'

'कैसे?'

'क्या तू सदाके लिए मेरे पिताके घरमें रहनेके लिए तैयार है?'

सुदास्को कितनी ही बार उन कोमल ओंठोंसे इन कठोर अक्षरोंके निकलनेका डर था, आज अशनि(बिजली)की भाँति एकाएक वह उसके कानोंको छेदकर हृदयपर पड़े। कुछ देरके लिए उसका चित्त उद्विग्न होगया; किन्तु वह नहीं चाहता था कि अपाला उसके नग्न हृदयको देखे। क्षण-भरके बाद उसने स्वरपर संयम करके कहा—'मैं तुझे कितना प्रेम करता हूँ अपाले!'

'यह मैं जानती हूँ, और मेरी भी बात तुझे मालूम है। मैं सदाके लिए तेरी बनना चाहती हूँ। पिता भी इससे प्रसन्न होंगे; किन्तु फिर तुझे पंचालसे मुँह मोड़ना होगा।'

'पंचालसे मुँह मोड़ना कठिन नहीं है; किन्तु वहाँ मेरे वृद्ध माता-पिता हैं। मुझे छोड़ माँका दूसरा पुत्र नहीं है। माँने वचन लिया है कि मरनेके पहले मैं उसे एक बार ज़रूर देखूँ।'

'मै माँके वचनको तुड़वाना नहीं चाहती। मैं तुझे सदा प्रेम करूँगी, सुदास्! तेरे चले जानेपर भी। मुझे मालूम है, मैं तेरे लिए रोया करूँगी, जीवनके अन्त तक। किन्तु हमें दो वचनोंको नहीं तोड़ना चाहिए—तुझे अपनी माँके और मुझे अपने हृदयके वचनको।,

'तेरे हृदयका वचन क्या है, अपाले ?'

'कि मानव-भूमिसे अमानव-भूमिमें न जाऊँगी।'

'अमानव-भूमि, पचाल-जनपद ?'

'हाँ, जहाँ मानवका मूल्य नहीं, स्त्रीको स्वातन्त्र्य नहीं।'

'मैं तुझसे सहमत हूँ।'

'और इसके लिए मैं तुझे चुम्बन देती हूँ।'—कह अश्रु-सिक्त कपोलोंको अपालाने सुदास्के ओठोंपर कर दिया। सुदास्के चुम्बनकर लेनेपर उसने फिर कहा—'तू जा, एक बार माँका दर्शनकर आ; मैं तेरे लिए भद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।'

अपालाके भोले-भाले शब्दोंको सुनकर सुदास्को अपने प्रति ऐसी अपार घृणा हो गई, जिसे वह फिर कभी अपने दिलसे नहीं निकाल सका। माँ-बापको देखकर लौट आनेकी बात कहकर ही सुदास् जेतासे घर जानेके लिए आज्ञा माँग सकता था। जेता और अपाला दोनोंने इसे स्वीकार किया।

प्रस्थानके एक दिन पहले अपालाने अधिकसे अधिक समय सुदास्के साथ बिताया। दोनोंके उत्पल-जैसे नीले नेत्र निरन्तर अश्रुपूर्ण रहते। उन्होंने इसे छिपानेकी भी कोशिश न की। दोनों घंटों अधरोंको चूमते, आत्म-विस्मृत हो आलिंगन करते अथवा नीरव अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एक-दूसरेको देखते रहते।

चलते वक्त अपालाने फिर आलिंगनपूर्वक कहा—'सुदास्! मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।'

अपालाके ये शब्द सारे जीवनके लिए सुदास्के कलेजेमें गड़ गए।

(२)

सुदास्का अपनी माँसे भारी स्नेह था। सुदास्का पिता दिवोदास् प्रतापी राजा था, जिसकी प्रशंसामें वशिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज* जैसे महान् ऋषियोंने मन्त्रपर मन्त्र बनाए; किन्तु ऋग्वेदमें जमाकर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। सुदास्का स्नेह केवल अपनी मातासे था। वह जानता था कि दिवोदास्-की उस-जैसी कितनी ही पत्नियाँ, कितनी ही दासियाँ हैं, वह उसके ज्येष्ठ पुत्र—पंचाल-सिंहासनके उत्तराधिकारी—की माँ है, इसके लिए वह थोड़ा-सा ख़याल भले ही करे; किन्तु दिवोदास् कितनी ही तरुण सुन्दरियोंसे भरे रनिवासमें उस बुढ़ियाके दन्तहीन मुखके साथ प्रेम क्यों करने लगा? माँका एक पुत्र होनेपर भी वह पिताका एकमात्र पुत्र न था। उसके न रहने पर प्रतर्दन दिवोदास्का उत्तराधिकारी होता।

वर्षों बीत जानेपर माँ पुत्रसे निराश हो गई थी, और रोते-रोते उसकी आँखोंकी ज्योति मन्द पड़ गई थी। सुदास् एक दिन चुपचाप बिना किसीको ख़बर दिए, पितासे बिना मिले, माँके सामने जाकर खड़ा हो गया। निष्प्रभ आँखोंसे उसे अपनी ओर विलोकते देख सुदास्ने कहा—'माँ! मैं हूँ तेरा सुदास्।'

उसकी आँखे प्रभायुक्त हो गईं, फिर भी मंचसे बिना हिले ही उसने कहा—'यदि तू सचमुच मेरा सुदास् है, तो विलीन होनेके लिए वहाँ क्यों खड़ा है? क्यों नहीं मेरे कण्ठसे लगता? क्यों नहीं अपने सिरको मेरी गोदमें रखता?'

सुदास्ने माँकी गोदमें अपने सिरको रख दिया। माँने हाथ लगाकर

---

* ऋग्वेद ६।२१।२॥, २१

देखा, वह हवामें विलीन होनेवाला नहीं, बल्कि ठोस सिर था। उसने उसके मुँह, गाल, ललाट और केशोंको बार-बार चूम आसुओंसे सींचा, अनेक बार कण्ठ लगाया। माँकी अश्रुधाराको बन्द न होते देख सुदास्ने कहा—'माँ! मैं तेरे पास आ गया हूँ अब क्यों रोती है?'

'आज हीके दिन भर वत्स! आज ही घड़ी भर पुत्र! यह अन्तिम आँसू हैं, सुदास्! मेरी आँखोंके तारे!'

अन्तःपुरसे सूचना राजा तक पहुँची। वह दौड़ा हुआ आया और सुदास्को आलिंगनकर आनन्दाश्रु बहाने लगा।

दिन बीतते-बीतते महीने हो गए, फिर महीने दो सालमें परिणत हो गए। माँ-बापके सामने सुदास् प्रसन्न-मुख बननेकी कोशिश करता; किन्तु एकान्त मिलते उसके कानोंमें वह वज्रच्छेदिका ध्वनि आती—'मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी,' और उसके सामने वही हिलते लाल अधर आ जाते और तब तक ठहरते, जब तककि आँखोंके आँसू उसे ओझल नहीं कर देते। सुदास्के सामने दो स्नेह थे—एक ओर अपालाका वह अकृत्रिम प्रेम और दूसरी ओर वृद्धा माँका वात्सल्यपूर्ण हृदय। माँके असहाय हृदयको विदीर्ण करना उसे अत्यन्त नीच स्वार्थान्धता जान पड़ी, इसीलिए उसने माँके जीवन भर पचाल न छोड़नेका निश्चय किया। लेकिन राजपुत्रके आमोद-प्रमोदपूर्ण जीवनको स्वीकार करना, उसे अपनी सामर्थ्यसे बाहरकी बात मालूम होती थी। पिताके प्रति वह सदा सम्मान दिखलाता था और उसकी आज्ञाके पालनमे तत्परता भी।

वृद्ध दिवोदासने एक दिन पुत्रसे कहा—'वत्स सुदास्! मैं जीवनके अन्तिम तटपर पहुँच गया हूँ, मेरे लिए पंचालका भार उठाना अब सम्भव नहीं है।'

'तो आर्य! क्यों न यह भार पंचालोंको ही दे दिया जाय?'

'पचालोंको! पुत्र तेरा अभिप्राय मैंने नहीं समझा।'

'आख़िर आर्य! यह राज्य पचालोंका है। हमारे पूर्वज पचाल-

जनके साधारण पुरुष थे। उस समय पंचालका कोई राजा न था। पंचाल-जन ही सारा शासन चलाता था, जैसे आज भी मल्लमें, मद्रमें, गन्धारमें वहाँके जन चलाते हैं। फिर हमारे दादा वध्यूश्वके किसी पूर्वजको लोभ—भोगका लोभ, दूसरोंके परिश्रमकी कमाईके अपहरणका लोभ—हुआ। वह जन-पति या सेनापतिके पदपर रहा होगा और जनके लिए किसी युद्धको जीतकर जनके प्रेम, विश्वास और सम्पत्तिको प्राप्त किया होगा, जिसके बलपर उसने जनसे विश्वासघात किया। जनका राज्य हटाकर उसने असुरोंकी भाँति राजाका राज्य स्थापित किया, असुरोंकी भाँति वशिष्ठ, विश्वामित्रके किसी विस्मृत पूर्वजको पुरोहित-पदवी रिश्वतमें दी, जिसने जनकी आँखोंमें धूल झोंककर कहना शुरू किया—इन्द्र, अग्नि, सोम, वरुण, विश्वदेवने इस राजाको तुम्हारे ऊपर शासन करनेके लिए भेजा है, इसकी आज्ञा मानो, इसे बलि-शुल्क-कर दो। यह सरासर बेईमानी थी, चोरी थी पिता! जिससे अधिकार मिला, उसके नाम तकको भूल जाना, उसके लिए कृतज्ञताके एक शब्दको भी जीभपर न लाना!'

'नहीं पुत्र! विश्व (=सारे) जनको हम अपना राजकृत् (=राजा बनानेवाला) स्वीकार करते हैं। अभिषेककी प्रतिज्ञाके वक्त वही हमें राज-चिह्न पलाश-दंड देते हैं।'

'अभिषेक-प्रतिज्ञा अब समज्या (=तमाशा) जैसी है। किन्तु क्या सचमुच जन राजाके स्वामी हैं? नहीं, यह तो स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम देखते हैं—राजा अपने जनके बीच बराबरीमें बैठ नहीं सकता, उनसे सहभोज, सहयोग नहीं रखता। क्या मद्र या गन्धारका जन-पति ऐसा कर सकता है?'

'यहाँ यदि हम वैसा करें, तो किसी दिन भी शत्रु मार देगा, या विष दे देगा।'

'यह भय भी चोर-अपहारकको ही हो सकता है। जन-पति चोर नहीं होते, अपहारक नहीं होते। वह वस्तुतः अपनेको जन-पुत्र समझते

हैं, वैसा ही व्यवहार भी करते हैं, इसलिए उनको डर नहीं। राजा चोर है, जन-अधिकारके अपहारक हैं, इसलिए उनको हर वक्त डर बना रहता है। राजाओंका रनिवास, राजाओंका सोना-रूपा-रत्न, राजाओंकी दास-दासियाँ—राजाओंका सारा भोग—अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरणसे आया है।'

'पुत्रः! इसके लिए तू मुझे दोषी ठहराता है?'

'बिल्कुल नहीं, आर्य! तेरी जगहपर आनेपर मुझे भी इच्छा या अनिच्छासे वही करना होगा। मैं अपने पिता दिवोदासको इसके लिए दोषी नहीं ठहराता।'

'तू राज्यको जनके पास लौटानेके लिए कहता है, क्या यह सम्भव है? तुझे समझना चाहिए पुत्रः! जनके भोगका अपहारक सिर्फ पंचाल-राज दिवोदास ही नहीं है। वह अनेक अपहारक-चोर सामन्तोंमें से एक है। वह बड़ा हो सकता है; किन्तु उनके सम्मिलित बलके सामने पंगु है। अनेक प्रदेश-पति, उग्र-राजपुत्र (राजवंशिक), सेनापतिके अति-रिक्त सबसे भारी सामन्त तो पुरोहित है।'

'हाँ, मैं जानता हूँ पुरोहितकी शक्तिको। राजाके छोटे पुत्र राजपद तो पा नहीं सकते, इसीलिए वह पुरोहित (ब्राह्मण) बन जाते हैं। मै समझता हूँ, मेरा छोटा भाई प्रतर्दन भी वैसा ही करेगा। अभी राजा और पुरोहितमें सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदीका ही अन्तर है; किन्तु क्या जाने, आगे चलकर क्षत्री, ब्राह्मण दो अलग बल दो अलग श्रेणियाँ बन जायँ। मन्द्रगन्धारमें खड्ग और स्रुवा दोनोंको एक ही हाथ सँभाल सकता है; किन्तु पंचालपुरमें स्रुवा विश्वामित्रके हाथमें होगा और खड्ग वध्र्यश्व-पुत्र दिवोदासके हाथमे। जनका बँटवारा तो अभी यहाँ तीन भागोंमे हो चुका है—सामन्तके नाते, जन-भोग-अपहारक होनेके नाते, आवाह-विवाह-सम्बन्धके नाते, माता-पिताके नाते भी चाहे राजा और पुरोहित एक हों; किन्तु दोनोंके नाम—क्षत्रिय, ब्राह्मण—अभी ही अलग-अलग गिने जाने लगे हैं, और दोनोंके स्वार्थोंमें टक्कर

भी लगने लगी है, इसीलिए ब्रह्म-क्षत्र-बलमें मैत्री स्थापित करनेकी भारी कोशिशकी जा रही है। एक कुलके इन दोनों वर्गों के बाहर जनकी भारी सख्या है, यह तीसरा वर्ग है । आज इस महाजनका नाम बदलकर उसे विश् (विट्) या प्रजा रख दिया गया है। कैसी विडम्बना है, जो जन (पिता) था, उसे ही आज प्रजा (पुत्र) कहा जाता है। आर्य ! यह क्या सरासर वचना नहीं है ?'

'और पुत्र ! तूने एक भारी संख्याको नहीं गिना।'

'हाँ, आर्य जनसे भिन्न प्रजा—शिल्पी, व्यापारी, दास-दासी। शायद इन्हींके कारण सामन्त जनको अधिकारसे वञ्चित करनेमे सफल हुए । अपने शासक जनको अपने ही समान किसीके द्वारा परतन्त्र हुआ देख आर्य-भिन्न प्रजाको सन्तोष हुआ । इसे ही राजाने अपना न्याय कहा।'

'शायद, पुत्र ! तू ग़लती नहीं कर रहा है; किन्तु यह तो बताओ, राज्य किसको लौटाया जाय ? चोरों-अपहारकों—सामन्तों और व्यापारियोंको भी ले ले—को छोड़ देनेपर आर्य-जन और अनार्य-प्रजाकी सबसे भारी सख्या है, क्या वे राज्य सँभाल सकते हैं ? और इधर धर्म-सामन्त और राज-सामन्तके गिद्ध मेरे छोड़ते ही प्रजाको नोच खानेके लिए तैयार हैं । कुरु-पचालमें जनके हाथसे राज्य छिने छै ही सात पीढ़ियाँ बीती हैं, इसलिए हम जनके दिनोंको भूले नहीं हैं। उस वक्त इस भूमिको दिवोदासका राज्य नहीं, पचालाः (सारे पंचालवाले) कहते और समझते थे; किन्तु आज तो मुझे वहाँ लौटनेका रास्ता नहीं दीखता।'

'हाँ, रास्तेमें ये वशिष्ट, विश्वामित्र-जैसे ग्राह जो बैठे हुए हैं ?'

'इसे हमारी परवशता समझ, हम कालको पलट नहीं सकते, और कल कहाँ पहुँचेंगे, इसका भी हमें पता नहीं। मुझे इससे सन्तोष है कि मुझे सुदास् जैसा पुत्र मिला है। मैं भी किसी वक्त तरुण था। अभी उस वक्त तक वशिष्ट और विश्वामित्रकी कविताओं, उनके प्रजाकी

मतिको हरनेवाले धर्मों-कर्मों का मायाजाल इतना नहीं फैला था। मैं सोचता था, राजाकी इस दस्युवृत्तिको कम करूँ; किन्तु वैसा करनेमें अपनेको असमर्थ पाया। उस वक्त मेरे लिए तेरी माँ ही सब कुछ थी; किन्तु पीछे जब मैं भग्न-मनोरथ, निराश हो गया, तो इन पुरोहितोंने अपनी कविताओंके ही नहीं, कन्याओंके फंदेमे मुझे फँसाया; इन्द्राणीकी दासियोंकी उपमा दे सैकड़ों दासियोंसे रनिवास भर दिया। दिवोदासके पतनसे शिक्षा ले तू सजग रहना, प्रयत्न करना, शायद कोई रास्ता निकल आय और दस्युवृत्ति हट जाय। किन्तु सुदास्-जैसे सहृदय दस्युको हटाकर प्रतर्दन-जैसे हृदयहीन वंचक दस्युके हाथमें पचालको दे देना अच्छा न होगा। मैं पितृलोकसे देखता रहूँगा तेरे प्रयत्नको और बड़े सन्तोषके साथ, पुत्र!'

(४)

दिवोदास देवलोकको चला गया। सुदास् अब पचालोंका राजा हुआ था। ऋषि-मडली अब उसके गिर्द मँडराती थी। सुदास्को अब पता लगा कि इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोमके नामसे इन सफेद दाढ़ियोंने लोगोंको कितना अन्धा बनाया है। उनके कठोर फदेमे सुदास् अपनेको जकड़ा पाता था। जिनके लिए वह कुछ करना चाहता था, वह उसके भावको उलटा समझनेके लिए, उसे अधार्मिक राजा घोषित करनेके लिए तैयार थे। सुदास्को वह दिन याद आ रहे थे, जब कि वह नगे पैर फटे कपड़ोंके साथ अज्ञात देशोंमें घूमता था। उस वक्त वह अधिक मुक्त था। सुदास्की हार्दिक व्यथाको समझनेवाला, उससे सहानुभूति रखनेवाला वहाँ एक भी आदमी न था। पुरोहित—ऋषि—उसके पास अपनी तरुण पोतियों, पर-पोतियोंको भेजते थे और राजन्य—प्रादेशिक सामन्त—अपनी कुमारियोंको; किन्तु सुदास् अपनेको आग लगे घरमे बैठा पाता था। वह चन्द्रभागाके तीर प्रतीक्षा करती उन नीली आँखोंको भूल नहीं सकता था।

सुदास्ने सारे जन—आर्य-अनार्य दोनों—की सेवा करने की

ठानी थी; किन्तु इसके लिये देवताओंकी दलदलमे आपाद-निमग्न जन को पहले यह विश्वास दिलाना था कि सुदास्पर देवताओं की कृपा है। और कृपा है, इसका सबूत इसके सिवाय कोई न था कि ऋषि—ब्राह्मण—उसकी प्रशंसा करें। अन्त मे ऋषियोंकी प्रशंसा पानेके लिए उसे हिरण्य-सुवर्ण, पशु-धान्य, दास-दासी दान देनेके सिवाय कोई रास्ता नहीं सूझा। पीवर गोवत्सके मास और मधुर सोमरससे तोंद फुलाए इन ऋषियोंकी रायमें वह वस्तुतः अब सुदास् (बहुत दान देनेवाला) हुआ। इन चाटुकार ऋषियोंकी बनाई सुदास्की 'दान स्तुतियों' में कितनी ही अब भी ऋग्वेदमें मौजूद हैं; किन्तु यह किसको पता है कि सुदास् इन दान-स्तुतियोंको सुनकर उनके बनानेवाले कवियों-को कितनी घृणाकी दृष्टिसे देखता था।

सुदास्का यशोगान सारे उत्तर-पंचाल (रुहेलखंड)में ही नहीं, दूर-दूर तक होने लगा था। अपने भोग-शून्य जीवन से वह जो कुछ हो सकता था, विश्व-जनका हित करता था।

पिताके कितने ही साल बाद सुदास्की माँ मरी। वर्षोंसे जो घाव साधारण तौर से बहते रहनेके कारण अभ्यस्तसा हो गया था, अब जान पड़ा, उसने भारी विस्फोटका रूप धारण कर लिया है। उसे मालूम होता था, अपाला हर क्षण उसके सामने खड़ी है और अश्रु-पूर्ण नेत्रों, कम्पित अधरोंसे कह रही है—'मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।' उस व्यथाकी आगको सुदास् आँसुओंसे बुझा नहीं सकता था।

हिमवान्मे शिकार करनेका बहानाकर सुदास् एक दिन पंचालपुर (अहिच्छत्र)से निकल पड़ा।

मद्रपुर (स्यालकोट)मे वह घर मौजूद था, जहाँ उसे अपालाका प्रेम प्राप्त हुआ था; किंतु न अब वहाँ जेता था, न उसकी प्रिया अपाला। दोनो मर चुके थे, अपाला एक ही साल पहले। उस घरमें अपालाका लुप्त-पुनः प्राप्त भाई और उसका परिवार रहता था। सुदास्

को साहस नहीं हुआ कि उस घरसे और स्नेह बढ़ाए। अपालाकी एक सखीसे वह मिला। उसने अपालाके उन रंगीन नए वस्त्रों—अन्तर-वासक, उत्तरीय (चादर) कंचुक और उष्णीष—को सामने रख आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"मेरी सखीने इन वस्त्रोंको अन्तिम समय में पहना था और उसके ओठों पर अन्तिम शब्द थे : "मैंने सुदास्को वचन दिया है, बहन, कि मैं तेरे लिए मद्रपुर में प्रतीक्षा करूँगी।' "

सुदास्ने उन कपड़ोंको उठाकर अपनी छाती और आँखोंसे लगाया। उनसे अपालाके शरीरकी सुगन्धि आ रही थी।*

---

*यह आजसे १४४ पीढ़ी पहलेके आर्य-जनकी कहानी है। इसी समय पुरातनतम ऋषि वशिष्ट, विश्वामित्र, भारद्वाज ऋग्वेदके मन्त्रोंकी रचना कर रहे थे, इसी समय आर्य-पुरोहितोंकी सहायतासे कुरु-पंचालके आर्य-समान्तोंने जनताके अधिकारपर अन्तिम और सबसे ज़बर्दस्त प्रहार किया।

८—प्रवाहण

स्थान—पंचाल (युक्त-प्रांत)। काल—७०० ई० पू०।

'एक ओर हरा-हरा वन, उसमे फले करौंदोंका मादक गंध पक्षियोंका मधुर कूजन; दूसरी ओर बहती गंगाकी निर्मल धारा, उसकी कछारमे चरती हमारी हज़ारो कपिला-श्यामा गाएँ, जिनके बीच हुँकरते विशाल बलिष्ट वृषभ—कभी इन दृश्यांसे भी आँखोंको तृप्त करना चाहिए, प्रवाहण! तू तो सदा कभी उद्‌गीथ (साम)के गानेमे लगा रहता है और कभी वशिष्ठ तथा विश्वामित्रके मन्त्रोंकी आवृत्तिमे।'

'लोपा, तेरी आँखे वह दृश्य देखती हैं और मैं तेरी आँखोंको देख कर तृप्त हो जाता हूँ।'

'हुम्, तू बात बनानेमें भी चतुर है, यद्यपि जिस वक्त तुझे उन पुराने गानोंको श्वान-स्वरमे अपने सहपाठियोंके साथ दोहराते देखती हूँ, तो समझती हूँ कि मेरा प्रवाहण ज़िन्दगी भर स्तनपायी बच्चा ही रहेगा।'

'सचमुच, प्रवाहणके बारेमे तेरी यही सम्मति है, लोपा?'

'सम्मति कुछ भी हो; किन्तु उसके साथ एक पक्की सम्मति है कि प्रवाहण सदाके लिए मेरा है।'

'इसी आशा और विश्वाससे, लोपा, मुझे श्रम और विद्या अर्जन करनेमें शक्ति मिलती है। मैं अपने मनपर ज़बर्दस्त संयम करनेमे अभ्यस्त हूँ, नही तो कितनी ही बार मेरा मन इन पुरानी गाथाओं, पुराने मन्त्रों और पुराने उद्‌गीथोंको रटनेसे भाग निकलना चाहता है। जिस वक्त परिश्रमसे वह थक जाता है और सब-कुछ छोड़ बैठना चाहता है, उस वक्त मुझे और कोई दवा नहीं सूझती, सिवा इसके कि लोपाके साथ बितानेके लिए कुछ क्षण मिले।'

'और मै उसके लिए सदा तैयार रहती हूँ।'

लोपाकी पिंगल आँखें कही दूर देख रही थीं। उसके पिंगल कोमल केशोंको प्रातःसमीर कम्पित कर रहा था। जान पड़ता था, लोपा वहाँ नहीं है। प्रवाहणने लोपाके केशोंको अंगुलियोंसे स्पर्श करते हुए कहा—'लोपा, तेरे सामने मै अपनेको खर्व समझता हूँ।'

'खर्व! नहीं, मेरे प्रवाहण'—उसे अपने कपोलसे लगाते हुए लोपाने कहा—मैं तुझपर अभिमान करती हूँ। मुझे वह दिन याद है, जब मैंने बुआके साथ आए आठ वर्षके उस शिशुको अपने शिशुतर नेत्रोंसे देखा था। मैं उस वक्त तीन या चार वर्षकी थी; किन्तु मेरी स्मृति उस बाल-चित्रको अंकित करनेमे ग़लती नहीं कर रही। मुझे वह पीत कुंचित केश, वह शुक-सी नासा, वह पतले लाल अधर, वह चमकीली नीली बड़ी-बडी आँखें, वह तप्त सुवर्ण गात्र याद है, और यह भी याद है, माँने मुझसे कहा—पुत्री लोपा, यह तेरा भाई है। मै लजा गई थी; किन्तु माँने तेरे मुँहको चूमकर कहा—पुत्र प्रवाहण, यह तेरी मातुल-पुत्री लोपा लजाती है, इसकी लाज हटा।'

'और मै तेरे पास गया। तूने मामीके सुगन्धित तरुण केशोंके पीछे मुँह छिपा लिया।'

'किन्तु छिपाते वक्त मैंने आँखोंके लिए रास्ता खोल रखा था। मैं देख रही थी, तू क्या करता है। सिर्फ माँकी गोद, दासियों या दासियों के बच्चोंके सिवा वहाँ कोई न था। पिताका आचार्य-कुल अभी जन्मा न था। मैं इस घरमें अपनेको अकेली समझती थी, इसलिए तुझे देखकर मुझे मन ही मन आनन्द हुआ।'

'खेलनेके लिए; और तभी तू मुझसे छिप गई थी। मैंने तेरे नंगे श्वेत शरीर और गोल गोल चेहरेको देखा। मेरे शिशु-नेत्रोंको वह अच्छा मालूम हुआ। मैंने पास जाकर तेरे कन्धेपर हाथ रखा। तुझे ख़याल है; माँ और मामीने क्या किया? दोनों मुस्कराईं और बोलीं—ब्रह्मा हमारी साध पूरी करे। मुझे उस वक्त साधका अर्थ नहीं मालूम हुआ।'

'मुझे याद नहीं, प्रवाहण ! मेरे लिए इतना ही याद आना बहुत है कि मैने तेरे कोमल हाथका स्पर्श अपने कन्धेपर अनुभव किया ।'

'और तू सकोचके मारे गोल-मटोल हो गई ।'

'तूने मेरे हाथको अपने हाथोंमें लिया; किन्तु तेरे ओठ सिले-से रहे, तब माँने क्या कहा ?'

'मामीकी एक-एक बात मुझे याद है । मामीको क्या भूल सकता हूं ? माँ मुझे गार्ग्य मामाके पास छोड़कर घर लौट गई; किन्तु मामीके प्रेमने मुझे माँको भुला दिया । मामीको मै कैसे भूल सकता हूं ?' प्रवाहणके नेत्रोंमे आँसू भर आए । उसने लोपाके ओठोंको चूमकर कहा—'मामीका मुँह ऐसा ही था, लोपा ! हम दोनों साथ सोए रहते । तेरी तो नहीं, मेरी आँखे कितनी ही बार खुली रहतीं; किन्तु जब मैं मामीको आते देखता, तो आँखोंको बन्द कर लेता । फिर मन्द निःश्वासके साथ उनके ओठोंके स्पर्शको अपने गालोंपर पाता । मैं आँखे खोल देता । मामी बोलतीं—वत्स, जागो ! फिर वह तेरे मुँहको चूमती; किन्तु तू बेसुध सोती रहती ?'

लोपाकी आँखोंमे भी आँसू थे । उसने उदास होकर कहा—'माँको मैं इतना कम देख सकी !'

'हाँ, तो उस समय मुझे तेरे पास मूक खड़ा देख मामीने कहा—यह तेरी बहन है, वत्स ! इसके ओठोंको चूम और कह कि आ, घोड़ा-घोड़ा खेलें ।'

'हाँ, तो तूने मेरे ओठोंको चूमा और फिर घोड़ा-घोड़ा खेलनेके लिए कहा । मैंने माँके केशोंसे अपने मुँहको बाहर किया । तू वहाँ घोड़ा बन गया । मैं तेरी पीठपर चढ़ गई ।'

'और मैं उसी वक्त तुझे बाहर ले गया ।'

'मैं कितनी धृष्ट थी !'

'तू सदा निडर थी, लोपा ! और मेरे लिए तो तू सब कुछ थी ।

मामाके डरसे मैं अपना पाठ याद करनेमें लगा रहता और जब थक जाता, तो तेरे पास आ जाता।'

'और तेरे ही लिए मैं भी तेरे पास बैठने लगी।'

'और मैं समझता हूँ, लोपा, यदि तू मुझसे आधा भी परिश्रम करती, तो मामाके अन्तेवासियोंमें सबसे आगे बढ़ जाती।'

'लेकिन तुझसे नहीं' लोपाने प्रवाहणकी आँखोंको एक बार खूब ग़ौरसे देखकर कहा—'मै तुझसे आगे बढ़ना नही चाहती।'

'किन्तु मुझे प्रसन्नता होती।'

'क्योंकि हम दोनोंमे अलग अपनापन नहीं है।'

लोपा, तूने मेरे मनमें उत्साह ही नहीं शरीरमें बल भी दिया। मैं रातको कितना कम सोता था! फिर स्वयं रटने और दूसरोंको रटानेमें खाना-पीना तक भूल जाता था। तू मुझे स्वाध्याय-गृहके अँधेरेसे निकालकर ज़बर्दस्ती कभी वन कभी उद्यान और कभी गंगाकी धारामें ले जाती। मुझे ये चीज़ें अच्छी लगती हैं, लोपा! किन्तु साथ ही मैं चाहता हूं तीनों वेदों और ब्राह्मणोंकी सारी विद्याओंको शीघ्र-से-शीघ्र समाप्त कर डालूँ।'

'किन्तु अब तो तू समाप्तिपर पहुँच चुका है। पिता कहते हैं कि प्रवाहण मेरे समान है।'

'यह मैं भी समझता हूँ। ब्राह्मणोंकी विद्या पढ़नेको अब बहुत कम रह गई है· किन्तु विद्या ब्राह्मणों ही तक समाप्त नहीं हो जाती।'

'यही मैं तुझसे कहनेवाली थी। किन्तु क्या अभी यह तेरा पलाश-दण्ड और रूखाकेश चलता ही रहेगा?'

'नहीं इसकी चिन्ता मत कर, लोपा! पलाशदण्ड अब छूटनेवाला है। और सोलह सालके इन रूखे केशोंमे तू सुगन्धित तेल डालनेको स्वतन्त्र होगी।'

'प्रवाहण, मेरी समझमें यह नहीं आता कि रूखे केशोंके लिए इतना ज़ोर क्यों? तूने तो मेरे इन ओठोंका चूमना कभी छोड़ा नहीं।'

'क्योंकि वह बचपनसे लगी आदत थी।'

'तो क्या दूसरे आचार्य-कुलोंके अन्तेवासी इन कठोर व्रतोंका पालन करते हैं?'

'मजबूरी होनेपर, नहीं तो, लोपा, यह सब मान-प्रतिष्ठाके लिए किया जाता है! लोग इसे ब्राह्मण-कुमारोंकी कठिन तपस्या समझते हैं।'

'और फिर कुरुराज पिताको गाँव, हिरण्य-सुवर्ण, दास-दासी और बड़वा (घोड़ी)-रथ देते हैं। मेरे घरमें पहले ही से दासियाँ काफ़ी थीं। अब जो हालमें कुरुराजने तीन और भेजी हैं उनके लिए यहाँ काम ही नहीं है।'

'बेच दे, लोपा! तरुणी हैं, एक-एकके तीस तीस निष्क (अशर्फ़ियाँ) मिल जायँगे।'

'अफ़सोस! हम ब्राह्मण हैं। हम दूसरोंसे ज़्यादा पठित और ज्ञानी भी होते हैं, क्योंकि हमें उसके लिए सुभीता है। किन्तु जब मैं इन दासोंके जीवनको देखती हूँ, तो मुझे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण सारे अपने देवताओं, वशिष्ठ, भरद्वाज, भृगु, अंगिरा सारे ऋषियों और अपने पिता-जैसे आजके सारे श्रोत्रिय ब्राह्मण महाशालों (महाधनियों) से घृणा हो जाती है। सभी जगह व्यापार, सौदा, लाभ, लोभ आदि दिखलाई पड़ते हैं। उस दिन काली दासीके पतिको पिताने कोसलके उस बनिएके हाथ पचास निष्कमें बेच डाला। काली मेरे पास रोती-गिड़गिड़ाती रही। मैंने पितासे बहुत कहा; किन्तु उन्होंने कहा—सारे दासोंको घरमें रख छोड़नेसे जगह नहीं रहेगी, और यदि रख ही छोड़ा जाय, तो वह धन काहेका? विदाईके दिनकी पहली रात दोनों कितना रोते रहे! और उनकी वह छोटी दो वर्षकी बच्ची—जिसका चेहरा, सभी कहते हैं, पितासे मिलता है—सवेरेके वक्त उठकर कितना चिल्ला रही थी! लेकिन कालीका पति बेच दिया गया। जैसे वह आदमी नहीं, पशु था; ब्रह्माने गोया उसे और उसकी सैकड़ों पीढ़ियोंको इसीलिए बनाया है। यह मैं नहीं मान सकती, प्रवाहण! तेरे जितना मैंने तीनों

वेदोंको याद नहीं किया है; किन्तु उनको समझते हुए मैने सबसे सुना है। वहाँ सिर्फ आँखोंको न दिखलाई देनेवाली वस्तुओं, लोकों और शक्तियों का प्रलोभन या भय-मात्र दिखलाया गया है।

प्रवाहणने लोपाके आरक्त कपोलोंको अपनी आँखोंमे लगाकर कहा—'हमारा प्रेम मतभेद रखने हीके लिए हुआ है।'

'और मतभेद हमारे प्रेमको और पुष्ट करता है।'

'ठीक कहा, लोपा ! यदि इन्ही बातोंको कोई दूसरा कहता, तो मैं कितना गरम हो जाता, किन्तु यहाँ जब तेरे इन अधरोंसे अपने सारे देवताओं, ऋषियों और आचार्यों के ऊपर प्रखर बाण छोड़े जाते देखता हूँ, तो बार-बार इन्हें चूमनेकी इच्छा होती है। क्यों ?'

'क्योंकि हमारे अपने भीतर भी दो तरहके विचारोंके द्वन्द्व अक्सर चलते रहते हैं, और हम उनके प्रति सहिष्णुता रखते हैं, इसीलिए कि वह हमारे अभिन्न अंग हैं।'

'तू भी मेरा अभिन्न अग है, लोपा !'

(२)

'तूने शिविके इन दुशालोंको कभी नहीं ओढ़ा और काशीके चन्दन तथा सागरके मोतियोंसे अपनेको कभी नहीं विभूषित किया। प्रिये, इनसे इतनी उदसीनता क्यों ?'

'क्या मैं इनमे ज़्यादा सुन्दर लगूँगी ?'

'मेरे लिए तू सदा सुन्दर है।'

'फिर इन बोझोंको लादकर शरीरको साँसत देनेसे लाभ क्या ? सच कहती हूँ, प्रिय, मुझे बड़ा बुरा लगता है, जब तू उस भारी बोझको अपने सरपर मुकुटके नामसे उठता है।

'किन्तु दूसरी स्त्रियाँ तो वस्त्र-आभूषणके लिए मार करती हैं।'

'मैं वैसी स्त्री नही हूँ।'

'तू पचाल-राजके हृदयपर शासन करनेवाली स्त्री है।'

'प्रवाहणकी स्त्री हूँ, पंचालोंकी रानी नहीं।'

'हाँ, प्रिये! हमने कब इस दिनकी कल्पनाकी थी। मामाने हमसे बिल्कुल छिपा रखा था कि मैं पंचाल-राजका पुत्र हूँ।'

'उस वक्त पिता और क्या करते? पंचाल-राजकी सैकड़ों रानियोंमें एक मेरी बुआ भी थीं, और पंचाल-राजके दस पुत्र तुझसे बड़े थे, इसलिए कौन आशा रख सकता था कि तू एक दिन पंचालोंके राज-सिंहासनका अधिकारी होगा?'

'अच्छा, किन्तु तुझे यह राज-भवन क्यों नहीं पसन्द आता लोपा?

'क्योंकि मैं गार्ग्य ब्राह्मण महाशालके प्रासादसे ही तंग आ गई थी। हमारे लिए वह प्रासाद था; किन्तु वहाँके दास-दासियोंके लिए? और यह राज-प्रासाद तो उस महाशालके प्रासादसे हजारगुना बढ़-चढ़कर है। यहाँ मुझे और तुझे छोड़कर सारे दास-दासी हैं। दो अ-दासोंके कारण दासोंसे भरा यह भवन अ-दास-भवन नहीं हो सकता। किन्तु मुझे आश्चर्य होता है, प्रवाहण, तेरा हृदय कितना कठोर है!'

'तभी तो वह कठोर वाग्बाणोंको सह सकता है।'

'नहीं, मानवको ऐसा नहीं होना चाहिए।'

'मैंने मानव बननेकी नहीं, योग्य बननेकी कोशिशकी, प्रिये! यद्यपि उस योग्यता-अर्जनके समय मुझे कभी यह ख़याल न आया था कि एक दिन मुझे इस राज-भवनमें आना होगा।'

'तू पछताता तो नहीं, प्रवाहण, मेरे साथ प्रेम करके?'

'मैंने तेरे प्रेमको मातृ-क्षीरकी तरह अप्रयास पाया था, प्रिये! और वह अपनेपनका अंग बन गया। मैं संसारी पुरुष हूँ, लोपा! किन्तु मैं तेरे प्रेमके मूल्यको समझता हूँ। मनका प्रवाह सदा एक सा नहीं रहता। जब कभी मनमें अवसाद आता है, तो मेरे लिए जीवन दुर्लभ हो जाता है। उस वक्त तेरा प्रेम और तेरे सुविचार मुझे हस्तावलम्ब देते हैं।'

'किन्तु मैं जितना अवलम्ब देना चाहती हूँ, उतना नहीं दे सकती, प्रवाहण! इसका मुझे अफ़सोस है।'

'क्योंकि मैं राज्य करनेके लिए पैदा किया गया हूँ।'

'लेकिन कभी तू महाब्राह्मण बननेकी धुनमे था।'

'उस वक्त मुझे पता न था कि मै पंचालपुर (कन्नौज) के राज-भवनका अधिकारी हूँ।'

'किन्तु राज-काजसे बाहर जो तू हाथ डाल रहा है, इसकी क्या आवश्यकता?'

'अर्थात् ब्रह्मासे आगे ब्रह्म तककी उड़ान! किन्तु लोपा, यह राज-काजसे अलग चीज़ नहीं है। राज्यको अवलम्ब देने हीके लिए हमारे पूर्वज राजाओंने वशिष्ठ और विश्वामित्रको उतना सम्मानित किया था। वह ऋषि, इन्द्र, अग्नि और वरुणके नामपर लोगोंको राजाकी आज्ञा मानने के लिए प्रेरित करते थे। उस समयके राजा जनतामें विश्वास-सपादनके लिए इन देवताओंके नामपर बड़े-बड़े ख़र्चीले यज्ञ करते थे। आज भी हम यज्ञ करते हैं और ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देते हैं। यह इसलिए कि जनता देवताओंकी दिव्य शक्तिपर विश्वास करे और यह भी समझे कि हम जो यह गन्धशालीका भात, गो-वत्सका मधुर मांस-सूप, सूक्ष्म वस्त्र और मणि-मुक्तामय आभूषणका उपयोग करते हैं, वह सब देवताओंकी कृपासे है।'

'तो यह पुराने देवता काफी थे, अब इस नए ब्रह्मकी क्या आवश्यकता थी?'

'पीढ़ियोंसे किसीने इन्द्र, वरुण, ब्रह्माको नहीं देखा। अब कितनोंके मनमें सन्देह होने लगा है।'

'तो ब्रह्मसे क्या सन्देह न होगा?'

'ब्रह्मका स्वरूप मैंने ऐसा बतलाया है कि कोई उसके देखनेकी माँग नहीं पेश करेगा। जो आकाशकी भाँति देखने-सुननेका विषय नहीं; जो यहाँ-वहाँ सर्वत्र है, उसके देखनेका सवाल कैसे उठ सकता है? सवाल तो उन साकार देवताओंके बारेमें उठता था।'

'तू जो आकाश-आकाश कहकर साधारण नहीं, बल्कि उद्दालक

आरुणि-जैसे ब्राह्मणोंको भी भरमा रहा है, क्या यह प्रजाको भ्रममें रखने हीके लिए?'

'लोपा, तू मुझे जानती है, तुझसे मैं क्या छिपा सकता हूँ? इस राज-भोगको हाथमें रखनेके लिए यह ज़रूरी है कि सन्देह पैदा करनेवालोंकी बुद्धिको कुंठितकर दिया जाय, क्योंकि हमारे वास्ते आज सबसे भयंकर शत्रु हैं देवताओं और उनकी यज्ञ-पूजाके प्रति सन्देह पैदा करनेवाले।'

'किन्तु तू ब्रह्मकी सत्ता और उसके दर्शनकी बात भी तो करता है?'

'सत्ता है, तो दर्शन भी होना चाहिए। हाँ, इन्द्रियोंसे नहीं, क्योंकि इन्द्रियोंसे दर्शन होनेकी बात कहनेपर सन्देहवादी फिर उसे दिखलानेके लिए कहेंगे। इसलिए मैं कहता हूँ कि उसके दर्शनके लिए दूसरी ही सूक्ष्म इन्द्रिय है, और उस इन्द्रियको पैदा करनेके लिए मैं ऐसे-ऐसे साधन बतलाता हूँ कि लोग छप्पन पीढ़ी तक भटकते रहें और विश्वास भी न खो सकें। मैंने पुरोहितोंके स्थूल हथियारको बेकार समझकर इस सूक्ष्म हथियारको निकाला है। तूने शबरोंके पास पत्थर और ताँबेके हथियार देखे हैं, लोपा?'

'हाँ, जब मैं तेरे साथ दक्षिणके जंगलोंमें गई थी।'

'हाँ, यमुनाके उस पार। शबरोंके वह पत्थर और ताँबेके हथियार क्या हमारे कृष्ण-लोह (असली लोहे) के इन हथियारोंका मुकाबला कर सकते हैं?'

'नहीं।'

'इसी तरह वशिष्ठ और विश्वामित्रके ये पुराने देवता और यज्ञ शबरों-जितनी बुद्धि रखनेवालोंको ही सन्तुष्टकर सकते हैं, और समझ रखनेवाले इन सन्देहवादियोंकी तीक्ष्ण-बुद्धिके सामने वह कुछ नहीं हैं।'

'उनके सामने तो यह तेरा ब्रह्म भी कुछ नहीं है। तू ब्राह्मण

ज्ञानियोंको शिष्य बना ब्रह्मज्ञान सिखलाता फिरता है, और मैं तेरे घरमें ही तेरी बातको सरासर झूठ-फरेब मानती हूँ।'

'क्योंकि तू असली रहस्य (उपनिषद्) को जानती है।'

'ब्राह्मण समझदार होते, तो क्या तेरे रहस्यको नहीं जान पाते?'

'वह भी तू देखती ही है। कोई-कोई ब्राह्मण रहस्यकी परखकर सकते हैं; किन्तु वह मेरे इस रहस्य-(उपनिषद्) हथियारको अपने लिए बहुत उपयोगी समझते हैं। उनकी पुरोहिती, गुरुआईपर लोगोंको अविश्वास हो चला था। जिसका परिणाम होता उस दक्षिणासे वंचित होना, जिससे उन्हें चढ़नेको वड़वा-रथ, खानेको उत्तम आहार, रहनेको सुन्दर प्रासाद और भोगनेको सुन्दर दासियाँ मिलती हैं।'

'यह तो व्यापार हुआ?'

'व्यापार, और ऐसा व्यापार, जिसमें हानिका भय नहीं। इसलिए उद्दालक-जैसे समझदार ब्राह्मण मेरे पास हाथमें समिधा लेकर शिष्य बनने आते हैं, और मैं ब्राह्मणोंके प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए उपनयन किए बिना—विधिवत् गुरु बने बिना—उन्हें ब्रह्मज्ञान प्रदान करता हूँ।'

'यह बहुत निकृष्ट भावना है, प्रवाहण!'

'मानता हूँ; किन्तु हमारे उद्देश्यके लिए यह सबसे अधिक उपयोगी साधन है। वशिष्ठ और विश्वामित्रकी नावने हजार वर्ष भी काम नहीं दिया; किन्तु जिस नावको प्रवाहण तैयारकर रहा है, वह दो हज़ार वर्ष आगे तक राजाओं और सामन्तों—परधन भोगिया—को पार उतारती रहेगी। यज्ञ-रूपी नावको, लोपा, मैंने अदृढ़ समझा। इसीलिए इस दृढ़ नावको तैयार किया है, जिसे ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर ठीकसे इस्तेमाल करते हुए ऐश्वर्य भोगते रहेंगे। किन्तु, लोपा, इस "आकाश" या ब्रह्मसे भी बढ़कर मेरा दूसरा आविष्कार है।

'कौन?'

'मरकर फिर इसी दुनियामें लौटना—'पुनर्जन्म'।'

'यह सबसे भारी जाल है।'

'और सबसे कार्यकारी भी। जिस परिमाणमें हम सामन्तों, ब्राह्मणों और बनियोंके पास अपार भोग-राशि एकत्रित होती गई है, उसी परिमाणमें साधारण प्रजा निर्धन होती गई। इन निर्धनों—शिल्पियों, कृषकों और दास-दासियों—को भड़कानेवाले पैदा होने लगे हैं, जो कहते हैं—'तुम अपनी कमाई दूसरोंको देकर कष्ट उठाते हो; वह धोखेमें रखनेके लिए तुम्हें झूठे ही विश्वास दिलाते हैं कि तुम इस कष्ट, त्याग, दान करने के लिए मरकर स्वर्गमें जाओगे। किसीने स्वर्ग में मृत-जीवोंके उन भोगोंको देखा नही है। इसीका जवाब है कि यहाँ संसारमें जो नीच-ऊँचके भाव—छोटी-बड़ी जातियों, निर्धन-धनिक आदिके भेद—पाए जाते हैं, वह सब पहले जन्मके कर्मों ही के कारण। हम इस प्रकार पहले के सुकर्म-दुष्कर्मका फल प्रत्यक्ष दिखलाते हैं।'

'ऐसे तो चोर भी अपने चोरीके मालको पूर्वजन्मकी कमाई कह सकता है?'

'किन्तु उसके लिए हमने पहले ही से देवताओं, ऋषियो और जन-विश्वासकी सहायता प्राप्त कर ली है, जिसके कारण चोरीके धनको पूर्वजन्मकी कमाई नहीं माना जायगा। इस जन्ममें परिश्रम बिना अर्जित धनको हम पहले देवताओंकी कृपासे प्राप्त बतलाते थे; किन्तु जब देवताओं और उनकी कृपापर सन्देह किया जाने लगा, तो हमें कोई दूसरा उपाय सोचना ज़रूरी था। ब्राह्मणोंमें यह सोचनेकी शक्ति नही रह गई है। पुराने ऋषियोंके मन्त्रों और वचनोंको रटनेमें ही वह चालीस-पैंतालीसकी आयु बिता देते हैं। वह दूसरी कोई गम्भीर बात कहाँसे सोच निकालेंगे?'

'किन्तु तूने भी तो, प्रवाहण, रटनेमें बहुत सा समय लगाया था?'

'सिर्फ सोलह वर्ष। चौबीस वर्षकी उम्रके बाद मैं ब्राह्मणोंकी विद्याओंको पारकर बाहरके संसारमें आ गया था। यहाँ मुझे ज़्यादा

पढ़नेको मिला। मैंने राज शासनकी बारीकियों में घुसनेके बाद देखा कि ब्राह्मणोंकी बनाई पुरानी नाव आजके लिए अदृढ़ है।

"इसीलिए तूने दृढ़ नाव बनाई?'

'सत्य या असत्यसे मुझे मतलब नहीं, मेरा मतलब है उसके कार्योपयोगी होनेसे। लोपा, संसारमें लौटकर जन्मनेकी बात आज नई मालूम होती है और तुझे उसके भीतर छिपा हुआ स्वार्थ भी मालूम है; किन्तु मेरे ब्राह्मण चेले अभीसे उसे ले उड़े हैं। पितरों और देवताओंके रास्ते (पितृ-यान, देव-यान) को समझनेके लिए अभी ही लोग बारह-बारह साल गाय चरानेको तैयार हैं। लोपा, मैं और तू यहीं रहेंगे; किन्तु वह समय आयगा, जब कि सारी दरिद्र प्रजा इस पुनरागमनके भरोसे सारे जीवनकी कटुता, कष्ट और अन्यायको बर्दाश्त करनेके लिए तैयार हो जायगी। स्वर्ग और नरकको समझानेके लिए यह कैसा सीधा उपाय निकाला, लोपा!'

'लेकिन यह अपने पेटके लिए सैकड़ों पीढ़ियोंको भाड़में झोंकना है।'

'वशिष्ठ और विश्वामित्रने भी पेटके लिए ही वेद रचे, उत्तर-पचाल (रुहेलखण्ड) के राजा दिवोदासके कुछ शवरदुर्गोंकी विजयपर कविता-पर-कविता बनाई। पेटका प्रवन्ध करना बुरा नहीं है, और जब हम अपने पेटके साथ हज़ार वर्षोंके लिए अपने बेटे-पोतों, भाई-बन्धुओंके पेटका भी प्रबन्ध* कर डालते हैं, तो हम शाश्वत यशके भागी होते हैं। प्रवाहण वह काम कर रहा है, जिसे पूर्वज ऋषि भी नहीं कर पाए—जिसे धर्मकी रोटी खानेवाले ब्राह्मण भी नहीं कर सके।"

'तू बड़ा निष्ठुर है, प्रवाहण!'

---

* त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणाकः प्रयच्छता सहसा शूर-दर्षि।
अव गिरेर्दासं शंबरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती।
—ऋग्वेद ६।२६।२५

'किन्तु मैंने अपने कामको योग्यतापूर्वक पूरा किया।'

(३)

प्रवाहण मर चुका था। उसके ब्रह्मवाद, उसके पुनर्जन्म या पितृ-यानवादकी विजय-दुन्दुभी सिन्धुसे सदानीरा (गंडक) के पार तक बज रही थी। यज्ञोंका प्रचार अब भी कम नहीं हुआ था, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी उन्हें करनेमे ख़ास तौरसे उत्साह प्रदर्शन करते थे। क्षत्रिय प्रवाहणके निकाले ब्रह्मवादमें ब्राह्मण बहुत दक्ष हो गए थे, और इसमे कुरुके याज्ञवल्क्यकी बड़ी ख्याति थी। कुरु-पाचालमें—जिसने किसी वक्त मन्त्रोंके कर्त्ता और यज्ञोंके प्रतिष्ठाता वशिष्ठ, विश्वामित्र और भर-द्वाजको पैदा किया था—याज्ञवल्क्य और उसके साथी ब्रह्मवादियों-ब्रह्मवादिनियोंकी धूम थी। ब्रह्मवादियोंकी परिषद् रचानेमें यज्ञोंसे भी ज़्यादा नाम होता था। इसीलिए राजा राजसूय आदि यज्ञोंके साथ या अलग ऐसी परिषदें कराते थे, जिनमें हजारों गाएँ, घोड़े और दास-दासियाँ (दासी ख़ास तौरसे, क्योंकि राजाओंके अन्तःपुरमें पली दासियों को ब्रह्मवादी विशेष तौरसे पसन्द करते थे) वाद-विजेताको पुरस्कारमें मिलते थे।

याज्ञवल्क्य कई परिषदोंमें विजयी हो चुका था। अबकी बार उसने विदेह (तिर्हुत) के जनकी परिषद्मे भारी विजय प्राप्तकी, और उसके शिष्य सोमश्रवाने हज़ार गाएँ घेरी थीं। याज्ञवल्क्य विदेहसे कुरु तक उन गायोंको हाँककर लानेका कष्ट क्यों उठाने लगा? उसने उनको वहीं ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्यकी भारी ख्याति हुई। हाँ, हिरण्य (अशर्फ़ी) सुवर्ण, दास-दासी और अश्वतरी (खच्चरी) रथको वह अपने साथ कई नावोंमें भरकर कुरु-देश लाया।

प्रवाहणको मरे साठ साल हो गए थे। उस वक्त याज्ञवल्क्य अभी पैदा भी नहीं हुआ था। किन्तु सौ वर्षसे ऊपर पहुँची लोपा पंचालपुर (क़न्नौज) के बाहरके राजोद्यानमें अब भी रहती थी। उद्यानके आम्र-कदली-जम्बू वृक्षोंकी छायामें रहना वह बहुत पसन्द करती थी।

जीवनमें प्रवाहणकी बातोंका वह बराबर विरोध किया करती थी; किन्तु अब इन साठ वर्षोंमें प्रवाहणके दोषोंको वह भूल चुकी थी। उसे याद था केवल प्रवाहणका वह जीवन-भरका प्रेम। अबभी वृद्धाकी आँखोंमे ज्योति थी, अब भी उसकी प्रतिभा बहुत धूमिल नहीं हुई थी; किन्तु ब्रह्मवादियोंसे वह अब भी बहुत चिढ़ती थी। उस दिन पंचालपुरमे ब्रह्मवादिनी गार्गी वाचकवी उतरी। राजोद्यानके पास ही एक उद्यानमें गार्गी को बड़े सम्मानके साथ उतारा गया। जनककी परिषद्मे याज्ञवल्क्यने जिस तरह धोखेसे उसे परास्त किया था, गार्गी उसे भूल नहीं सकती थी। 'तेरा सिर गिर जायगा, गार्गी, यदि आगे प्रश्न किया तो'—यह कोई वादका ढग न था। ऐसा उग्र-लोहितपाणि (खूनसे हाथ रँगनेवाले) ही कर सकते हैं, गार्गी सोचती थी।

गार्गी लोपाके पितृ-कुलकी कन्या थी। लोपा उससे सुपरिचित थी, यद्यपि ब्रह्मवादके सम्बन्धमे वह उससे बिल्कुल असहमत थी। अबकी बार याज्ञवल्क्यने जिस तरहका ओछा हथियार उसके खिलाफ इस्तेमाल किया था, उससे गार्गी जल गई थी। इसलिए जब अपनी परदादी बुआके पास गई, तो उसके भावोंमे ज़रूर कुछ परिवर्तन था। लोपाने पास आई गार्गीके ललाट और आँखोको चूमकर छातीसे लगाया और फिर स्वास्थ्य-प्रसन्नताके बारेमे पूछा। गार्गीने कहा—'मैं विदेहसे आ रही हूँ, बुआ!'

'मल्लयुद्ध करने गई थी, गार्गी बेटी!'

'हाँ, मल्लयुद्ध ही हुआ, बुआ! यह ब्रह्मवादियोंकी परिषदे मल्लयुद्धसे बढकर कुछ नहीं हैं। मल्लोंकी भाँति ही इनमे प्रतिद्वन्द्वीको छल-बलसे पछाड़नेकी नीयत होती है।

'तो कुरु-पचाल के बहुत-से ब्रह्मवादी अखाड़ेमें उतरे होंगे?'

'कुरु-पंचाल तो अब ब्रह्मवादियोंका गढ हो गया है।'

'मेरे सामने ही इस ब्रह्मवादकी एक छोटी-सी चिनगारी—सो भी

अच्छी नीयतसे नहीं—मेरे प्रवाहणने छोड़ी थी, और वह वनकी आग बन सारे कुरु-पंचालको जलाकर अब विदेह तक पहुँच रही है।'

'बुआ, तेरी बातकी सचाईको अब मैं कुछ-कुछ अनुभव करने लगी हूँ। वस्तुतः यह भोग-अर्जनका एक बड़ा रास्ता है। विदेहमें याज्ञवल्क्यको लाखोंकी सम्पत्ति मिली और दूसरे ब्राह्मणोंको भी काफ़ी धन मिला।'

'यह यज्ञसे भी ज़्यादा नफ़ेका व्यापार है, बेटी! मेरा पति इसे राजाओं और ब्राह्मणोंके लिए भोग-प्राप्तिकी दृढ़ नौका कहा करता था। तो याज्ञवल्क्य जनककी परिषद्में विजयी रहा। और तू कुछ बोली या नहीं?'

'बोलना न होता, तो इतनी दूर तक गंगामें नाव दौड़ानेकी क्या ज़रूरत थी?'

'नावमें चोर-डाकू तो नहीं लगे?'

'नहीं, बुआ! व्यापारियोंके बड़े-बड़े सार्थों (कारवाँ) में भटोंका प्रबन्ध रहता है। हम ब्रह्मवादी इतने मूर्ख नहीं हैं कि अकेले-दुकेले अपने प्राणोंको संकटमें डालते फिरें।'

'और याज्ञवल्क्यने सबको परास्त कर दिया?'

'उसे परास्त करना ही न कहना चाहिए।'

'सो क्यों?'

'क्योंकि प्रश्नकर्त्ता याज्ञवल्क्यका उत्तर सुन चुप रह गए?'

'तू भी?'

'मैं भी; किन्तु मुझे उसने वादसे नहीं, बकवादसे चुप कर दिया।'

'बकवादसे?'

'हाँ, मै ब्रह्मके बारेमें प्रश्न कर रही थी, और याज्ञवल्क्यको इतना घेर लिया था कि उसको निकलनेका रास्ता न था। इसी वक्त याज्ञवल्क्यने ऐसी बात कही, जिसके सुननेकी मुझे आशा न थी।'

'क्या बेटी!'

'उसने यह कहकर प्रश्नका उत्तर माँगनेसे मुझे रोक दिया—तेरा सिर गिर जायगा, गार्गी, यदि आगे प्रश्न किया तो !'

'तुझे आशा न थी, बेटी ! किन्तु मुझे सब आशा हो सकती थी। गार्गी, याज्ञवल्क्य प्रवाहणका पक्का शिष्य सिद्ध हुआ। प्रवाहणके मिथ्यावादको इसने पूर्णताको पहुँचाया। अच्छा हुआ गार्गी जो तूने आगे प्रश्न नहीं किया।'

'तुझे कैसे मालूम हुआ, बुआ !'

'इसीसे कि मै अपनी आँखोंसे तेरे सिरको कन्धेपर देख रही हूँ।'

'तो क्या तुझे विश्वास है, बुआ, यदि मैं आगे प्रश्न करती, तो मेरा सिर गिर जाता ?'

'ज़रूर ! किन्तु याज्ञवल्क्यके ब्रह्म-बलसे नहीं, बल्कि वैसे ही, जैसे औरोंके सिर गिरते देखे जाते हैं।'

'नहीं, बुआ !'

'तू बच्ची है, गार्गी ! तू जानती है कि यह ब्रह्मवाद सिर्फ मनकी उड़ान, मनकी कलाबाजी है। नहीं गार्गी, इसके पीछे राजाओं और ब्राह्मणोंका भारी स्वार्थ छिपा हुआ है। जिस क्षण यह ब्रह्मवाद पैदा हुआ था, उस समय इसका जन्मदाता मेरी बग़लमें सोता था। यह राज-सत्ता और ब्राह्मण-सत्ताको दृढ़ करनेका भारी साधन है—वैसे ही जैसे कृष्ण-लौह (लोहे)का खंग, जैसे उग्र लोहितपाणि भट।'

'बुआ, मैंने ऐसा नहीं समझा था।'

'बहुत-से ऐसा नही समझते ! मै नहीं समझती। जनक वैदेह भी इस रहस्य (उपनिषद्) को नही समझता होगा। किन्तु याज्ञवल्क्य समझता है—वैसे ही, जैसे मेरा पति प्रवाहण समझता था। प्रवाहणको किसी देवता, देवलोक, पितृलोक, यक्ष और ब्रह्मवादमे विश्वास नहीं था। उसे विश्वास था सिर्फ भोगमे, और उसने अपने जीवनके एक-एक क्षणको उस भोगके लिए अर्पण किया। मरनेके दिनसे तीन दिन पहले विश्वामित्र-कुलीन पुरोहितकी सुवर्णकेशी कन्या उसके रनिवासमे आई।

बचनेकी आशा न थी, तो भी वह उस बीस वर्षकी सुन्दरीसे प्रेम करता रहा।'

'गायोंको दानकर विदेहराजकी दी हुई सुन्दर दासियोंको याज्ञवल्क्य अपने साथ लाया है बुआ!'

'मैंने अभी कहा न कि वह प्रवाहणका पक्का चेला है। देखा न उसका ब्रह्मवाद? और यह तो तूने दूरसे देखा। यदि कहीं तुझे नज़दीकसे देखनेका मौक़ा मिलता, तो देखती बेटी!'

'तो बुआ, तू सचमुच समझती है कि यदि मैं आगे प्रश्न करती, तो मेरा सिर गिर जाता?'

'निस्सन्देह; किन्तु याज्ञवल्क्यके ब्रह्म-तेजसे नहीं, बेटी। दुनियामें कितनोंके सिर चुपचाप गिरा दिए जाते हैं।'

'मेरा सिर चकराता है, बुआ!'

'आज? और मेरा सिर तबसे चकराता है, जबसे मैंने होश सँभाला। सारा ढोंग, पूरी वंचना! प्रजाकी मशक्क़तकी कमाईको मुफ़्तमें खानेका तरीक़ा है यह राजवाद, ब्राह्मणवाद, यज्ञवाद। प्रजाको कोई इस जालसे तब तक नहीं बचा सकता, जब तक कि वह खुद सचेत न हो, और उसे सचेत होने देना इन स्वार्थियोंको पसन्द नहीं है।'

'क्या मानव-हृदय हमें इस वचनासे घृणा करनेकी प्रेरणा नहीं देगा?'

'देगा बेटी, और मुझे एकमात्र उसीकी आशा है।'*

---

* आजसे १०८ पीढ़ी पहलेकी यह कहानी है, जब कि ऊपरी अन्तर्वेदमें उपनिषद्‌के ब्रह्मज्ञानकी रचना प्रारम्भ हुई थी। उस वक्त तक उद्यान और असली लोहा भारतमें प्रचलित हो चुका था।

६—बंधुल मल्ल

(४९० ई० पू०)

(१)

वसन्तका यौवन था। वृक्षोंके पत्ते झड़कर नये हो गये थे। शाल अपने श्वेत पुष्पोंसे वनको सुगंधितकर रहा था। अभी सूर्यकी किरणोंके प्रखर होनेमें देर थी। गहन शालवनमें सूखे पत्तोंपर मानवोंके चलनेकी पद-ध्वनि आ रही थी। एक बड़े वल्मीक (दीमकके टीले)के पास खड़े हुये दो तरुण तरुणी उसे निहार रहे थे। तरुणीके अरुण गौर मुख पर दीर्घ कुंचित नीलकेश बेपरवाहीके साथ बिखरकर उसके सौंदर्यकी वृद्धि कर रहे थे। तरुणने अपनी सबल भुजाको तरुणीके कंधेपर रख कर कहा—

"मल्लिका इस वल्मीकको देखने में इतनी तन्मय क्यों है?"

"देख, यह दो पोरिसाका है।"

"हाँ, साधारण वल्मीकोंमे बड़ा है, किन्तु इससे भी बड़े वल्मीक होते हैं। तुझे ख्याल आता होगा, क्या सचमुच वर्षा बरसनेपर इससे आग और धुआँ निकलता है।"

"नहीं, वह शायद झूठी दंतकथा है; किन्तु यह चींटी जैसे छोटे छोटे और उससे कहीं कोमल रक्तमुख श्वेत कीट कैसे इतने बड़े वल्मीकको बना लेते हैं!"

"मनुष्यके बनाये महलोंको यदि उसके शरीरसे नापा जाय, तो वह इसी तरह कई गुना बड़े मालूम होंगे। यह एक दीमकका काम नहीं है, शत-सहस्र दीमकोंने मिलकर इसे बनाया है। मानव भी इसी तरह मिलकर अपने-कामोंको करता है।"

"इसलिये मै भी उत्सुकतापूर्वक इसे देख रही थी, इनमें आपसमें

कितना मेल है। यह अति क्षुद्र प्राणी समझे जाते हैं, और शत-सहस्र मिलकर एक साथ रह, इतने बड़े बड़े प्रासादोंको बनाते हैं। मुझे दुःख है, हमारे मल्ल इन दीमकोंसे कुछ शिक्षा नहीं लेते।"

"मानव भी मेलसे रहनेमें किसीसे कम नहीं हैं; बल्कि मानव, जो आज श्रेष्ठ प्राणी बना है, वह मेल हीके कारण। तभी वह इतने बड़े बड़े नगरों, निगमों (कस्बों), गाँवोंको बसानेमें सफल हुआ है, तभी उसके जलपोत अपार सागरको पारकर द्वीप-द्वीपान्तरोंकी निधियोंको जमा करते हैं, तभी उसके सामने हाथी, गैंडे, सिंह नतशिर होते हैं।"

'किन्तु उसकी ईर्ष्या! यदि यह ईर्ष्या न होती, तो कितना अच्छा होता!"

"तुझे मल्लोंकी ईर्ष्याका ख़्याल आता है!"

"हाँ, क्यों वह तुझसे ईर्ष्या करते हैं। मैंने तुझे कभी किसीकी निन्दा-अपकार करते नही देखा-सुना, बल्कि तेरे मधुर व्यवहारसे दास-कर्मकर तक कितने प्रसन्न हैं, यह सभी जानते हैं। तो भी कितने ही सम्भ्रान्त मल्ल तुझसे इतनी डाह रखते हैं!"

"क्योंकि वह मुझे सर्वप्रिय होते देखते हैं, और गण (प्रजातन्त्र) मे सर्वप्रियके डाह करनेवाले अधिक पाये जाते हैं, सर्वप्रियता हीसे तो यहाँ पुरुष गण-प्रमुख होता है।"

"किन्तु, उन्हें तेरे गुणोंको देखकर प्रसन्न होना चाहिये था। मल्लोंमे किसीको तक्षशिलामें इतना सम्मान मिला हो, आज तक नहीं सुना गया। क्या उन्हें मालूम नहीं कि आज भी राजा प्रसेनजित् कोसलके लेख (पत्र) पर लेख तुझे बुलानेके लिये आ रहे हैं!"

"हम तक्षशिलामे दस साल तक एक साथ पढ़ते रहे। उसे मेरे गुण ज्ञात हैं।"

"कुसीनाराके मल्लोंको वह अज्ञात हैं, यह मैं नहीं मानती। महालि-लिच्छवि जब यहाँ आकर तेरे पास ठहरा हुआ था, उस वक्त उसके मुँहसे तेरे गुणोंका बखान-बहुतसे कुसीनारावालोंने सुना था।"

"किन्तु, मल्लिका ! मेरे साथ ईर्ष्या करनेवाले मेरे गुणोंको जानकर ही वैसा करते हैं। गुणी और सर्वप्रिय होना गणोंमे ईर्ष्याका भारी कारण है। मुझे मल्लिका ! अपने लिये ख्याल नहीं है, मुझे अफसोस इसी बातका है कि मैंने मल्लोंकी सेवाके लिए तक्षशिलामे उतने श्रमसे शस्त्र-विद्या सीखी। आज वैशालीके लिच्छवियोंको कोसल और मगध अपने बराबर मानते हैं किन्तु कुसीनारा कोसल राजको अपने ऊपर मानती है। मैंने सोचा था; हम पावा, अनूपिया, कुसीनारा आदि सभी नौ मल्ल-गणोंको स्नेह-बंधनमे बाँधकर लिच्छवियोंकी भाँति अपना नौ मल्लोंका एक सम्मिलित सुदृढ़गण बनावेंगे। नौ मल्लोंके मिल जानेपर प्रसेनजित् हमारी तरफ़ आँखभी नहीं उठा सकता। बस यही एकमात्र अफसोस है।"

बधुलके गोर मुखकी कान्तिको फीकी पड़ी देख मल्लिकाको अफसोस होने लगा और उसने ध्यानको दूसरी ओर खींचते हुए कहा—

"तेरे साथी शिकारके लिए तैयार खड़े होंगे प्रिय ! और मैं भी चलना चाहती हूँ; घोड़ेपर या पैदल ?"

"गवय (घोड़रोज नील गाय)का शिकार घोड़ेकी पीठसे नहीं होता मल्लिका ! और क्या इस घुट्टीतक लटकते अन्तरवासक (लुंगी) इस तीन हाथ तक लहराते उत्तरासग (चादर) और इन अस्त-व्यस्त केशोंको कालो नागिनों की भाँति हवामे उड़ाते शिकार करने चलना है ?"

"ये तुझे बुरे लगते हैं ?"

"बुरे !" मल्लिकाके लाल ओठोंको चूमकर 'मल्लिका नामसे भी जिसका सम्बन्ध हो, वह मुझे बुरा नहीं लग सकता। किन्तु शिकार मे जानेपर जंगलकी झाड़ियोंमे दौड़ना पड़ता है।"

"इन्हें तो मैं तेरे सामने समेटे लेती हूँ।' कह मल्लिकाने अन्तरवासकको कसकर बाध लिया, केशोंको सँभालकर शिरके ऊपर जूड़ा करके कहा—"मेरे उत्तरासंग (ओढनी) की पगड़ी बाँध दे, बधुल !"

"पगड़ी बांध," बंधुलने कंचुकीके भीतरसे उसके उठे क्षुद्र-बिल्व-स्पर्धी स्तनोंको अर्धालिंगन करते हुये बोला—"और ये तेरे स्तन !"

"स्तन सभी मल्ल-कुमारियोंके होते हैं।"

'किन्तु, यह कितने सुन्दर हैं !'

"तो क्या कोई इन्हें छीन ले जायेगा ?"

"तरुणोंकी नज़र लग जायेगी।"

"वह जानते हैं, यह बंधुलके हैं।"

"नहीं, तुझे उज्र न हो, तो मल्लिका ! भीतरसे मैं इन्हें अपने अंगोछेसे बाध दूँ।"

"कपड़ोंके बाहरके दर्शनसे तुझे तृप्ति नहीं हो रही है !"—मल्लिकाने मुस्कुराकर बंधुलके मुहको चूमते हुये कहा।

बंधुलने कंचुकीको हटा शुभ्र स्फाटिक-शिला सदृश वक्षपर आसीन उन आरक्त गोल स्तनोंको अगोंछेसे बाध दिया। मल्लिकाने फिर कंचुकी को पहिनकर कहा—

"अब तो तेरा ख़तरा जाता रहा बंधुल !"

"बंधुलको अपनी चीज़के लिये ख़तरा नहीं है प्रिये ! अब दौड़नेमे यह ज़्यादा हिलेंगे भी नहीं।"

सभी तरुण मल्ल-मल्लियाँ शिकारी वेशमें तैयार इस जोड़ेकी प्रतिक्षा कर रहे थे, और इनके आते ही धनुष, खड्ग, भालेको संभाल चल पड़े। गवयोंके मध्यान्ह विश्रामका स्थान किसीको मालूम था। उसीके पथ-प्रदर्शनके अनुसार लोग चले। बड़े वृक्षोंकी अल्प-तृण-छायाके नीचे गवयोंका एक यूथ बैठा जुगालीकर रहा था, यूथपति एक नील गवय, खड़ा कानोंको आगे पीछे तानते चौकी दे रहा था। मल्ल दो भागोंमें बंट गये—एक भाग तो अस्त्र-शस्त्र संभाल एक ओर वृक्षोंकी आड़ लेकर बैठ गया; दूसरा भाग पीछेसे घेरनेके लिए दो टुकड़ियोंमें बंटकर चला। हवा उधरसे आ रही थी, जिधर यह दोनों टुकड़ियाँ मिलने जा रही थीं। नील गवय अब भी अपनी हरिन जैसी छोटी दुमको हिला रहा

था। दोनों टुकड़ियोंके मिलनेसे पहिले ही बाकी गवय भी खड़े हो नथुनोंको फुलाते; कानोंको आगे टेढ़ा करते उसी एक दिशाकी ओर अस्थिर शरीरसे देखने लगे। क्षण भरके भीतर ही जान पड़ा, उन्हें ख़तरा मालूम हो गया, और नील गवयके पीछे वह हवा बहनेकी दिशाकी ओर दौड़ पड़े। अभी उन्होंने ख़तरेको आँखोंसे देखा न था, इसलिये बीच बीचमें खड़े हो पीछेकी ओर देखते थे। छिपे हुये शिकारियोंके पास आकर एक बार फिर वह मुड़कर देखने लगे, इसी वक्त कई धनुषोंके ज्याकी टकार हुई। नील गवयके कलेजेको ताककर बंधुलने अपना अचूक निशाना लगाया। उसीको मल्लिका और दूसरे कितनोंने भी लक्ष्य बनाया, किन्तु यदि बंधुलका तीर चूक गया होता, तो वह हाथ न आता, यह निश्चित था। नील गवय उसी जगह गिर गया। यूथके दूसरे पशु तितर-बितर हो भाग निकले। बंधुलने पहुँचकर देखा, गवय दम तोड़ रहा है। दो गवयोंके ख़ूनकी बूँदोंका अनुसरण करते हुये शिकारियोंने एक कोसपर जा एकको धरती पर गिरा पाया। इस सफलताके साथ आजके बन-भोजमे बहुत आनन्द रहा।

कुछ लोग लकड़ियोंकी बड़ी निर्धूम आग तैयार करने लगे। मल्लियोंने पतीले तैयार किये। कुछ पुरुषोंने गवयके चमड़ेको उतार मास-खंडोंको काटना शुरू किया। सबसे पहिले आगमें भुनी कलेजी तथा सुरा-चषक लोगोंके सामने आये—मास-खड काटनेमें बंधुलके दोनों हाथ लगे हुये थे, इसलिये मल्लिकाने अपने हाथसे मुँहमे भुना टुकड़ा और सुरा-चषक दिया।

मास पककर तैयार नहीं हो पाया था, जब कि सध्या हो गई। लकड़ीके दहकते अग्नि-स्कधोंकी लाल रोशनी काफी थी, उसीमे मल्लोंका गान-नृत्य शुरू हुआ। मल्लिका—कुसीनाराकी सुदरतम तरुणी—ने शिकारी वेशमे अपने नृत्य कौशलको दिखलानेमे कमाल किया। बंधुलके साथी इस अखिल जम्बू द्वीपके मूल्यके नारी-रत्नका अधिकारी होनेके लिये, उसके भाग्यकी सराहनाकर रहे थे।

(२)

कुसीनाराके संस्थागार (प्रजातंत्र-भवन) में आज बड़ी भीड़ थी। गण-संस्था (पार्लामेंट) के सारे सदस्य शालाके भीतर बैठे हुये थे। कितने ही दर्शक और दर्शिकायें शालाके बाहर मैदानमें खड़े थे। शालाके एक सिरेपर एक विशेष स्थानपर गणपति बैठे थे। उन्होंने सदस्योंकी ओर गौरसे देख, खड़ा होकर कहा—

"भन्ते (पूज्य) गण ! सुनै, आज जिस कामके लिये हमारा यह सन्निपात (बैठक) हुआ है, उसे गणको बतलाता हूँ। आयुष्मान् बंधुल तक्षशिलासे युद्ध शिक्षा प्राप्तकर मल्लोंके गौरवको बढ़ाते हुये लौटा है। उसके शस्त्र नैपुण्यको कुसीनारासे बाहरके लोग भी जानते हैं। उसे यहाँ आये चार साल हो गये। मैंने गणके छोटे-मोटे कामोंको अपनी सम्मतिसे उसे दिया, और हर कामको उसने बहुत तत्परता और सफलताके साथ पूरा किया। अब गणको उसे एक स्थायी पद उप-सेनापतिका पद—देना है यह ज्ञप्ति प्रस्ताव सूचना है।

"भन्ते गण ! सुनै। गण आयुष्मान् बंधुलको उप-सेनापतिका पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्को यह स्वीकार हो वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो वह बोले।"

"दूसरी बार भी, भन्ते गण ! सुनै। गण आयुष्मान् बंधुलको उप सेनापतिका पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्को यह स्वीकार हो वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो वह बोले।

"तीसरी बार भी, भन्ते गण ! सुनै। गण आयुष्मान् बंधुलको उप-सेनापति पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्को यह स्वीकार हो, वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो, वह बोले।'

इसी वक्त एक सदस्य—रोज मल्ल—उत्तरासंग (चादर) को हटा दाहिना कंधा नंगा रख कान्हासोतीकर खड़ा हो गया। गणपतिने कहा—

"आयुष्मान् कुछ बोलना चाहता है, अच्छा बोल।"

रोज मल्लने कहा—"भन्ते गण ! सुनै। मैं आयुष्मान् बंधुलकी योग्यताके बारेमे सन्देह नहीं रखता। मैं उसके उप-सेनापति बनाये जानेका ख़ास कारणसे विरोध करना चाहता हूँ। हमारे गणका नियम रहा है कि किसीको उच्च पद देते वक्त उसकी परीक्षा ली जाती रही है। मै समझता हूँ आयुष्मान् बधुल पर भी वह नियम लागू होना चाहिये।"

रोज मल्लके बैठ जानेपर दो तीन दूसरे सदस्योंने भी यही बात कही। कुछ सदस्योंने परीक्षाकी आवश्यकता नहीं है, इस बात पर ज़ोर दिया। अन्तमे गणपतिने कहा—

"भन्ते गण ! सुनै। गणका आयुष्मान बंधुलके उप-सेनापति बनाये जानेमे थोड़ासा मतभेद है, इसलिये छन्द (वोट) लेनेकी ज़रूरत है। शलाका ग्राहक (शलाका बाटने वाले) छन्द शलाकाओं (वोटकी काष्ठमय तीलियो) को लेकर आपके पास जा रहे हैं। उनके एक हाथ की डलियामे लाल शलाकाये हैं, दूसरीमें काली। लाल शलाका 'हा' के लिये है, काली 'नहीं' के लिये जो आयुष्मान् आयुष्मान् रोजके मतके साथ हों, मूल ज्ञति (प्रस्ताव) को स्वीकार नही करते, वह काली शलाका ले, जो मूल ज्ञप्तिको स्वीकार करते हैं, वह लालको।"

शलाका-ग्राहक छन्द शलाकाओको लेकर एक-एक सदस्यके पास गये। सबने अपनी इच्छानुसार एक-एक शलाका ली। लौट आने पर गणपतिने बाक़ी बची शलाकाओंको गिना। लाल शलाकाये ज़्यादा थी, काली कम, जिसका अर्थ हुआ काली शलाकाओंको लोगोंने ज्यादा लिया। गणपतिने घोषित किया—

'भन्ते गण ! सुनै। काली छन्द शलाकाये ज़्यादा उठाई गईं, इसलिये मैं धारण करता हूँ कि गण आयुष्मान् रोज मल्लसे सहमत है। अब गण निश्चय करे, कि आयुष्मान् बंधुलसे किस तरहकी परीक्षा ली जाये।"

कितने ही समयके वाद-विवाद तथा छन्द शलाका उठवानेके बाद

निश्चित हुआ कि बधुल मल्ल लकड़ीके सात खूटोंको एक सासमें तलवारसे काट डाले। इसके लिये सातवाँ दिन निश्चितकर सभा उठ गई।

सातवें दिन कुसीनाराके मैदानमे स्त्री-पुरुषोंकी भारी भीड़ जमा हुई। मल्लिकाभी वहाँ मौजूद थी। ज़रा ज़रा दूर पर कठोर काष्ठके साथ खूटे गड़े हुये थे। गणपतिके आज्ञा देने पर बधुलने तलवार संभाली। सारी जन-मंडली सास रोककर देखने लगी। बंधुल मल्लकी दृढ़ भुजाओंमें उस लम्बे सीधे खड्गको देखकर लोग बंधुलकी सफलताके लिये निश्चिन्त थे। बंधुलकी बिजलीसी चमकती तलवारको लोगोंने उठते गिरते देखा—पहिला खूटा कटा, दूसरा, तीसरा, छठेंके कटते वक्त बंधुलके कानोंमें झनकी आवाज़ आई, उसके ललाट पर बल आ गया, और उत्साह ठडा हो गया। बंधुलकी तलवार सातवें खूंटेके अन्तिम छोरपर पहुँचनेसे ज़रा पहिले रुक गई। बंधुल जल्दीसे एक बार सभी खूटोंके सिरोंको देख गया। उसका सारा शरीर काप रहा था, मुँह गुस्सेमे लाल था, किन्तु वह बिल्कुल चुप रहा।

गणपतिने घोषित किया कि सातवें खूंटेका सिरा अलग नहीं हो पाया। लोगोंकी सहानुभूति बंधुल मल्लकी ओर थी।

घर आ मल्लिकाने बंधुलके लाल और गम्भीर चेहरेको देखकर अपनी उदासीको भूल उसे सान्त्वना देना चाहा। बंधुलने कहा—

"मल्लिका! मेरे साथ भारी धोखा किया गया। मुझे इसकी आशा न थी।"

"क्या हुआ प्रिय!"

"एक एक खूटेमें लोहेकी कीलें गाड़ी हुई थीं। पाँचवें खूटे तक मुझे कुछ पता न था, छठवेंके काटनेपर मुझे झन-सी आवाज़ साफ सुनाई दी। मैं धोखा-समझ गया। यदि इस आवाज़को न सुना होता, तो सातवें खूटेको भी साफ काट जाता, किन्तु फिर मेरा मन क्षुब्ध हो गया।"

"ऐसा धोखा! यह तो उसकी भारी नीचता है, जिसने ऐसा किया।"

"किसने किया, इसे हम नहीं जान सकते, रोज पर मुझे बिल्कुल गुस्सा नहीं है, आखिर वह उचित कह रहा था और उसकी सम्मतिसे गणके बहुसंख्यक सदस्य सहमत थे। किन्तु, मुझे क्षोभ और गुस्सा इस पर है कि कुसीनारामें मुझसे स्नेह-रखने वालोंका इतना अभाव है।"

"तो बंधुल मल्ल कुसीनारासे नाराज़ हो रहा है?"

"कुसीनारा मेरी मा है, जिसने पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया; किन्तु अब मै कुसीनारामे नहीं रहूँगा।"

"कुसीनाराको छोड़ जाना चाहता है?"

"क्योंकि कुसीनाराको बंधुल मल्लकी ज़रूरत नहीं है।"

'तो कहाँ चलेगा?"

"मल्लिका तू मेरा साथ देगी!"—विकसित वदन हो बंधुलने कहा।

"छायाकी भाँति, मेरे बंधुल!" मल्लिकाने बंधुलकी लाल आँखोंको चूम लिया और तुरन्त उनकी रुक्षता जाती रही।

"मल्लिका! अपने हाथोंको दे" फिर मल्लिकाके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर बंधुलने कहा—"यह तेरे हाथ मेरे लिये शक्तिके स्रोत हैं, इन्हें पाकर बंधुल कहीं भी निर्भय विचर सकता है।"

"तो प्रिय! कहाँ चलनेको तैकर रहा है और कब?"

"बिना ज़रा भी देर किये, क्योंकि खूंटोंकी कीलोंका पता गणपतिको लगने ही वाला है, उसके बाद वह फिरसे परीक्षा दिन निश्चित करेंगे, हमें लोगोंके आग्रहसे पहिले चल देना चाहिये।"

"अन्यायका परिमार्जन क्यों नहीं होने देता?'

'कुसीनाराने मेरे बारेमें अपनी सम्मति दे दी है, मल्लिके! मेरा यहाँ काम नहीं है, कम-से-कम इस वक्त। कुसीनाराको जब बंधुलकी ज़रूरत होगी, उस वक्त वह यहाँ आ मौजूद होगा।"

"उसी रातको ले चलने लायक चीज़ोंको ले मल्लिका और बंधुलने कुसीनाराको छोड़ दिया, और दूसरे दिन अचिरवती (रापती) के तट पर अवस्थित ब्राह्मणोंके ग्राम मल्लग्राम (मलाव, गोरखपुर) मे पहुँच गये। मल्लोंके जनपदमें मल्लग्रामके शाकृत्य अपनी युद्ध वीरताके लिये ख्याति रखते थे। वहाँ बंधुलके मित्र भी थे, किन्तु बंधुल मित्रोंकी मुलाकातके लिये नहीं गया था—वह गया था वहाँसे नाव द्वारा श्रावस्ती (सहेट-महेट) जानेके लिये। मल्लग्राममे श्रेष्ठी सुदत्तके आदमी रहते थे, और उनके द्वारा नावोंका पाना आसान था। शाकृत्य ब्राह्मणोंने अपने कुलाचारके अनुसार अपने द्वार पर एक मोटा सुअरका बच्चा काटा और ब्राह्मणोंने अपने हाथसे पकाकर बधुल मल्ल तथा मल्लिकाको उसी शूकर मार्दवसे सतृप्त किया।

(३)

श्रावस्ती राजधानीमें कोसल राज प्रसेनजित्ने अपने सहपाठी मित्र बंधुल मल्लका बड़े ज़ोरोंसे स्वागत किया। तक्षशिलामें ही प्रसेनजित्ने इच्छा प्रकटकी थी कि मेरे राजा होने पर तुझे मेरा सेनापति बनना होगा। राजा हो जाने पर भी कई बार वह इस बारेमें लिख चुका था, किन्तु कोसल-काशी जैसे अपने समयके सबसे समृद्ध और विशाल राज्यका सेनापति होनेकी जगह, बंधुल अपनी कुसीनाराके एक मामूली गणका उप-सेनापति रहना ज़्यादा पसन्द करता था। किन्तु अब कुसीनाराने उसे ठुकरा दिया था, इसलिये प्रसेनजित्के प्रस्ताव करनेपर उसने शर्त रखी—

"मैं स्वीकार करूंगा, मित्र! तेरी बातको; किन्तु, उसके साथ कुछ शर्त है।"

"खुशी से कह, मित्र बधुल!"

"मै मल्ल-पुत्र हूँ।"

"हाँ, मै जानता हूँ, और मल्लोंके विरुद्ध जानेकी मै तुझे कभी आज्ञा नहीं दूँगा।"

"बस इतना ही।"

"मित्र! मल्लोंके साथ जो सम्बन्ध हमारा है, बस मै उतना ही क़ायम रखना चाहता हूँ। तू जानता है कि मुझे राज्य विस्तारकी इच्छा नहीं है। यदि किसी कारणसे मुझे मल्लोंका विरोध करना पड़ा, तो तुझे स्वतन्त्रता होगी चाहे जो पक्ष ले। और कुछ मै अपने प्रिय मित्रके लिये कर सकता हूँ?"

"नहीं, महाराज! बस इतना ही।"

(४)

बंधुल मल्ल कोसल-सेनापति था। प्रसेनजित् जैसे नरम, उत्साहहीन राजाके लिये एक ऐसे योग्य सेनापतिकी बड़ी ज़रूरत थी। वस्तुतः यदि उसे बंधुल मल्ल न मिला होता, तो शायद मगधो और वत्सोंने उसके राज्यके कितने ही भाग दाब लिये होते।

श्रावस्ती पहुँचनेके कुछ समय बाद मल्लिकाको गर्भ-लक्षण दिखलाई देने लगा। बंधुल मल्लने एक दिन पूछा—

"प्रिये! किसी चीज़का दोहद हो तो कहना।"

"हाँ, दोहद है प्रियतम! किन्तु बड़ा दुष्कर।"

"बंधुल मल्लके लिये दुष्कर नहीं हो सकता, मल्लिके! बोल क्या दोहद है?"

"अभिषेक-पुष्करिणीमे नहाना।"

"मल्लोंकी?"

"नहीं, वैशालीमे लिच्छवियों की।"

"तूने ठीक कहा मल्लिके! तेरा दोहद दुष्कर है। किंतु बंधुल मल्ल उसे पूरा करेगा। कल सवेरे तैयार हो जा, रथपर हम दोनो चलेंगे।"

दूसरे दिन पाथेय ले अपने खड्ग, धनुष आदिके साथ दोनों रथपर सवार हुये।

दूरकी मंज़िलको अनेक सप्ताहमें पारकर एक दिन बंधुलका रथ वैशालीमे उसी द्वारसे प्रविष्ट हुआ, जिसपर उसका सहपाठी—कुछ

लिच्छवियोंकी ईर्ष्यासे अंधा हुआ—महालि अध्यक्ष था। एक बार बंधुलकी इच्छा हुई महालिसे मिल लेनेकी, किन्तु दोहदकी पूर्तिमें विघ्न देख उसने अपने इरादेको छोड़ दिया।

अभिषेक-पुष्करिणीके घाटोंपर पहरा था। वहाँ जीवनमें सिर्फ एक बार किसी लिच्छवि-पुत्रको नहाने (अभिषेक पाने)का सौभाग्य होता था; जब कि वह लिच्छवि गणके ९९९ सदस्योंके किसी रिक्त स्थानपर चुना जाता। रक्षी पुरुषोंने बाधा डाली, तो बंधुलने कोड़ोंसे मारकर उन्हें भगा दिया, और मल्लिकाको स्नान करा रथपर चढ़ा तुरन्त वैशालीसे निकल पड़ा। रक्षी पुरुषोंसे ख़बर पा पाँच सौ लिच्छवि रथी बंधुलके पीछे दौड़े। महालिने सुना तो उसने मना किया; किन्तु गर्वीले लिच्छवि कहाँ मानने वाले थे। दूरसे रथोंके चक्कोंकी आवाज़ सुन पीछे देख मल्लिकाने कहा—

"प्रिय! बहुतसे रथ आ रहे हैं।"

"तो प्रिये! जिस वक्त सारे रथ एक रेखामें हों, उस वक्त कहना।"

मल्लिकाने वैसे समय सूचित किया। पुराने ऐतिहासिकोंका कहना है कि बंधुलने खींचकर एक तीर मारा, और वह पाँच सौ लिच्छवियोंके कमरबंदके भीतरसे होता निकल गया। लिच्छवियोंने नज़दीक पहुँचकर लड़नेके लिये ललकारा। बंधुलने सहज भावसे कहा—

"मैं तुम्हारे जैसे मरोंसे नहीं लड़ता।"

"देख भी तो हम कैसे मरे हैं।"

"मैं दूसरा बाण ख़र्च नहीं करता। घर लौट जाओ, प्रियों-बन्धुओंसे पहले भेंटकर लेना, फिर कमरबन्दको खोलना"—कह बंधुलने मल्लिकाके हाथसे रास ले ली और रथको तेज़ीसे हाँककर आँखोंके ओझल हो गया।

कमरबन्द खोलनेपर सचमुच ही पाँचो सौ लिच्छवि मरे पाये गये।

(५)

श्रावस्ती (आजकलका उजाड़ सहेट-महेट) उस वक्त जम्बू द्वीपका

सबसे बड़ा नगर था। प्रसेनजित्‌के राज्यमें श्रावस्तीके अतिरिक्त साकेत (अयोध्या) और वाराणसी (बनारस) दो और महा नगर थे। श्रावस्तीके सुदत्त (अनाथ-पिंडक) और मृगार, साकेतके अर्जुन जैसे कितने ही करोड़पति सेठ काशी कोसलके सम्मिलित राज्यमें बसते थे, जिनके सार्थ (कारवां) जम्बू द्वीप ही में नहीं, बल्कि ताम्रलिप्तसे होकर पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी) और भरुकच्छ (भड़ौंच) तथा सुप्पारक (सोपारा)से होकर समुद्र (अरब सागर) द्वारा दूर दूरके द्वीपों तक जाते थे। ब्राह्मण सामन्तों (महाशालों) तथा क्षत्रिय सामन्तोंके बराबर तो उनका स्थान नहीं था, तो भी यह लोग समाजमें बहुत ऊंचा स्थान रखते थे, और धनमें तो उनके सामने सामन्त तुच्छ थे। सुदत्तने जेत राजकुमारके उद्यान जेतवनको कार्षापणों (सिक्कों)को बिछाकर ख़रीदा, और गौतम बुद्धके लिये वहाँ जेतवन विहार बनवाया था। मृगारके लड़के पुण्ड्रवर्धनके ब्याहमें राजा प्रसेनजित् स्वयं सदलबल साकेत गया था, और कन्या-पिता अर्जुन श्रेष्ठीका मेहमान रहा। अर्जुनकी पुत्री तथा मृगारको पुत्र-वधू विशाखाने अपने हारके दामसे हज़ार कोठरियोंका एक सात तल्ला विशाल विहार (मठ) बनवाया, जिसका नाम पूर्वाराम मृगार माता प्रासाद पड़ा। देश देशान्तरका धन इन श्रेष्ठियोंके पास दुहकर चला आता था, फिर इनकी अपार सम्पत्तिके बारेमें क्या कहना है!

जैवलि, उद्दालक, याज्ञवल्क्यने यज्ञवादको गौण—द्वितीय—स्थान देते हुये, वास्तविक निस्तारके लिये ब्रह्मवादकी दृढ़ नौकाका निर्माण किया। जनक जैसे राजाओंने बड़े बड़े पुरस्कार रख ब्रह्मसंबंधी शास्त्रार्थकी परिषदें बुलानी शुरूकीं; जिनसे वेदसे बाहर भी कल्पना करनेका रास्ता खुला। अब यह वह समय था, जब कि देशमें स्वतंत्र चिन्तनकी एक बाढ़-सी आ गई थी, और विचारक (तीर्थंकर) अपने अपने विचारोंको लोगोंके सामने साधारण सभाओंमे रखते थे।—कहीं उसका रूप साधारण उपदेश (अपवाद, सूक्त)के रूपमें होता था,

कहीं कोई वादके आह्वान (चैलेंज) की घोषणाके तौरपर जम्बू (जामुन) की शाखाको गाड़ते घूमता फिरता। प्रवाहणने छप्पन पीढ़ियोंको भटकानेके लिये ब्रह्म साक्षात्कारके बहुतसे उपाय बतलाये थे, जिनमें प्रव्रज्या (सन्यास) ध्यान, तप आदि शामिल थे। अब उपनिषद्‌की शिक्षासे बाहर वाले आचार्य भी अपने स्वतंत्र विचारोंके साथ प्रव्रज्या और ब्रह्मचर्यपर ज़ोर देते थे। अजित केसकम्बल बिल्कुल जड़वादी था, सिवाय भौतिक पदार्थोंके वह किसी आत्मा, ईश्वर-भक्ति, नित्य तत्व, या स्वर्ग-नर्क-पुनर्जन्म को नही मानता था, तो भी वह स्वय गृह-त्यागी ब्रह्मचारी था। जिन सामन्तोंका उस वक्त शासन था, उनकी सहानुभूतिका पात्र बनने ही नहीं, बल्कि उनके कोपसे बचनेके लिये भी यह ज़रूरी था, कि अपने जड़वादको धर्मका रूप दिया जाये। लौहित्य ब्राह्मण-सामन्त तथा पायासी जैसे राजन्य-सामन्त जड़वादी थे, और अपने विचारोंके लिये लोगोंमें इतने प्रसिद्ध थे, कि जड़वादको छोड़नेमे भी वह लोक लज्जा समझते थे, तो भी इनका जड़वाद समाजके लिये ख़तरनाक नही था।

जड़वादका प्रचार देखा जाता था, लेकिन ब्राह्मण-क्षत्रिय सामन्तों तथा धनं कुबेर व्यापारियोंकी सबसे अधिक आस्था गौतम बुद्धके अनात्मवादकी ओर थी - कोसलमे विशेषकर। इसमें एक कारण यह भी था, कि गौतम स्वयं कोसलके अन्तर्गत शाक्य गणके निवासी थे। गौतम जड़वादियोंकी भाँति कहते थे—आत्मा, ईश्वर आदि कोई नित्यवस्तु विश्वमे नही है, सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, और शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं। ससार वस्तुओंका समूह नहीं, बल्कि घटनाओंका प्रवाह है। समझदार आदमियोंके लिये यह विचार बहुत ही युक्तिसगत, हृदयंगम जान पड़ते थे। किन्तु, ऐसे अनित्यतावादी से लोक-मर्यादा, गरीब-अमीर, दास-स्वामीके भेदको ठोकर लग सकती थी, इसलिये तो अजितका जड़वाद सामन्त और व्यापारी वर्गमें सर्वप्रिय नहीं हो सका। गौतम बुद्धने अपने अनात्म वाद--जड़वाद—मे कुछ

और बातोंको मिलाकर उसकी कड़वाहटको दूर किया था। उनका कहना था—किसी नित्य आत्माके न होने पर भी चेतना-प्रवाह स्वर्ग या नर्क आदि लोकोंके भीतर एक शरीर से दूसरे शरीर—एक शरीर-प्रवाहसे दूसरे शरीर-प्रवाहमें बदलता रहता है। इस विचारमें प्रवाहण राजाके आविष्कृत हथियार—पुनर्जन्मकी पूरी गुंजाइश हो जाती थी। यदि गौतम कोरे जड़वादका प्रचार करते, तो निश्चय ही श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, राजगृह आदिकाके श्रेष्ठिराज न अपनी थैलियाँ खोलते, और न ब्राह्मण-क्षत्रिय-सामन्त, तथा राजा उनके चरणोंमें सिर नवानेके लिये होड़ लगाते।

श्रावस्तीके ऊँचे वर्गकी स्त्रियोंकी गौतम बुद्धके मतमें बड़ी आस्था थी। प्रसेनजित्की पटरानी मल्लिका देवी बुद्ध धर्ममें बहुत अनुरक्त थी, उसके नगरके सेठकी पुत्रवधू तथा उसकी सखी विशाखाने अपने श्रद्धाके रूपमें पूर्वाराम जैसा एक महा-विहार ही बना कर बुद्धको दान दिया। बंधुल मल्ल सेनापतिकी पत्नी मल्लिका, मल्लिका पटरानीकी बड़ी प्रिय सखी थी, उसीसे प्रेरित हो वह भी बुद्धके उपदेशोंमें जाने लगी, तथा कुछ समय बाद बुद्धोपासिका होके रही।

मल्लिका का घर अब बहुत समृद्ध था। कोसल जैसे महान् राज्यके सेनापतिका घर समृद्ध होना ही चाहिये। मल्लिकाके दस वीर पुत्र हुये थे, जो राज-सेनाके ऊँचे पदों पर थे। बंधुल मल्लने एक युग तक राजा के ऊपर अपना प्रभाव रखा। इसी बीच उसके बहुतसे शत्रु हो गये। दूसरे जनपदके आदमीको इतने ऊँचे पदपर देखना भी वह नहीं पसन्द करते थे। ईर्ष्यालुओंने राजाके पास चुगली करनी शुरू की। राजा कुछ मन्दबुद्धि था भी, "बंधुल मल्ल तो महाराजको निर्बुद्धि कहता है" कह कर उसे भड़काया गया। अन्तमें यहाँ तक बतलाया गया कि सेनापति राज्यको छीनना चाहता है। प्रसेनजित्को बात ठीक जँच गई। वह उसके और अपने शत्रुओंके हाथमें खेलने लगा। बंधुल मल्लको चिन्तित देख एक दिन मल्लिकाने कहा—

"प्रिय ! तू क्यों इतना चिन्तित है ?"

"क्योंकि राजा मुझपर सन्देह करने लगा है।"

"तो क्यों न सेनापतिका स्थान छोड़ कुसीनारा चले चलें। वहाँ अपनी जीविकाके लिये हमारे पास काफ़ी कर्मान्त (कामत, खेती) है।

'इसका अर्थ है राजाको उसके शत्रुओंके हाथमें छोड़ देना। देखती नहीं मल्लिका ! मगधराज अजातशत्रु कई बार काशीपर आक्रमण कर चुका है। एक बार हमने उसे बन्दी बना लिया, महाराजने उदारता दिखलाते हुये राजपुत्री वज्रासे व्याहकर उसे छोड़ दिया। किन्तु अजातशत्रु सारे जम्बूद्वीपका चक्रवर्ती बनना चाहता है मल्लिका ! वह इस व्याहसे चुप होने वाला नहीं है। उसके गुप्तचर राजधानीमें भरे हुये हैं। हमारे दूसरे पड़ोसी अवन्तिराजके दामाद वत्सराज उदयनकी नीयत भी ठीक नही है, वह भी सीमान्त पर तैयारी कर रहा है। ऐसी अवस्थामें श्रावस्तीको छोड़ भागना भारी कायरता होगी मल्लिका !"

"और मित्र-द्रोह भी।"

"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है मल्लिका ! युद्धोंमे कितनी बार मैं मृत्युके मुख में जाकर बाहर निकला हूँ, इसलिये किसी वक्त मृत्यु यदि अपने जबड़ेके भीतर मुझे बन्दकर ले, तो कोई बड़ी बात नहीं।"

मालीकी लड़की मल्लिका—जो कि एक साधारण कमकरकी लड़की हो अपने गुणोंसे प्रसेनजित्की पटरानी बनी—अब नहीं थी, नहीं तो हो सकता था राजाके कानोंको लोग इतना ख़राब न कर पाते। एक दिन राजाने सीमान्तके विद्रोहकी बात कहकर एक जगह बंधुल मल्लके पुत्रोंको भेज दिया। जब वह सफल हो लौट रहे थे, तो धोखेसे उन्हींके ख़िलाफ़ बंधुल मल्लको भेजा, इस प्रकार बाप और उसके दसों लड़के एक ही जगह काम आये। जिस वक्त इस घटनाकी चिट्ठी मल्लिकाके पास आई, उस वक्त वह बुद्ध और उनके भिक्षु संघको भोजन कराने जा रही थी, उसकी दसों तरुण बहुओंने बड़े प्रेमसे कई तरहके भोजन तैयार किये थे। मल्लिकाने चिट्ठी पढ़ी, उसके कलेजेमें

आग लग गई किन्तु उसने उस वक्त अपने ऊपर इतना क़ाबू किया कि आँखोमें आँसू क्या मुँहको म्लान तक नहीं होने दिया। चिट्ठीको आँचरके कोनेमें बाँध उसने सारे संघको भोजन कराया। भोजनोपरान्त बुद्धके उपदेशको श्रद्धासे सुना, तब अन्तमें चिट्ठीको पढ़ सुनाया। बंधुल परिवार पर बिजली गिर गई। मल्लिकामें काफ़ी धैर्य था, किन्तु उन तरुण विधवाओंको धैर्य दिलाना बुद्धके लिये भी मुश्किल था।

समय बीतने पर प्रसेनजित्को सच्ची बातें मालूम हुईं, उसे बहुत शोक हुआ, किन्तु अब क्या हो सकता था। प्रसेनजित्ने अपने मनकी सान्त्वनाके लिए बंधुलके भागिनेय दीर्घ कारायणको अपना सेनापति बनाया।

(६)

जाड़ोंका दिन था, कपिलवस्तुके आस-पासके खेतोंमें हरे भरे गेहूँ, जौ, तथा फूली हुई पीली सरसों लगी थी। आज नगरको ख़ूब अलंकृत किया गया था, जगह जगह तोरण-वंदनवार लगे थे। सस्थागार (प्रजातन्त्र-भवन) को ख़ास तौरसे सजाया गया था। तीन दिनकी भारी मेहनतके बाद आज ज़रा-सा अवकाश पा कुछ दास किसी घरके एक कोनेमें बैठे हुए थे। काकने कहा—

"हम दासोंका भी कोई जीवन है! आदमीकी जगह यदि बैल पैदा हुये होते, तो अच्छा था; उस वक्त हमें मनुष्य जैसा ज्ञान तो न होता।"

"ठीक कहते हो काक! कल मेरे मालिक दंडपाणिने लाल लोहा करके मेरी स्त्रीको दाग दिया।"

"क्यों दागा?"

"क्यों इनसे कौन पूछे। यह तो दासोंके पति-पत्नीके सम्बन्धको भी नहीं मानते। तिस पर यह दंडपाणि अपनेको निगंठ श्रावक (जैन) कहता है—जो निगंठ कि भूमिके कीड़ेको हटानेके लिये अपने पास मोरपंखी रखते हैं। क़सूर यही था कि मेरी स्त्री कई दिनसे सख़्त बीमार हमारी बच्चीकी बेहोशीकी बात मुझसे कहने आई थी। बेचारी बच्ची

आख़िर बच्ची भी नहीं। अच्छा हुआ मर गई, संसारमें उसे भी तो हमारे ही जैसा जीवन जीना पड़ता। सचमुच काक! हम दासोंका कोई जीवन नहीं है। इतना ही नहीं, हमारा कसाई स्वामी कह रहा है कि इस चहल पहलके बीतते ही वह मेरी स्त्रीको बेंच देगा।"

"तो, उस कसाई दंडपाणिको लोहेसे दागनेसे भी सन्तोष नहीं आया?"

"नहीं भाई! वह कहता है कि बारह वर्ष बाद उस बच्चीके उसे पचास निष्क (अशर्फियाँ) मिलते। मानों, हमने जान बूझकर उसके पचास निष्क बर्बाद कर दिये।"

"और मानों, हम दासोंके पास माँ-बापका हृदय ही नहीं है।"

एक तीसरे वृद्ध दासने बीचमें कहा—"और एक यह भी दासी ही का लड़का है जिसके स्वागतके लिये यह सारी तैयारीकी जा रही है।"

"कौन दादा?"

"यही कोसल-राजकुमार विदूडभ।"

"दासी का पुत्र!"

"हाँ, महानाम शाक्यकी उस बुढ़िया दासीको नहीं जानता, हमारे जैसी काली नहीं—किसी शाक्यके वीर्यसे होगी।"

"और दासियोंमें उसकी क्या कमी है दादा?"

"हाँ, तो उसी दासी से महानामकी एक लड़की पैदा हुई थी। बड़ी गोर, बड़ी सुन्दर देखनेमे शाक्यानी मालूम होती थी।"

"क्यों न मालूम होगी? और सुन्दर लड़कियोंको चाहे वह दासी की भी हों, मालिक बड़े चावसे पालते-पोसते हैं।"

"कोसलराज प्रसेनजित् किसी शाक्य कुमारीसे व्याह करना चाहता था, किन्तु कोई शाक्य अपनी कन्याको देना नहीं चाहता था—शाक्य अपनेको तीनों लोकमें सबसे कुलीन मानते हैं काक! किन्तु साफ़ इन्कार करनेसे कोसलराज शाक्योंके गणपर कोप करता। इसीलिये महानामने अपनी इसी दासीकी लड़कीको शाक्य कुमारी

कहकर प्रसेनजित्‌को दे दिया। इसी लड़की वार्षभ क्षत्रियाका लड़का है यह विडूडभ राजकुमार।"

"लेकिन, अब तो वह भी हमारे ख़ूनका वैसा ही प्यासा होगा, जैसे शाक्य।"

बाजे बजने लगे, शाक्योंने कोसल राजकुमारकी अगवानीकर संस्थागारमें बड़े धूमधामसे उसका स्वागत किया, यद्यपि भीतरसे दासीपुत्र समझ सभी उसके ऊपर घृणाकर रहे थे।

विडूडभ अपने "मातुलकुलका' स्वागत ले, नाना महानामका आशीर्वाद पा ख़ुशी-ख़ुशी कपिलवस्तुसे विदा हुआ। दासी पुत्रके पैरसे सस्थागार अपवित्र हो गया था इसलिये उसकी शुद्धि होनी जरूरी थी, और कितने ही दास-दासी आसनोंको दूधसे धोकर शुद्ध करनेमे लगे थे। एक मुहचली दासी धोते वक्त दासी-पुत्र विडूडभको दस हज़ार गाली देती जा रही थी। विडूडभका एक सैनिक अपने भालेको संस्थागारमें भूल गया था। लौटकर भाला लेते वक्त उसने दासीको गालीको ध्यानसे सुना। धीरे धीरे सारी बातका पता विडूडभको लगा। उसने संकल्प किया कि कपिलवस्तुको निःशाक्य करूंगा और आगे चलकर उसने यहकर दिखलाया। उसके क्रोधका दूसरा लक्ष्य था प्रसेनजित्, जिसने उसे दासीमे पैदा किया।

दीर्घकारायण अपने मामा और ममेरे भाइयोंके ख़ूनको भूल नहीं सकता था। उधर बुढ़ापेमें अपनी सारी भूलोंका पश्चात्ताप करते प्रसेन-जित् अधिक से अधिक विश्वास और मृदुता दिखलाना चाहता था। एक दिन मध्यान्ह भोजनके बाद उसे बुद्धका ख़्याल आया। कुछ ही योजनों पर शाक्योंके किसी गाव में ठहरे सुन, कारायण, और कुछ सैनिकोंको लेकर वह चल पड़ा। उसने बुद्धके वास-गृहमें जाते वक्त मुकुट, खड्ग आदि राजचिन्होंको कारायणके हाथमें दे दिया। कारायण विडूडभसे मिला हुआ था, उसने एक रानीको छोड़, विडूडभको राजा घोषितकर श्रावस्तीका रास्ता लिया।

कितनी ही देर तक उपदेश सुन, प्रसेनजित् बाहर निकला, तो रानीने बिलख बिलखकर सारी बात बतलाई। वहाँसे प्रसेनजित् अपने भाजे मगध-राज अजातशत्रुसे मदद लेनेके लिये राजगृहकी ओर चला। बुढ़ाईमें कई सप्ताह पैदल चलनेसे रास्ते हीमें उसका शरीर जवाब दे चुका था। शामको जब राजगृह पहुँचा, तो नगरद्वार बन्द हो चुका था। द्वारके बाहर उसी रात एक कुटियामें प्रसेनजित् मर गया। सवेरे रानीका विलाप सुन अजातशत्रु और वज्रा दौड़ आये, किन्तु उस मिट्टीको ठाट-बाटसे जलानेके सिवाय वह क्या कर सकते थे।

बंधुलके ख़ूनका यह बदला था, दासता के दुष्कर्मका यह परिणाम था।*

---

* आज से सौ पीढ़ी पहिलेकी यह एक ऐतिहासिक कहानी है। उस वक़्त तक सामाजिक विषमतायें बहुत बढ़ चुकी थीं। धनी व्यापारी वर्ग समाजमें एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहणकर चुका था। परलोकका रास्ता बतलाने वाले, नरकसे उद्धार करनेवाले कितने ही पथप्रदर्शक पैदा हो गये थे; किन्तु गांव गांवमें दासताके नर्कको धधकता देखकर भी सब की आँखें उधरसे मुँदी हुई थीं।

१०—नागदत्त

काल—३३१ ई० पू०

(१)

"उचित पर हमें ध्यान देना चाहिये, विष्णुगुप्त! मनुष्य होनेसे हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं, इसलिये हमें उचितका ख्याल रखना चाहिये।"

"कर्त्तव्य है धर्म न?"

"मैं धर्मको ढोंग समझता हूँ। धर्म केवल परधन-अपहारकोंको शान्तिसे परधन उपभोग करनेका अवसर देनेके लिये है। धर्मने कभी ग़रीबों और निर्बलोंकी क्या सुधि ली। विश्वकी कोई जाति नहीं है, जो धर्मको न मानती हो, किन्तु क्या कभी उसने ख्याल किया कि दास भी मनुष्य हैं। दासोंको छोड़ दो, अदास स्त्रियोंको ले लो, धर्मने कभी उन-पर न्याय किया? धन चाहिए, तुम दो, चार, दस, सौ स्त्रियोंको विवाहिता बना सकते हो। वह दासीसे बढ़कर नहीं होंगी, और धर्म इसे ठीक समझता है। मेरा उचितका मतलब धर्मसे उचित नहीं है, बल्कि स्वस्थ-मानवका मन जिसे उचित समझता है।"

"तो मैं कहता हूँ, जो आवश्यक है वही उचित है।"

"तब तो उचित अनुचितका भेद ही नहीं रह जायेगा।"

"भेद रहेगा मित्र! आवश्यकसे मतलब मैं सिर्फ एकके लिये जो आवश्यक हो, उसे नहीं लेता।"

"जरा साफ करके कह विष्णुगुप्त!"

"यही हमारे तक्षशिला-गंधारको ले ले भाई! हमारे लिये अपनी स्वतंत्रता कितनी प्रिय और उचित भी है; किन्तु हमारा देश इतना छोटा है, कि वह बड़े शत्रुका मुकाबिला नहीं कर सकता। जब तक मद्र, पश्चिम गंधार जैसे छोटे-छोटे गण हमारे पड़ोसी थे, तब तक चैनसे

रहे—कभी-कभी लड़ाई हो पड़ती थी, किन्तु उसका परिणाम कुछ आदमियोंकी बलि-मात्र होता था; हमारी स्वतंत्रताका अपहरण नहीं, क्योंकि तक्षशिलाके काँटेदार आहारको पचाना किसीके लिये आसान न था, किन्तु जब पार्शव (ईरानी) पश्चिमी पड़ोसी बने, तो हमारी स्वतन्त्रता उनकी कृपा पर रह गई। हमारी स्वतंत्रताके लिये क्या आवश्यक है? यही कि हम पार्शवों जितने मजबूत बनें।"

"और मजबूत बननेके लिये क्या करें?"

"छोटेसे गणसे काम नहीं चलेगा, हमें छोटे-छोटे जनपदोंकी जगह विशाल राज्य-कायम करना चाहिये।"

"उस विशाल राज्यमें छोटे-छोटे जनपदोंका क्या स्थान रहेगा?"

"अपनेपनका ख्याल।"

"यह गोलमोल शब्द है विष्णुगुप्त! दास कभी स्वामीमें अपने-पनका ख्याल रखता है?"

"तो मित्र नागदत्त! स्थान पाना इच्छा या ख्याल पर निर्भर नहीं है, वह निर्भर करता है योग्यता पर; यदि तक्षशिला, गंधारमें योग्यता होगी, तो वह उस विशाल राज्यमें उच्च स्थान ग्रहण करेगा, नहीं तो मामूली।"

"गुलामका स्थान?"

"किन्तु मित्र, यह गुलामका स्थान भी उससे कहीं अच्छा होगा, जो कि पश्चिमी गंधारको दारयोश् के राज्यमें मिला हुआ है। अच्छा, मेरी औषधिको जाने दे, तू ही बतला हमें अपनी स्वतंत्रताको कायम रखनेके लिये क्या करना चाहिये, जब कि यह निश्चित है, कि हम एक क्षुद्र जनपदके रूपमें अपने अस्तित्वको कायम नहीं रख सकते।"

"मैं कहूँगा विष्णुगुप्त! हमें अपने गण-स्वातंत्र्यको कायम रखना चाहिये और किसी राजाके आधीन नहीं बनना चाहिये। मैं मानता हूँ, हम एक क्षुद्र गणके रूपमें अपनी स्वतंत्रता नहीं कायम रख सकते,

इसीलिये हमे सारे उत्तरापथ (पंजाब) के गणोंका एक संघ संगठित करना चाहिये।"

"उस सघमे, प्रत्येक गण स्वतंत्र रहेगा, या संघ सर्वोपरि रहेगा?"

"मै समझता हूँ जैसे हम सब व्यक्तियोंके ऊपर गण है, उसी तरह गधार, मद्र, मल्ल, शिवि आदि सभी गणोंके ऊपर संघको मानना होगा।"

"इसे कैसे मनवायेंगे? आखिर गणके बाहरी शत्रुओंकी रक्षाके लिये हमे सेना रखनी होगी। बलि (कर) लेनी होगी।"

'जैसे हम गणके भीतरके लोगोंसे कराते हैं वैसे संघके भीतर गणोंसे करा सकते हैं।"

"गणके भीतर हमारा पहलेसे चला आया एक जन एक खूनका परिवार है, अनादिकालसे इस परिवारको गण-नियमके माननेकी आदत बन गई है; किन्तु यह गणोंका सघ नई चीज होगा, यहाँ खूनका संबध नही बल्कि खूनका झगड़ा प्रतिद्वद्विता अनादिकालसे चली आई है, फिर कैसे हम संघके नियमको मनवा सकते हैं? यदि मित्र! तू इसपर व्यापार-की दृष्टिसे विचारता, तो कभी इसके लिये न कहता। सघकी बात गण तभी मानेंगे, जबकि उन्हें वैसा माननेके लिये मजबूर किया जायेगा। और वह मजबूर करनेवाली शक्ति कहाँसे आयेगी?"

"मैं समझता हूँ उसे भीतरसे पैदा करनी चाहिये।"

"मैं कहता हूँ, भीतरसे पैदा होती तो अच्छी बात है, किन्तु पार्शवों-के प्रहारको अनेक बार सहकर हमने देख लिया कि वह भीतरसे नहीं पैदाकी जा सकती, इसीलिये हमें जैसे हो वैसे उसे पैदा करना चाहिये।"

"राजा स्वीकार कर भी?"

"सिर्फ तक्षशिलाका नहीं, तक्षशिला-गंधार जैसे अनेक जनपदोंका एक राजा—चक्रवर्ती—भी स्वीकार करना हो, तो हर्ज नहीं।"

"तो फिर पार्शव दारयोशको ही क्यों न राजा मान ले।"

"पार्शव दारयोश् हमारा नहीं है, मित्र ! यह तू खुद जानता है—हम जम्बूद्वीपके हैं।"

"अच्छा, तो नन्दको।"

"यदि हम उत्तरापथ (पंजाब) के सारे गणोंका संघ नहीं बना सकते, तो हमें नन्दको स्वीकार करनेमें भी उज्र नहीं होना चाहिये। पश्चिमी गंधारकी भाँति दारयोश्का दास बनना अच्छा है, या अपने एक जम्बू द्वीपीय चक्रवर्तीके आधीन रहना अच्छा है।"

"तूने मित्र विष्णुगुप्त ! राजाका राज्य अभी देखा नहीं है, देखता तो समझता, कि वहाँ साधारण जन दाससे बढ़कर हैसियत नहीं रखते।"

"मैं मानता हूँ, मैंने पश्चिमी गंधार छोड़ किसी राजाके राज्यमें पैर नहीं रखा, किन्तु देश-भ्रमणकी इच्छा मेरे दिलमें है। मैं तेरी तरह बीच बीचमें चक्कर काटनेकी जगह अध्ययन समाप्तकर एक ही बार उसे करना चाहता हूँ। किन्तु, इससे मेरे इस विचारमें कोई अन्तर नहीं आ सकता, कि हमें यदि विदेशियोंकी घृणित दासतासे बचना है, तो छोटी सीमाओंको तोड़ना होगा। कोरोश् और दारयोश्की सफलताकी यही कुंजी है।"

"उन्हें कितनी सफलता मिली, इसे मैं नजदीकसे देखना चाहता हूँ—"

"नजदीकसे !"

"हाँ, मैंने प्राचीमें मगध तक देख लिया, और देख लिया। नन्दका राज्य हमारे पूर्व गंधार (तक्षशिला) की तुलनामें नर्क है, मज़बूत वह ज़रूर है गरीबोंको पीस देनेके लिये, किन्तु मेहनत करने वाले लोग—कृषक, शिल्पी, दास—कितने पीड़ित हैं, इसे बयान नहीं कर सकता।"

"यह इसीलिये, कि नन्दके राज्यमें तक्षशिला जैसा कोई स्वाभिमानी स्वतंत्रताप्रेमी गण नहीं सम्मिलित हुआ।"

"सम्मिलित हुआ है विष्णुगुप्त ! लिच्छवियोंका गण हमारे गंधारसे भी जबर्दस्त था, किन्तु आज वैशाली मगधकी चरणदासी है, और

लिच्छवि मगध-शिकारीके जबर्दस्त कुत्ते—इससे बढ़कर कुछ नहीं। वैशालीको आकर देखो, उजाड़ हो रही है, पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें उसकी जनसंख्या तिहाई भी नहीं रह गई। शताब्दियोंसे अर्जित स्वतंत्रता, स्वाभिमानके भाव अब मगधराजके लड़ाके सैनिक बनानेमें काम आ रहे हैं। एक बार जहाँ, किसी बड़े राज्यके हाथमें अपनेको दे दिया, तो फिर उसके हाथसे छूटना मुश्किल है।"

"मित्र नागदत्त! मैं भी किसी वक्त तेरी ही तरहसे विचारता था, किन्तु मैं समझता हूँ, अब छोटे छोटे गणोंका युग बीत गया, और बड़ा गण या संघ कायम करना सपना मात्र है, इसीलिये मैं समयकी आवश्यकताको उचित कहता हूँ। किन्तु, यह बतला अब क्या पश्चिमकी तैयारी है?"

"हाँ, पहिले पार्शवोंके देशको, फिर हो सका तो देखना चाहता हूँ, यवनों (यूनानियों)को भी। हमारी तरह उनके भी गण हैं किन्तु देखना है, कैसे उन्होंने महान् दारयोश् तथा उसके वंशजोंको अपने मनसूबेमें सफल नहीं होने दिया, इसे मैं देखना चाहता हूँ।"

"और मैं भी चल रहा हूँ मित्र! प्राचीको, देखूँ मगधमें सारे जम्बूद्वीपको एक करनेकी शक्ति है या नहीं। चलो हम लोग पढ़ाई समाप्तकर, धन-अर्जन, परिवार-पोषणकी जगह यही काम करें। लेकिन मित्र! तूने जो साथ ही साथ वैद्यकी विद्या पढ़ी, अच्छा किया; मैं पछताता हूँ, यात्रा करनेवालोंके लिये यह बड़े लाभकी विद्या है।"

"किन्तु, तू उससे भी लाभकी विद्या ज्योतिष और सामुद्रिक तंत्र-मंत्र जानता है।"

"तू जानता है मित्र! यह झूठी विद्यायें हैं।"

"लेकिन, विष्णुगुप्त चाणक्यको झूठी सच्ची विद्याओंसे क्या वास्ता? उसके लिये तो जो आवश्यक है, वह उचित है।"

बचपनसे साथ खेलते साथ पढ़ते तक्षशिलाके नागदत्त काप्य और विष्णुगुप्त चाणक्यके विद्यार्थी जीवनकी यह अन्तिम भेंट थी। एकसे

अधिक वार पार्शवोंके हाथमें चली गई तक्षशिलाकी स्वतंत्रताको वचानेके लिये दोनों अपने अपने विचारके अनुसार कोई रास्ता ढूँढ़ रहे थे।

(२)

चारों ओर छोटे छोटे नंगे—वृक्ष वनस्पति-शून्य—पहाड़ थे, वहाँ हरियाली देखनेको आँखें तरस रही थीं। पहाड़ोंके बीचमें विस्तृत उपत्यका, जिसमें भी जल और वनस्पतिका चिह्न शायद ही कहीं दिखाई पड़ता हो। इसी उपत्यकाके किनारे किनारे कारवाँका रास्ता था, जिसपर सदा लोग आते जाते रहते थे, और कारवाँ और उनके पशुओंके आरामके लिये पान्थशालायें (सरायें) वनी हुई थीं, आस पासके भूखंडके देखनेसे आशा नहीं होती, किन्तु इन पान्थशालाओंमे हर तरहका आराम है। न जाने कहाँसे इतनी चीजें इस मरुभूमिमे प्रकट हो जाती थीं।

पड़ावोंमे पान्यशालायें एकसे अधिक थीं, जिनमे कुछ साधारण राज कर्मचारियों और सैनिकोंके लिये थीं, कुछ व्यापारियोंके लिये और कमसे कम एक तो राजाका पान्थ-प्रासाद होता था, जिसमे शाह और उनके क्षत्रप विश्राम करते थे। आज इस पड़ावके पान्थप्रासादमें कोई ठहरा हुआ था, उसकी अस्तवलोंमें घोड़े वँधे थे, आँगनमे वहुतसे दास-कर्मचर दिखलाई पड़ते थे; किन्तु, सवके चेहरेपर उदासी थी। इतने आदमियोंके होनेपर भी पान्थ-प्रासादमें ग़ज़वकी नीरवता छाई हुई थी। इसी समय फाटकसे उद्विग्नमुख तीन राजकर्मचारी निकले, और वह साधारण पान्थशालाओंमें घुस गये। उनके वहुमूल्य वस्त्रों, रोबीले मुखको देखते ही लोग भय और सम्मानके साथ एक ओर खड़े हो जाते। वह पूछ रहे थे, कि वहाँ कोई वैद्य है। अन्तमे साधारण जनोंकी पान्थशालामे पता लगा, कि उसमे एक हिन्दू वैद्य ठहरा हुआ है। वर्षा उस भूमिमे वहुत कम होती है, और उसकी ऋतु कवकी वीत चुकी थी। सेव, अंगूर, खर्वूजे जैसे फल अपने सस्तेपनके कारण इस पाथशालामे विक रहे थे। राजकर्मचारी जव वैद्यके सामने पहुँचा, तो

वह एक बड़ेसे खर्बूजे (सर्दे)को काटकर खा रहा था, उसके आस पास उसीकी तरहके भिखमंगों जैसे भेसमें कितने ही और ईरानी बैठे थे, जिनके सामने भी वैसे ही खर्बूजे रखे हुए थे।

राजकर्मचारीको देखते ही, भिखमंगे भयभीत हो इधर उधर भाग खड़े हुए। एक आदमीने वहाँ खड़े आदमीकी ओर इशारा करके कहा—

"स्वामी! यह हिन्दू वैद्य है।"

वैद्यके मलिन कपड़ोंकी ओर देखकर राजकर्मचारीका मुँह पहिले विगड़सा गया। फिर उसने उसके चेहरेकी ओर देखा। वह उन कपड़ोंके लायक न था, वहाँ भय, दीनताका नाम न था। राजकर्मचारीपर उन नीली आँखोंसे निकलती किरणोंने कुछ प्रभाव डाला, उसके ललाटकी सिकुड़न चली गई, और कुछ शिष्ट-स्वरमे उसने कहा—

"तुम वैद्य हो।"

"हाँ!"

"कहाँके?"

"तक्षशिलाका।"

तक्षशिलाका नाम सुनकर राजकर्मचारी और नम्र हो गया, और बोला—

"हमारे क्षत्रप—वक्षु-सोग्दके क्षत्रप की स्त्री शाहंशाहकी वहिन बीमार हैं, क्या तुम उनकी चिकित्सा कर सकते हो?"

"क्यों नहीं, मैं वैद्य तो हूँ।"

"किन्तु, यह तुम्हारे कपड़े?"

"कपड़े नहीं चिकित्सा करेंगे, मैं चिकित्सा करूँगा।"

"किन्तु, यह ज्यादा मैले हैं।"

"आज इन्हें बदलने ही वाला था। एक क्षणके लिये ठहरें"—कह वैद्यने एक धुले ऊनी चोगे—जो पहिलेसे थोड़ा ही अधिक साफ था—को पहिना, और हाथमें दवाओंकी पोटलियोंसे भरी एक चमड़ेकी थैली ले राजकर्मचारीके साथ चल पड़ा।

कहनेको यह पान्थशाला थी, किन्तु इसके आँगनमे गदहोंकी न वह लीद् थी, न भिखमंगोंकी गुदड़ियोंकी जूयें। यहाँ सभी जगह सफाई थी। ऊपर चढ़नेकी सीढ़ीपर रंगबिरंगे काम वाले कालीन बिछे हुए थे, सीढ़ीकी बाहोंमे सुन्दर कारुकार्य थे। घरोंमे भी उसी तरह नीचे महार्घ कालीन थे, दर्वाज़ोंपर सूक्ष्म स्कूलके पर्दें लटक रहे थे, जिनके पास सगमर्मरकी मूर्तिकी भाँति नीरव सुंदरियाँ खड़ी थीं। एक द्वारपर जाकर कर्मचारीने वैद्यको खड़ा रहनेका इशारा किया, और एक सुंदरीके कानोंमें कुछ कहा। उसने बहुत धीरेसे द्वारको खोला, भीतरके पर्देके कारण वहाँ कुछ दिखलाई न पड़ता था। कुछ क्षण मे ही सुंदरी लौट आई, और उसने वैद्यको अपने साथ चलनेको कहा।

भीतर घुसते ही वैद्यने मधुर सुगंधसे सारे कमरेको वासित पाया, फिर जल्दीमे आसपास नजर दौड़ाई, तो उस कमरेके सजानेमें कमाल किया गया था। कालीन, पर्दें, मसनद, दीपदान, चित्र, मूर्तियाँ सभी ऐसी थीं, जिन्हें वैद्यने अभी तक न देखा था। सामने एक कोमल गद्दी थी, जिसपर दीवारके पास दो तीन मसनदे रखी थीं, जिनमें से एकके सहारे एक अधेड़ उम्रका कुछ स्थूलकाय पुरुष बैठा था। उसकी कान तक फैली बड़ी बड़ी मूछोंके भूरे बालोंमें कुछ सफेद हो चले थे। उसकी बड़ी पीली आँखोंपर अति जागरण और तीव्र चिन्ताकी छाप थी। उसकी बगलमें एक अनुपम सुंदरी बैठी थी, जिसका वर्ण ही श्वेत मक्खन सा नहीं था, बल्कि मालूम होता था, वह उससे अधिक कोमल है, उसके श्वेत कपोलों पर हल्की सी लाली थी, जो अबसे धूमिल हो गई थी। उसके पतले ओठोकी चमकती लालीको शुक चंचुसे उपमा नहीं दी जा सकती। उसकी पतली धनुषाकार भौंहोंमें मृदु पीत रोम थे, और नीचे कानोंके पास तक चले गये दीर्घपक्ष्म वाले नील नेत्र, जो सूजे और आरक्तसे थे। उसके शिर पर मानों सुवर्णके सूक्ष्म तंतुओंको बलित करके सजाया गया था। उसके शरीरमें एक पूरे बाँहकी हरित दुकूलकी कंचुकी, और नीचे लाल दुकूलका सुत्थन था। उस सौन्दर्यमय

कोमल शरीर पर मणिमुक्ताके आभूषण केवल भार मालूम होते थे। इन दोनोंके अतिरिक्त कमरेमे कितनी ही और सुन्दरियाँ खड़ी थीं, जिनके चेहरे और विनीत भावको देखनेसे वैद्यको समझनेमे देर नही हुई कि यह क्षत्रपके अंतःपुरकी परिचारिकायें हैं।

पुरुष—जो कि क्षत्रप ही था—ने वैद्यको एक बार शिरसे पैर तक निहारा, किन्तु उसकी दृष्टिको उसके नीले नेत्रोंने अपनी ओर खींच लिया, उसे यह समझनेमे देर न लगी, कि यदि मैं अपने कपड़ोंको इसी समय पहना दूं तो यह पर्शुपुरी (पर्सेपोली) के सुन्दरतम तरुणो में गिना जायेगा। क्षत्रपने विनीत स्वरमे कहा—

"आप तक्षशिलाके वैद्य हैं?"

"हाँ, महा क्षत्रप!"

"मेरी स्त्री बहुत बीमार है। कलसे उसकी अवस्था बहुत खराब हो गई है। मेरे अपने दो वैद्योंकी दवाओंका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है।"

"मैं महा क्षत्रपकी पत्नीको देखनेके बाद आपके वैद्योंमे बातचीत करना चाहूँगा।"

"वह यहाँ हाजिर रहेंगे। अच्छा तो भीतर चलें।"

श्वेत भीत जैसे ही श्वेत पर्देको हटाया गया, वहाँ भीतर जानेका द्वार था, क्षत्रप और षोडशी आगे आगे चली, उनके पीछे वैद्य था। भीतर हाथी दाँतके पावोंका एक पलंग बिछा था, जिस पर फेन सदृश श्वेत कोमल बिस्तरे पर रोगिणी सोई हुई थी, उसका शरीर श्वेत कदली-मृग (समूर) के चर्म वाले प्रावरणसे ढँका था, और सिर्फ चिबुकके ऊपरका भाग भर खुला था। क्षत्रपको आते देख परिचारकाये अलग खड़ी हो गईं। वैद्यने नजदीकसे जाकर देखा, क्षत्रपानीका चेहरा उस षोडशीसे हूबहू मिलता था, किन्तु उस तरुण सौन्दर्यकी जगह यहाँ प्रौढ़ावस्थाका प्रभाव और उस पर चिर रोगके झंझावातका असर था। वह लाल ओठ अब पीले थे, उसके मासल कपोल सूख कर नीचे धँस गये

थे। आँखें बंद तथा कोटरलीन थीं; हाँ पीली भौहोंकी कमान अभी भी तनी हुई थी। ललाटकी स्निग्ध श्वेतिमा रूखी और निस्तेज हो गई थी।

क्षत्रपने नजदीक मुँह ले जाकर कहा—

"अफ्शा!"

रोगिणीने ज़रा सी आँखें खोलीं, फिर बंद कर लिया।

वैद्यने कहा—"मूर्छा, आंशिक मूर्छा।" फिर उसने हाथोंको निकाल कर नाड़ी देखी, मुश्किलसे उसका पता लग रहा था, शरीर करीब करीब ठंडा था। क्षत्रपने वैद्यके चेहरेको गंभीर होते देखा। ज़रा सा सोचकर वैद्यने कहा—

"थोड़ी सी द्राक्षी सुरा, पुरानी जितनी मिल सके।"

क्षत्रपके पास उसकी कमी न थी, इस यात्रामें भी। एक काँचकी श्वेत सुराही रुधिर जैसी लाल द्राक्षी सुरासे भरी और एक मणि जटित सुवर्ण चषक आया। वैद्यने एक पोटली खोली और दाहिने हाथ की काली अँगुलीके बढ़े नखसे एक रत्ती कोई दवा निकाल रोगिणीका मुँह खोलनेके लिए कहा। क्षत्रपको मुँह खोलनेमें दिक्कत नहीं हुई। उसने दवा मुँहमें डाल एक घूँट सुरा मुँहमें डालदी, रोगिणीको घोंटते देख वैद्यको सन्तोष हो गया। उसने क्षत्रपसे कहा—

"अब मै बाहर महाक्षत्रपके वैद्योंसे मिलना चाहता हूँ, थोड़ी देरमे महा क्षत्रपानी आँख खोलेगी, उस वक्त मेरे आनेकी जरूरत होगी।"

दूसरे कमरेमें जाकर वैद्यने पार्श्व वैद्योंसे मन्त्रणाकी। उन्होंने, सोग्द से चलनेके समय जो साधारण ज्वर आया था, तबसे लेकर आज तक की अवस्थाका सारा वर्णन किया। इसी वक्त परिचारकाने आकर सूचना दी, कि स्वामिनी महाक्षत्रपको बुलाती हैं। महाक्षत्रपके चेहरे पर नया प्रकाशसा दौड़ गया, वह वैद्यको लेकर भीतर गया। क्षत्रपानीकी आँखें पूरी तौरसे खुली हुई थी। उसके चेहरेमें कुछ जीवनका चिन्ह दिखलाई दे रहा था। क्षत्रपानीने धीरेसे किन्तु संयत स्वरमे कहा—

"मै जान रही हूँ, तुम बहुत खिन्न हो, मैंने यही कहनेके लिये बुलाया,

कि मै अच्छी हो जाऊँगी, मैं अनुभव कर रही हूँ मुझमे शक्ति आ रही है।

क्षत्रपने कहा—"यही बात मुझसे यह हिन्दू वैद्य भी कह रहे थे।"

चेहरेको और उज्ज्वल करते हुए क्षत्रपानीने कहा—"हिन्दू वैद्य जानते हैं, मेरी बीमारीको; मेरी बीमारी खतम हो चुकी है, क्यों वैद्य !"

"हाँ, बीमारी खतम हो गई, किन्तु महाक्षत्रपानीको थोड़ा सा विश्राम करना पड़ेगा। मैं यही सोच रहा हूँ, कि कितनी जल्दी आपको पर्शुपुरी जाने लायक कर दिया जाय। मेरे पास अद्भुत रसायन है, हिन्दुओंके रसायनको मैं दे रहा हूँ। थोड़ा थोड़ा द्राक्षा और दाड़िमके रसको पीना होगा।"

"वैद्य ! तुम रोगको पहचानते हो, दूसरे तो गदहे हैं। तुम जैसा कहोगे, वैसा ही करूँगी। रोशना !"

षोडशी सामने खड़ी होकर बोली—

"माँ !"

"बेटी ! तेरी आँखे गीली हैं, वे वैद्य मुझे मार डालते, किन्तु अब चिन्ता नहीं। हिन्दू वैद्यको अहुर-मज़्दाने भेजा है, इन्हें तकलीफ न होने देना। मुझे जो खाने-पीनेको वैद्य कहें, तू अपने हाथसे देना।"

वैद्य रोशनाको कुछ बाते बतलाकर बाहर निकला। क्षत्रपका चेहरा खिला हुआ था। वैद्यने कुछ दवाओंको भोजपत्रके टुकड़ोंमें बाँधकर, क्षत्रपके हवाले कर अपनी पान्थशालामें जाना चाहा, तो क्षत्रपने कहा—

'तुमको हमारे साथमे रहना चाहिए।"

"किन्तु, मैं दर्बारमें रहनेका तरीका नहीं जानता।"

"तो भी मनुष्यके रहनेका तरीका तुम अच्छी तरह जानते हो। तरीका जाति जातिका अलग होता है।"

"मेरी रहन-सहनसे आपके परिचारकोंको कष्ट होगा।"

"मैं एक बिल्कुल अलग कमरा, पास ही दे रहा हूँ। तुम्हारे पास रहनेसे हमें सन्तोष रहेगा।"

"महाक्षत्रपानीकी अब कोई चिन्ता न करें। वैद्योंने बीमारीको ठीकसे पहिचाना नहीं था। मैं दो घंटा और न आया होता, तो फिर आशा न थी। किन्तु अब उनकी बीमारी चली गई समझें।"

क्षत्रपके आग्रहपर वैद्यने वहीं एक कमरेमें रहना स्वीकार किया।

क्षत्रपानी चौथे दिनसे बैठने लगीं, और उनके चेहरेकी सिकुड़नें बड़ी तेजीसे मिटने लगीं। सबसे ज्यादा प्रसन्न थी रोशना। दूसरे ही दिन उसने क्षत्रपके दिये महार्घ दुशालेके चोगेको लाकर अपने हाथों वैद्यको प्रदान किया। इस चोगे, इस सुनहले कमरबंद, इस स्वर्णखचित जूतोंके साथ अब वह भिखमंगोंमें बैठ खर्बूजा खानेवाला आदमी न था।

क्षत्रपानी अब हल्का आहार ग्रहण करने लगी थीं। छठें दिन शामको उन्होंने वैद्यको बुला भेजा। वैद्य उन्हें बिल्कुल नया पुरुष मालूम होता था, जान पड़ा उनके भतीजोंमेंसे कोई आ रहा है। पास आने पर बैठनेके लिये कहा, और बैठ जानेपर बोलीं—

"वैद्य! मै तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ हूँ। इस निर्जन बयाबानमें मज्दाने तुम्हें मुझे बचानेके लिये भेजा। तुम्हारा जन्मनगर क्या है?"

"तक्षशिला।"

"तक्षशिला! बहुत प्रसिद्ध नगर है, विद्याकी ख्याति है तुम उसके रत्न हो"।

"नहीं, मैं उसका एक अति साधारण नया वैद्य हूँ।"

"तुम तरुण हो निस्सन्देह, किन्तु तरुणाई और गुणसे बैर नहीं है। तुम्हारा नाम क्या है, वैद्यराज?"

"नागदत्त काप्य।"

"पूरा नाम बोलना मेरे लिये मुश्किल होगा, नाग कहना काफी होगा?"

"काफी होगा, महाक्षत्रपानी!"

"तुम कहाँ जा रहे हो?"

"अभी तो पर्शुपुरी (पर्सेपोलीस)।"

"फिर ?"

"चलने, यात्रा करनेकी इच्छासे ही मैंने घर छोड़ा है।"

"हम भी पर्शुपुरी जा रहे हैं, तुम हमारे साथ चलो। हम तुम्हारा हर तरहसे ख्याल रखेंगे। रोशना! तू वैद्यराजके आरामका खुद ख्याल कियाकर, दास बेपर्वाही करेंगे।"

"नहीं, माँ! मैं खुद देखती रहती हूँ, मैंने सोफियाको इस काममें लगा दिया है।"

"सोफिया यवनी (यूनानी) जिसे मेरे भाईने यहाँ मेरे लिये भेजा था ?"

"हाँ, माँ! तुम्हारा तो कोई काम न था, और लड़की बहुत होशियार मालूम होती है, इसलिये मैंने उसे ही लगा दिया है।"

"तो वैद्यराज! हमारे साथ पर्शुपुरी चलना होगा, मैं तुम्हारी इच्छाके प्रतिकूल कुछ न करूँगी, किन्तु मैं चाहूँगी तुम हमारे परिवारके वैद्य रहो।"

नागदत्त कुछ देर बैठकर अपने कमरेमें चला आया।

(३)

संसारके इतने विशाल राज्यकी राजधानी इन नंगे, वृक्ष-वनस्पतिहीन पहाड़ोंमें, इतनी प्राकृतिक दरिद्रताके साथ रोगी, नागदत्तको इसका ख्याल भी न था। पर्शुपुरी महानगरी थी। राजप्रासादके विशाल चमकते पाषाण-स्तम्भों, उसके गगनचुंबी शिखरोंको बाहरसे देखने पर भी शाहशाही वैभवका पता लगता था, नगरकी समृद्धि भी उसीके अनुरूप थी; किन्तु, यह सब मनुष्यके हाथोंका निर्माण था। प्रकृतिने अपनी ओरसे सचमुच ही उसे अत्यंत दरिद्र बनाया था।

पर्शुपुरी और शाहंशाहके वैभवको देखनेके लिए शाहंशाहकी बहिन अफ्शाके आश्रयसे बढ़कर अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था। ज्ञत्रपानीने पर्शुपुरी पहुँचकर नागदत्तके आरामका बहुत ध्यान रखा, और जब उसने दक्षिणाके लिये जोर दिया तो वैद्यने सोफियाको माँग

लिया। जब सोफियाकी टूटी-टूटी फारसीको समझना मुश्किल हो रहा था, उस वक्त भी नागदत्तको इतना पता लग गया था, कि उन चमकीले नेत्रोंके भीतर तीक्ष्ण प्रतिभा छिपी हुई है। जब वह उसकी हो गई—हाँ, दासीके तौर पर, तो नागदत्तने उसे कभी दासीके तौरपर स्वीकार नही किया—और धीरे धीरे भाषाका परिचय भी और अधिक बढ़ने लगा। नागदत्तने स्वयं यवनानी (यूनानी) लिपि सीखी, और सोफ़िया उसे बड़े परिश्रमसे एथेन्स की भाषा सिखाने लगी। साल बीतते बीतते वह उसमे निपुण हो गया। एक दिन सोफियाने तरुण वैद्यके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—

"भाग्य या संयोग भी कैसी चीज़ है, मुझे कभी आशा नहीं हुई थी, कि मैं तुम्हारे जैसे कोमल स्वभावके स्वामीकी दासी बनूंगी।"

"नहीं, सोफिया! तुम यदि क्षत्रपानीके साथ रहती तो तुम्हें शायद ज्यादा आराम होता। लेकिन सोफी! मुझे स्वामी न कहो। दासप्रथाका नाम सुनकर मुझे ज्वर आता है।"

"किन्तु, मै तुम्हारी दासी हूँ।"

"तुम दासी नहीं हो, मैंने क्षत्रप-दम्पतीको सूचित कर दिया है, कि सोफियाको मैंने दासतासे मुक्त कर दिया।"

"तो मैं अब दासी नही हूँ!"

"नहीं, अब तुम मेरी ही तरह स्वतन्त्र हो, और जहाँ चाहो, मैं कोशिश करूँगा, तुम्हें वहाँ पहुँचानेकी।".

"किन्तु, यदि मैं तुम्हारे पास और रहना चाहूँगी, तो बाहर तो नहीं करोगे।"

"यह बिल्कुल तुम्हारी इच्छा पर है।"

"दासता मनुष्यको कितना दबा देती है! पिताके घरमें मैंने अपने दासोंको देखा था, वह हँसते थे, आमोद-प्रमोद करते थे, मैंने कभी नहीं समझा था कि उस हँसीके भीतर कितनी व्यथा छिपी हुई है। जब मै स्वयं दासी हुई, तब मुझे अनुभव हुआ, कि दासता कैसा नर्क है।"

"तुम कैसे दासी हुई, सोफी! यदि कष्ट न हो तो बताओ।"

"मेरे पिता एथेन्स नगरीके एक प्रमुख नागरिक थे। जब मकदूनिया-के राजा फिलिप्ने हमारी नगरीको विजय किया, तो पिता, परिवारके व्यक्तियोंको ले नावसे एशिया भाग आए। हमने समझा था कि यहाँ हमे शरण मिलेगी किन्तु जिस नगरीमे हम उतरे, चन्द महीने बाद ही पार्शवोंने उसपर आक्रमण कर दिया। नगरका पतन हुआ, और उस भगदड़में कोई कहीं गया, कोई कहीं गया, कितने नागरिकोंको पार्शवोंने बंदी बनाया, मैं भी उन्हीं बंदियोंमें थी, और अच्छे रूप और तरुणाईके कारण मुझे सेनापति के पास भेजा गया, सेनापतिसे शाहके पास। शाहके पास मेरी जैसी सैकड़ों यवन तरुणियाँ थीं, उसने अपनी बहिनको आते सुन, मुझे उसके पास भेज दिया। यद्यपि मैं दासी थी, किन्तु अपने रूपके कारण खास स्थान रखनेवाली दासी थी, इसलिये मेरा अनुभव साधारण दासियोंका नहीं हो सकता, तो भी मै ही जानती हूँ इस यातनाको। मुझे जान पड़ता था, कि मै मानवी ही नहीं हूँ।"

"तो सोफ़ी! तुम्हारे पितासे फिर भेंट नहीं हो सकी?"

"मुझे विश्वास नहीं कि वह जिन्दा बचे होंगे। अब तो हम हवामे उड़ते सूखे पत्ते हैं। प्यारी एथेन्स बर्बाद हो गई, अब जीवित होने पर भी मिलनेका ठाँव कहाँ रहा?"

"एथेन्स महानगरी है सोफिया?"

"थी कभी स्वामी!—"

"स्वामी नहीं, नाग कहो, सोफी।"

"थी कभी नाग! किन्तु अब तो वह उजड़ चुकी है, हमारा गण जिसने महान् दारयोश् के दाँत खट्टे किये, उसे क्षुद्र फिलिप्ने आनत शिर कर दिया।"

"क्यों ऐसा हुआ, सोफी!"

"पार्शवोंके अनेक आक्रमणका प्रतीकार करके भी एथेन्सके कितने

ही विचारकोंके दिमागमें यह ख्याल बैठ गया कि जब तक पार्शवोंके मुकाबिलेमें हम भी एक बड़ा राज्य नहीं कायम कर लेते तब तक निस्तार नहीं। फिलिप् कभी सफल न होता, यदि एथेन्ससे उसे सहायता न मिली होती।"

"आह, तक्षशिला! तूने भी विष्णुगुप्तको पैदा किया!"

"तक्षशिला, विष्णुगुप्त क्या है नाग!"

"अभिमानिनी तक्षशिला, मेरी जन्मभूमि, पूर्वकी एथेन्स। हमारे गणने भी महान् दारयोश् और उसके उत्तराधिकारियोंको कईवार मार भगाया, किन्तु मेरा सहपाठी विष्णुगुप्त अब वही बात कह रहा है, जिसे फिलिप्को सहायता पहुँचानेवाले एथेन्सके नागरिकोंने कहा था।"

"क्या तक्षशिला भी हमारे एथेन्सकी भाँति ही गण है?"

"हाँ, गण है। और हमारी तक्षशिलामें कोई दास नहीं, उसकी भूमि पर पैर रखते ही दास अदास हो जाते हैं।"

"आह, करुणामयी तक्षशिला! तभी नाग। मैंने पहिले दिनसे ही देखा, दासोंके साथ बर्तनेका तुम्हें ढंग नहीं मालूम है।"

"और मैं कभी मालूम नहीं होने दूँगा। मैंने विष्णुगुप्तको कहा, यदि तुम मागधोंको लाओगे, तो तक्षशिलाकी पवित्र भूमि पर दासताका कलंक लगे बिना नहीं रहेगा।"

"मागध कौन है नाग!"

"हिन्दके फिलिप्, तक्षशिलासे पूर्व एक विशाल हिन्दू-राज्य। पार्शवोंके आक्रमणसे हम तंग आ गये हैं, जीतते-जीतते भी हम निर्बल और हारेसे हो गये हैं। वस्तुतः अकेली तक्षशिला पार्शव शाहंशाहसे मुकाबिला नहीं कर सकती, किन्तु मैं इसकी दवा अपने अनेक गणोंके संघको बतलाता हूँ।"

"किन्तु, नाग! हमारे देशमें यह भी करके देख लिया गया। हमारी हेल्ला जातिके कितने ही गणोंने संघ बाँधकर पार्शवोंका मुकाबिला किया, किन्तु वह संघ स्थायी नहीं हो सका। गणोंमें अपने-अपने गणकी स्वतं-

त्रताका इतना ख्याल होता है, कि वह संघको वह स्थान देनेके लिये तैयार नहीं होते।"

"तो क्या मै गलत साबित होऊँगा और विष्णुगुप्त ही सही।"

"क्या विष्णुगुप्त संघमें सफलता नहीं देखता।"

"हाँ, वह कहता है, हमारा शत्रु जितना मजबूत है, उसका मुकाबिला गणोंके संघसे नहीं हो सकता, अनेक गणोंकी सीमा मिटाकर यदि एक महान् गण बनाया जा सके, तो शायद संभव हो, किन्तु गण इसे नहीं मानेंगे।"

"शायद, नाग! तुम्हारा मित्र सत्य कहता है, किन्तु, हमने अन्त तक एथेन्सकी स्वतंत्रताको खुशीसे देनेका ख्याल नहीं आने दिया।"

"तो सोफी! गण होते हुए एथेन्सने इस दासताको क्यों स्वीकार किया?

"अपने पतनको जल्दी बुलानेके लिए। धनिकोंके लोभने दासताको जारी किया, और धीरे-धीरे दास स्वामियोंसे भी संख्यामें बढ गए।"

"तुम्हें यहाँ पार्शवोंमें सबसे बुरी बातें क्या मालूम हुई?"

"दासता, जो कि हमारे यहाँ भी थी। फिर शाहशाहों और धनिकोंका रनिवास।"

"तुम्हारे यहाँ ऐसा नहीं होता?"

"हमारे यहाँ मकदूनियाका राजा फिलिप् भी एकसे अधिक ब्याह नहीं कर सकता। यहाँ तो छोटे-छोटे राजकर्मचारी तक कई-कई शादियाँ करते हैं।"

"हमारे यहाँ कभी-कभी एकसे अधिक ब्याह देखे जाते हैं, यद्यपि उनकी संख्या कम है; किन्तु, मैं अनुभव करता था कि यह स्त्रियोंकी दासताकी निशानी है। एथेन्सने यदि दासता रखी, तो तक्षशिलाने अनेक स्त्रीके साथ विवाहको, चाहे किसी अवस्थामें जायज़ रखा हो, जारी रखकर उसे क़ायम रखा।"

"और धनका थोड़ेही घरोंमें जमा होना।"

"मैंने विष्णुगुप्तको कहा था, गणमें कितनाही धन किसका क्यों न बढ़े, किन्तु वह राजाओंकी भाँति पानीकी तरह नहीं बहाया जा सकता। यहाँ तो तुम देख ही रही हो सोफ़ी महार्घ मृगचर्म, दुकूल, मणि, मुक्ता आदि वस्तुओंके साथ किस तरहका व्यवहार किया जाता है। ये गुलाबी गाल, ये प्रवाली अधर यह ख्याल भी नहीं करते, कि इन वस्तुओंको पैदा करनेके लिए कितने करोड़ों करोड़ आदमी भूखे मर रहे हैं।"

"हमारे घरोंपर गिरे पानीको छीनकर समुद्रको महान् जलराशि मिली है।"

"मिट्टीसे सोना पैदा करनेवाले भूखे-नंगे मरते हैं और सोनेको मिट्टी करनेवाले मौज उड़ाते हैं। मैं तीन बार शाहंशाहके सामने गया, हर बार लौटते वक्त मेरे सिरमें दर्द होने लगा। मैंने उसके सारे वैभव से जाड़ोंमें ठिठुरकर, गर्मियोंमें जलकर मरनेवाले कमकरोंकी आह निकलती देखी, उसकी लाल मदिरा मुझे सताई गई प्रजाके खूनके रूपमें दिखलाई पड़ी। मैं पशुपुरीसे तंग आ गया हूँ, और जल्दी निकल भागना चाहता हूँ।"

"कहाँ जाना चाहते हो नाग!"

"पहिले तुम्हारे बारेमें जानना चाहता हूँ।"

"मै कहाँ बतला सकती हूँ।"

"यवन लोक (यूनान)।"

"पसद होगा।"

"तो उधर ही चलेंगे।"

"किन्तु, रास्तेमें मुझे फिर कोई छीन लेगा, और अबकी बार नाग जैसा त्राता नहीं प्राप्तकर सकूँगी।"—सोफ़ियाका स्वर असाधारण कोमल हो गया था, उसके सुन्दर आयत नयन कातरसे दीख पड़ रहे थे।

नागदत्तने उसके कानके ऊपरसे लटकते सुनहले बालोंको छूते हुए कहा—

"मैंने उसके लिए उपाय सोच रखा है, किन्तु, उसमें तुम्हारी सम्मति की भी ज़रूरत है।"

"क्या ?"

"क्षत्रप, चत्रपानी और शाहंशाहसे अपने बारेमें पत्र ले लूँगा, कि यह शाहंशाहसे सम्मानित हिन्दू वैद्य है।"

"तो तुमको कोई नहीं छेड़ेगा।"

"और तुम दुनियाके दिखलानेके लिए वैद्यकी स्त्री यदि बनना चाहो, तो पत्रमें तुम्हारा नाम भी लिखवा दूँगा।"

सोफ़ियाकी आँखोंमें आँसू छलछल उतर आए थे, उसने नागदत्तके हाथको अपने हाथोंमें लेकर कहा—

"नाग ! तुम कितने उदार हो, और सायही तुम उसे जाननेकी कोशिशभी नहीं करना चाहते। तुम कितने सुंदर हो, किन्तु, कभी तुमने यहाँ अपनी ओर झाँकती पुष्पराग और नीलमकी आँखोंको नहीं देखा। नाग ! रोशनाने कितनीही बार मेरे सामने तुम्हारे लिए प्रेम प्रकट किया था। उसका एक कोई मरियलसा भाई है, माँ-बाप चाहते हैं, उसीसे ब्याह कर देना, किन्तु, वह तुमको चाहती है।"

"अच्छा हुआ, जो मैंने नहीं जाना, नहीं तो इन्कार ही करना पड़ता। सोफ़िया ! मैं इन प्रासादपोषिताओंके लिये नहीं हूँ। मैं शायद किसीके लिये नहीं हूँ, क्योंकि मुझसे प्रेम करनेवालीको कभी सुखकी नींद सोनेको नही मिलेगी। किन्तु, यदि तुम चाहो, तो शाहंशाहके पत्र में—पत्र भरके लिये—अपनी स्त्री लिखवा लूँ। शायद यवनदेशमें तुम्हारा कोई प्रिय मिल जाय, फिर तुम अपना रास्ता तै करना।"

(४)

वैद्य नागदत्तकी हर जगह आवभगत होती थी, वह हिन्दू वैद्य था, पार्शव शाहशाह दारयोशका वैद्य रह चुका था, साथ ही चिकित्सामें उसका अद्भुत अधिकार था। पर्शुपुरीमें रहते ही वह यवन भाषा सीख गया था, फिर सोफ़िया उसकी सहचरी थी। उसने मकदूनिया देखी,

फिलिपके पुत्र अलिकसुन्दर (सिकंदर) के गुरु अरस्तूको देखा। नागदत्त स्वयं भी दार्शनिक था, किन्तु भारतीय ढंगका। अरस्तूकी शहंशाहपसंदीसे उसका मतभेद था तो भी वह अरस्तूके लिये भारी सम्मान लेकर मकदूनियासे बिदा हुआ। अरस्तूकी सबसे बड़ी बात जो उसे पसंद आई वह यह थी, कि सत्यकी कसौटी दिमाग नहीं, जगत्के पदार्थ, प्रकृति है। अरस्तू प्रयोग—तजर्बेको बहुत ऊँचा स्थान देता था। नागदत्तको अफ़सोस होता था कि भारतीय दार्शनिक सत्यको मनसे उत्पन्न करना चाहते हैं। नागदत्तने अरस्तूके मनस्वी शिष्यकी प्रशंसा उसके गुरूके मुँहसे सुनी थी, और खुद भी कई बार उससे बात-चीत की थी। उस तरुणमें असाधारण शौर्य ही नहीं बल्कि असाधारण परख भी थी।

नागदत्तने अरस्तूसे एथेन्स जाकर लौट आनेके लिये छुट्टी ली थी, किन्तु, उसे क्या मालूम था कि यही उसकी यवन दार्शनिकसे अन्तिम भेंट होगी।

वीरोंकी जननी गणतन्त्रकी विजय ध्वजा-धारिणी एथेन्स नगरी के भीतर वह उतनीही श्रद्धा और प्रेमके साथ प्रविष्ट हुआ, जितना कि तक्षशिलाके लिये करता। नगर फिरसे आबाद हो गया था किन्तु सोफ़ियाने बतलायाकि अब यह वह एथेन्स नहीं रहा। वेनस् ज्युपितरके मंदिर अब भी अमर कलाकारोंकी सुन्दर कृतियोंसे अलंकृत थे, किन्तु एथेन्सके नागरिकोंमे वह उत्साह, वह जीवन नहीं था, जिसे कि सोफ़ियाने देखा था।

सोफियाके पिताका घर—नहीं उसकी भूमिपर बने घरका स्वामी कोई मकदूनियन व्यापारी था। उस घरको देखकर वह इतनी उद्विग्न हुई, कि एक दिन-रात उसकी चेष्टायें उसकी स्वाभाविक गंभीरताके विरुद्ध होती थीं, किन्तु वह बोलती कम थी। कभी उसके नेत्रोंसे आसुओंके बूँद झरते थे, और कभी वह संग मर्मरकी मूर्तिसी निश्चल हो जाती। नागदत्त समझ गया कि अपने बाल्यके प्रिय स्थानको ऐसी अवस्थामें

देखकर उसकी यह हालत हुई है। किन्तु, बड़ी मुश्किल यह थी, कि समझानेका वहाँ अवसर न था और अन्तमें सोफियाके इस मर्मान्तक शोकका असर नागदत्त पर भी पड़ा।

जब सोफिया फिर प्रकृतिस्थ हुई तो वह बिल्कुल बदली हुई थी। अपने शरीरको सजानेका उसे कभी ख्याल न होता था, किन्तु अब वह गणतान्त्रिक एथेन्सकी तरुणियोंकी भाँति अपने खुले सुवर्ण-केशोंको ताजे फूलोंकी मालाकी मेखलासे बाँधती थी। बदन पर यवन सुन्दरियोंका पैर तक लटकता अनेक चुनावों वाला सुन्दर कंचुक होता और पैरोंमे अनेक बद्धियोंकी चप्पल! उसके सुन्दर श्वेत ललाट, गुलाबी कपोलों, अतिरक्त ओठोंमें तारुण्य, सौन्दर्य और स्वास्थ्यका अद्भुत सम्मिश्रण था। और प्रसन्नता, मुस्कान तो उसके चेहरे, ओठों पर, हर वक्त नाचती रहती थी।

नागदत्तको यह देखकर आश्चर्य नहीं, अपार हर्ष हुआ। उसके पूछने पर सोफियाने कहा—

"प्रिय नाग! मैने जीवनको अब तक एकमात्र शोक और चिन्ता की वस्तु समझ रखा था, किन्तु, मुझे वह दृष्टि गलत मालूम हो रही है। जीवन पर इस तरहकी एकांगी दृष्टि जीवनके मूल्यको कम कर देती है, और उसके कार्य करनेकी क्षमताको भी निर्बल कर देती है। आखिर तुम भी नाग! तक्षशिलाके भविष्यके लिये कम चिन्ता नही रखते, किन्तु तुम चित्तको शीतल रख उपाय सोचनेमे सारी शक्ति लगाते हो।"

"मुझे बड़ी प्रसन्नता है सोफी! तुम्हें इतना आनन्दित देखकर।"

"मुझे आनन्द क्यों न होगा, मैंने एथेन्समे लौटकर अपने प्रियको पा लिया।"

नागदत्तने हर्षोल्लाससे पुलकित हो कहा—"यह और भी आनदकी बात है कि तुमने अपने प्रियको इतने दिनों बाद पा लिया।"

"मैं देखती हूँ, नाग! तुम मनुष्य नहीं हो, देवताओंसे भी ऊपर हो, तुममें ईर्ष्या छू तक नहीं गई है।"

"ईर्ष्या! ईर्ष्याका यहाँ क्या काम? मैंने सोफी! क्या जिम्मा नहीं

लिया था, तुम्हें यवन,देशमें पहुँचानेका ? मैंने क्या तुमसे कहा नहीं था कि तुम वहाँ अपने प्रियको ढूँढ लेना ?"

"हाँ, कहा था।"

"तुम्हारे इस असाधारण हर्षको देखकर मुझे ख्याल होने लगा था, कि तुम्हें कोई असाधारण प्रिय वस्तु प्राप्त हुई है।"

"तुम्हारा ख्याल ठीक निकला नाग !"

"अच्छा तो मुझे आज्ञा दो तुम्हारे प्रियतमको यहाँ निमंत्रित करनेकी, या यदि वह अभी यहाँ न आ सकता हो तो उसे देखनेकी।"

"किन्तु, तुम इतने उतावले क्यों हो रहे हो ?"

"सचमुच ही मैं उतावला हो रहा हूँ। तुम गलत नहीं कह रही हो,।" नागदत्तने अपनेको रोकनेकी कोशिशकी।

सोफ़ियाको भय मालूम होने लगा, कि वह अपने आँसुओंको रोक न सकेगी। उसने एक ओर मुँह फेरकर कहा—

"देख सकते हो, किन्तु, तुम्हें एथेन्सके तरुणका भेस धारण करना होगा, इससे कुछ अच्छा।"

"वह नया तोगा, नया चप्पल जो तुम कल खरीद लाईं, मैं उसे पहिने लेता हूँ।"

"जाओ, पहिन आओ, तब तक मैं अपने प्रियतमके लिये माला ले लूँ, लिदिया उसे गूँथ रही है।"

"अच्छा" कह नागदत्त दूसरे कमरेमें चला गया। सोफ़िया बैठकके बड़े दर्पणके सामने खड़ी हुई, उसने अपने वस्त्रों और फूलके आभूषणों पर एक बार फिर हाथ फेरा, फिर एक मालाको दर्पणके पीछे रख, चुपकेसे कमरेके द्वार पर जाकर बोली—

'नाग ! बहुत देर हो रही है, कहीं मेरा प्रियतम किसी प्रमोद-शालामें न चला जाये।"

"जल्दी कर रहा हूँ सोफ़ी ! यह तुमने कैसा तोगा ला दिया है, इसकी चुंदन ठीक नहीं बैठ रही है।"

"मैं सहायता कर दूँ।"

"बड़ी कृपा होगी।"

उलझी चुंदनका सुलझाना आसान था। फिर नागदत्तने नये चप्पलको पहिना। नागदत्तके खिले मुँहकी ओर देखनेका सोफीको साहस नहीं हुआ। उसने उसके हाथको पकड़कर कहा—"पहिले चलो दर्पण में अपनी नई पोशाकको देख तो लो।"

"तुमने देख लिया सोफ़ी! यही बहुत है। विनीत भेस होना चाहिये।"

"हाँ, मै तो समझती हूँ विनीत है, किन्तु एक बार देख लेना बुरा नहीं है।"

सोफीने नागदत्तको दर्पणके सामने खड़ा कर दिया, वह अपने वस्त्रको देखने लगा। उसी वक्त उसने माला निकाल कर कहा—

"यह माला मैंने प्रियतमके लिये बनाई है।"

"बहुत अच्छी माला है, सोफी।"

"किन्तु, मालूम नहीं उसे कैसी लगेगी।"

"क्यों, बहुत अच्छी लगेगी।"

"उसके पीले केश हैं, और यह माला अतिरक्त गुलाबोंकी है।"

"सुन्दर मालूम होगी।"

"जरा तुम्हारे शिरपर रखकर देख लूँ।"

"तुम्हारी मर्ज़ी। मेरे भी केश पीले हैं।"

"इसीलिये तो निश्चय कर लेना चाहती हूँ।" मालाको शिर पर रख कर सामनेसे देख फिर दर्पणसे मुँह दूसरी ओर घुमानेके लिये कह "तो तुम आज मेरे प्रियतमको देखोगे नाग! अभी, यह देखो।"

नागने मुँह घुमाया, सोफिया की अंगुली दर्पणकी ओर नागदत्त के प्रतिबिंबकी ओर थी। उसने आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा—"यह है मेरा प्रियतम!" और फिर दूसरे ही क्षण उसने अपनी भुजाओं में नागदत्तको बाँध उसके ओठों पर अपने ओठोंको रख दिया। नागदत्त

कितनी देर तक चुप रहा, फिर दोनोंने ओठोंको हटा अपने कपोलसे उसके कपोलको लगाकर कहा—

"मेरा प्रियतम! कितना अच्छा है, नाग?"

"रोची! मैं अपनेको तुम्हारे योग्य नहीं समझता।"

"मैं अपनेको समझती हूँ। मेरे नाग! अब मृत्यु तक हम साथ रहेंगे।"

नागदत्तके आँसुओंका बाँध अब टूटा, उसने कहा—"मृत्यु तक!"

(५)

नागदत्तकी बड़ी इच्छा थी, सलामीकी खाड़ी देखनेकी, जहाँ कि यवन नौसेनाने पार्शवोंको जबर्दस्त पराजय दी थी। दोनों स्थलके रास्ते चले जा रहे थे। नागदत्त अपनेमें नया उत्साह पा रहा था, और उसका ध्यान रह रहकर तक्षशिलाकी ओर जाता था। दोनों रास्तेमें एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे थे, उस वक्त रोचिनाने कहा—

"सुना न नाग! फिलिप मर गया, अलिकसुंदर मकदूनियाका राजा बना है, और वह बड़ी जबर्दस्त सैनिक तैयारी कर रहा है।"

"हाँ, वह सारे यवन (भूमध्य)-सागरके तट पर अधिकार करना चाहता है। किन्तु इसके पूर्वी और दक्षिणी (मिश्रका) तट तो पार्शवोंके हाथमें है।"

"जिसका अर्थ है, वह पार्शवोंसे युद्ध करना चाहता है।"

"और इस प्रकार गणतंत्री यवनोंसे अपने राज्यकी स्थापनामें सहायता लेना चाहता है। एक ढेलेसे दो चिड़िया मारना चाहता है रोची! शाहंशाहको यवन सागरसे हटाना—यदि और आगे न बढ़ सका तो—और अभिमानी यवनगणोंकी राजभक्तिको प्राप्त करना।"

"अरस्तूने उसको शिक्षा दी, अरस्तूने उसके साहसको बढ़ाया।"

"दार्शनिक अरस्तूने!"

"हाँ, और उसके गुरु अफलातूँने एक आदर्श गणकी कल्पना की थी, किन्तु उसमें भी उसने साधारण जनताको हरवाहा-चरवाहा ही

रखना चाहा। अरस्तूने आदर्श गणकी जगह "आदर्श" राजा चक्रवर्ती-की कल्पनाकी। क्या जाने यह यवन चक्रवर्ती पार्शव शाहंशाहको हराकर कहाँ तक जाय।"

"एक बार पैर बढ़ा देनेपर उसे रोकना अपने हाथमे नहीं रहता सोफी! और उधर मेरा सहपाठी विष्णुगुप्त चाणक्य भी मगधमें चक्रवर्ती खोजने गया था।"

"क्या यवन और हिन्दू चक्रवर्तियोंका सिन्धुतटपर मिलन तो न होगा?"

"पहिली पीढ़ीमें नहीं तो दूसरी पीढ़ीमें सोफी! किन्तु, तब पृथिवी कितनी छोटी हो जायगी।"

× × ×

समुद्रतटसे वह नावपर सलामीके लिए रवाना हुए। समुद्र शान्त था, हवा बिल्कुल रुकी हुई थी। सोफी और नागदत्त दोशताब्दीके पहिलेके इस समुद्रको बड़े कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे देख रहे थे, जबकि उसने पार्शवोंकी नौवाहिनीके ध्वंस करनेमे सहायता प्रदान की थी।

समुद्रमें काफी दूर चले जानेपर एक भारी तूफान आया। दोनों अभी ख्यालमें थे, कि यह तो सौ साल पहिलेवाला तूफान है, उसी वक्त उनकी दृष्टि नौकारोहियोंके भयभीत चेहरोंपर पड़ी, और फिर देखा कि पाल टूट गया, और नाव करवट होने लगी। स्थिति स्पष्ट थी। सोफीने इसी वक्त नागदत्तको अपनी भुजाओंसे बाँध छातीसे लगा लिया, उसके चेहरेपर मुस्कुराहट थी, जब उसने कहा—"मृत्यु तक।"

"हाँ, मृत्यु तक"—कह नागदत्तने सोफियाके ओठोंपर अपने ओठोंको रख दिया, फिर दोनों चार भुजपाशों मे बँध गए।

दूसरे क्षण नाव उलट गई, दोनों सचमुच मृत्यु तक साथी रहे।

११—प्रभा

काल—५० ईसवी

(१)

साकेत (अयोध्या) कभी किसी राजाकी प्रधान राजधानी नहीं बना। बुद्धके समकालीन कोसलराज प्रसेनजित्‌का यहाँ एक राजमहल ज़रूर था; किन्तु राजधानी थी श्रावस्ती (सहेटमहेट), वहाँसे छै योजन दूर। प्रसेनजित्‌के दामाद अजातशत्रुने कोसलकी स्वतन्त्रताका अपहरण किया, उसी वक्त श्रावस्तीका भी सौभाग्य लुट गया। सरयू-तटपर बसा साकेत पहले भी नौ-व्यापारका ही नहीं, बल्कि पूरब (प्राची) से उत्तरापथ (पंजाब) के सार्थ-पथपर बसा रहनेसे स्थल-व्यापारका भी भारी केन्द्र था। यह पद उसे बहुत समय तक प्राप्त रहा। विष्णुगुप्त चाणक्यके शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्यने मगधके राज्यको पहले तक्षशिला तक, फिर यवनराज शैलाक्ष (सैल्यूकस्) को पराजित कर हिन्दूकुश पर्वतमाला (अफ़ग़ानिस्तान) से बहुत पच्छिम हिरात और आमू दरिया तक फैलाया। चन्द्रगुप्त और उसके मौर्य-वंशके शासनमें भी साकेत व्यापार-केन्द्रसे ऊपर नहीं उठ सका। मौर्य-वंश-ध्वंसक सेनापति पुष्यमित्रने पहले-पहल साकेतको राजधानीका पद प्रदान किया; किन्तु शायद पाटलिपुत्रकी प्रधानताको नष्ट करके नहीं। वाल्मीकिने अयोध्या नामका प्रचार किया; जब उन्होंने अपनी रामायणको पुष्यमित्र या उसके शुंगवंशके शासन-कालमें लिखा था। इसमें तो शक ही नहीं कि अश्वघोषने वाल्मीकिके मधुर काव्यका रसास्वादन किया था। कोई ताज्जुब नहीं, यदि वाल्मीकि शुंग-वंशके आश्रित कवि रहे हों जैसे कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके, और शुंग-वंशकी राजधानीकी महिमाको बढ़ाने ही के लिए उन्होंने जातकोंके दशरथकी राजधानी

वाराणसीसे बदलकर साकेत या अयोध्या कर दी और रामके रूपमें शुंग-सम्राट् पुष्यमित्र या अग्निमित्रकी प्रशंसाकी—वैसे ही, जैसे कालिदासने 'रघुवंश'के रघु और 'कुमारसंभव'के कुमारके नामसे पिता-पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्तकी की।

सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामीका बधकर सारे मौर्य साम्राज्यको नहीं ले सका। पंजाब सारा यवनराजा मिनान्दरके हाथमें चला गया, और एक बार तो उसने साकेतपर भी घेरा डाल दिया था, जैसा कि पुष्यमित्रके पुरोहित ब्राह्मण पतजलिने लिखा है। इससे यह भी पता लगता है कि पुष्यमित्रके शासन-कालके आरम्भिक दिनोंमे भी साकेतका ख़ास महत्त्व था, और यह भी कि पतंजलि और पुष्यमित्रके समय अयोध्या नहीं, साकेत ही इस नगरका नाम था।

पुष्यमित्र, पतजलि और मिनान्दरके समयसे हम दो सौ साल और पीछे आते हैं। इस समय भी साकेतमें बड़े-बड़े श्रेष्ठी (सेठ) बसते थे। लक्ष्मीका निवास होनेसे सरस्वतीकी भी थोड़ी-बहुत क़द्र होना ज़रूरी था, और फिर धर्म तथा ब्राह्मणोंका गुड़-चींटेकी तरह आ मौजूद होना भी स्वाभाविक था। इन्हीं ब्राह्मणोंमें एक धन-विद्या-सम्पन्न कुल था, जिसके स्वामीका नाम कालने भुला दिया; किन्तु स्वामिनीका नाम उसके पुत्रने अमर कर दिया। ब्राह्मणीका नाम था सुवर्णाक्षी। उसके नेत्र सुवर्ण जैसे पीले थे। उस वक्त पीले-नीले नेत्र ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें आम तौरपर पाए जाते थे, और पीली आँखोंका होना दोष नहीं समझा जाता था। ब्राह्मणी सुवर्णाक्षीका एक पुत्र उसीकी भाँति सुवर्णाक्ष, उसीकी भाँति पिंगल केश और उसीकी भाँति सुगौर था।

(२)

वसन्तका समय था। आमकी मजरी चारों ओर अपनी सुगन्धिको फैला रही थी। वृक्ष पुराने पत्तोंको छोड़ नए पत्तोंका परिधान धारण किए हुए थे। आज चैत्र शुक्ला नवमी तिथि थी। साकेतके नर-नारी सरयूके तटपर जमा हो रहे थे—तैराकीके लिए। तैराकी द्वारा ही

साकेतवासी वसन्तोत्सव मनाया करते थे। तैराकीमें तरुण-तरुणी दोनों भाग लेते थे और नंगे बदन एक घाटपर। तरुणियोंमे कितनी ही कर्पूर-श्वेत यवनियाँ (यूनानी स्त्रियाँ) थीं, जिनका सुन्दर शरीर यवन चित्रकार-निर्मित अनुपम मर्मरमूर्त्ति-जैसा था, जिसके ऊपर उनके पिंगल या पाण्डुर केश बड़े सुन्दर मालूम होते थे। कितनी ही नील या पीत केशधारिणी सुवर्णाक्षी ब्राह्मण-कुमारियाँ थीं, जो सौन्दर्यमें यवनियोंसे पीछे न थीं। कितनी ही घनकृष्णकेशी गोधूमवर्णा वैश्य-तरुणियाँ थीं, जिनका अचिरस्थायी मादक तारुण्य कम आकर्षक न था। आज सरयू-तटपर साकेतके कोने-कोनेकी कौमार्य रूपराशि एकत्रित हुई थी। तरुणियोंकी भाँति नाना कुलोंके तरुण भी वस्त्रोंको उतार नदीमें कूदनेके लिए तैयार थे। उनके व्यायाम-पुष्ट, परिमंडल सुन्दर शरीर कर्पूरसे गोधूम तकके वर्णवाले थे। उनके केश, मुख, नाकपर ख़ास-ख़ास कुलोंकी छाप थी। आजके तैराकी-महोत्सवसे बढ़कर अच्छा अवसर किसी तरुण-तरुणीको सौन्दर्य परखनेका नहीं मिल सकता था। हर साल इस अवसरपर कितने ही स्वयंवर सम्पन्न होते थे। माँ-बाप तरुणोंको इसके लिए उत्साहित करते थे। उस वक्तका यह शिष्टाचार था।

नावपर सरयू-पार जा तैराक तरुण-तरुणियाँ जलमें कूद पड़े। सरयूके नीले जलमें कोई अपने सुवर्ण, पाण्डु, रजत या रक्त दीर्घ कचोंको प्रदर्शित करते और कोई अपने नीले-काले केशोंको नील जलमें एक करते दोनों भुजाओंसे जलको फाड़ते आगे बढ़ रहे थे। उनके पास कितनी ही क्षुद्र नौकाएँ चल रही थीं, जिनके आरोही तरुण-तरुणियोंको प्रोत्साहन देते तथा थक जानेपर उठा लेते थे—हज़ारों प्रतिस्पर्द्धियोंमे कुछका हार स्वीकार करना सम्भव था। सभी तैराक शीघ्र आगे बढ़नेके लिए पूरी चेष्टाकर रहे थे। जब तट एक-तिहाई दूर रह गया, तो बहुत-से तैराक शिथिल पड़ने लगे। उस वक्त पीछेसे लपकते हुए केशोंमें एक पिंगल था और दूसरा पाण्डुश्वेत। तटके समीप आनेके साथ उनकी गति और तीव्र हो रही थी। नावपर चलने-

वाले साँस रोककर देखने लगे। फिर उन्होंने देखा कि दोनों पिंगल और पाण्डुश्वेत केश सबसे आगे बढ़कर एक पाँतीमें जा रहे हैं। तट और नज़दीक आ गया। लोग आशा रखते थे कि उनमेंसे एक आगे निकल जायगा; किन्तु देखा, दोनों एक ही पाँतीमे चल रहे हैं। शायद नौकारोहियोंमेंसे किसीने उन्हें एक-दूसरेको आगे जानेके लिए ज़ोर देते सुना भी।

दोनों साथ ही तीरपर पहुँचे। उनमें एक तरुण था और दूसरी तरुणी। लोगोंने हर्षध्वनिकी। दोनोंने कपड़े पहने। खुली शिविकाओं पर उनकी सवारी निकाली गई। दर्शकोंने फूलोंकी वर्षा की। तरुण-तरुणी एक-दूसरेको नज़दीकसे देख रहे थे। लोग उनके तैरनेके कौशल ही को नहीं, बल्कि सौन्दर्यकी भी प्रशंसा कर रहे थे। किसीने पूछा—'कुमारीको तो मैं जानता हूँ; किन्तु तरुण कौन है, सौम्य?'

'सुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोषका नाम नहीं सुना?'

'नहीं, मैं अपने पुरोहितके ही कुलको जानता हूँ। हम व्यापारी इतना जाननेकी फ़ुर्सत कहाँ रखते हैं?

तीसरेने कहा—'अरे अश्वघोषकी विद्याकी ख्याति साकेतसे दूर दूर तक पहुँच गई है। यह सारे वेदों और सारी विद्याओंमें पारंगत है।'

पहला—'लेकिन इसकी उम्र तो चौबीस से अधिककी न होगी।'

तीसरा—'हाँ, इसी उम्रमें। और इसकी कविताएँ लोग झूम-झूमकर पढ़ते-गाते हैं।'

दूसरा—'अरे, यही कवि अश्वघोष है, जिसके प्रेम गीत हमारे तरुण-तरुणियोंकी जीभपर रहते हैं?'

तीसरा—'हाँ, यह वही अश्वघोष है। और कुमारीका क्या नाम है, सौम्य?'

पहला—'साकेतमें हमारे यवन-कुलके प्रमुख तथा कोसलके विख्यात सार्थवाह दत्तमित्रकी पुत्री प्रभा।'

दूसरा—'तभी तो! ऐसी सुन्दरता दूसरेमें बहुत कम पाई जाती है।

देखनेमें शरीर कितना कोमल मालूम होता है; किन्तु तैरनेमें कितना दृढ़ !'

पहला—'इसके माँ-बाप दोनों बड़े स्वस्थ बलिष्ठ हैं।'

नगरोद्यानमें जा विशेष सम्मान प्रकट करते हुए लोगोंको दोनों तैराकोंका परिचय दिया गया, और उन दोनोंने भी लज्जावनत सिरसे एक-दूसरेका परिचय प्राप्त किया।

(२)

साकेतका पुष्योद्यान सेनापति पुष्यमित्रके शासनका स्मारक था। सेनापतिने इसके निर्माणमें बहुत धन और श्रम लगाया था और यद्यपि अब न पुष्यमित्रके वंशका राज्य रहा, न साकेत कोई दूसरी श्रेणीकी भी राजधानी, तो भी नैगम (नगर-सभा) ने उसे साकेतका गौरव समझ उसी तरह सुरक्षित रखा, जैसा कि वह दो सौ वर्ष पूर्व पुष्यमित्रके शासन-कालमे था। बाग़के बीचमें एक सुन्दर सरोवर था, जिसके नील विशुद्ध जलमे पद्म, सरोज, पुंडरीक आदि नाना वर्णोंके कमल खिले तथा हंस-मिथुन तैर रहे थे। चारों ओर श्वेत पाषाणके घाट थे, जिनके सोपान स्फटिककी भाँति चमकते थे। सरोवरके किनारे भर हरी दूबकी काफी चौड़ी मगजी लगी थी। फिर कहीं गुलाब, जूही, बेला आदि फूलोंकी क्यारियाँ थीं और कहीं तमाल-बकुल-अशोक-पंक्तियोंकी छाया। कहीं लता-गुल्मोंसे घिरे पाषाण-तलवाले छोटे-बड़े लतागृह थे और कहीं कुमार-कुमारियोंके कन्दुक-क्षेत्र। उद्यानमें कई पाषाण, मृत्तिका और हरित वनस्पतिसे आच्छादित रम्य क्रीड़ा-पर्वत थे। कहीं-कहीं जलयंत्र (फव्वारे) जल-शीकर छोड़ वर्षाका अभिनय कर रहे थे।

अपराह्णमें अकसर एक लतागृहके पास साकेतके तरुण-तरुणियोंकी भीड़ देखी जाती। यह भीड़ उनकी होती, जो भीतर स्थान न पा सके होते। आज भी वहाँ भीड़ थी; किन्तु चारों ओरकी नीरवताके साथ। सभीके कान लतागृहकी ओर लगे हुए थे। और भीतर ? शिलाच्छादित

फर्शपर वही तरुण है, जिसने एक मास पहले तैराकीमें विजय प्राप्त करनेसे इन्कार कर दिया था। उसके शरीरपर मसृण (चिकने) सूक्ष्म दुकूलका कंचुक है। उसके दीर्घ पिंगल-केश सिरके ऊपर जूटकी तरह बँधे हुए हैं। उसके हाथमें मुखर वीणा है, जिसपर तरुणकी अंगुलियाँ अप्रयास थिरकती मनमाना स्वर निकाल रही हैं। तरुण अर्द्धमुद्रित नेत्रोंके साथ लयमें लीन कुछ गा रहा है—दूसरेके नहीं, अपने ही बनाए गीत। उसने अभी 'वसन्त-कोकिला'का गीत संस्कृतमें समाप्त किया। सस्कृतके बाद प्राकृत गीत गाना ज़रूरी था, क्योंकि गायक कवि जानता है, उसके श्रोताओंमें प्राकृत-प्रेमी ज़्यादा हैं। कविने अपनी नवनिर्मित रचना 'उर्वशी-वियोग' सुनाई—उर्वशी लुप्त हो गई और पुरूरवा अप्सरा (पानीमें चलनेवाली) कहकर उर्वशीको सम्बोधित करते पर्वत, सरिता, सरोवर, वन, गुल्म आदिमें ढूँढ़ता फिरता है। वह अप्सराका दर्शन नहीं कर पाता; किन्तु उसके शब्द उसे वायुमें सुनाई देते हैं। पुरूरवाके आँसुओंके बारेमे गाते वक्त गायकके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे, और सारी श्रोतृ-मण्डलीने उसका साथ दिया।

संगीत-समाप्तिके बाद लोग एक-एक करके चलने लगे। अश्वघोष जब बाहर निकला, तो कुछ तरुण-तरुणी उसे घेरकर खड़े हो गए। उनमें सूजे आरक्त नयनोंके साथ प्रभा भी थी। एक तरुणने आगे बढ़कर कहा—'महाकवि!'

'महाकवि! मैं कवि भी नहीं हूँ, सौम्य!'

'मुझे अपनी श्रद्धाके अनुसार कहने दो, कवि! साकेतके हम यवनोंकी एक छोटी-सी नाट्यशाला है।'

'नृत्यके लिए! मुझे भी नृत्यका शौक है।'

'नृत्यके लिए ही नहीं, उसमें हम अभिनय भी किया करते हैं।'

'अभिनय!'

हाँ, यवन-रीतिका अभिनय एक विशेष प्रकारका होता है, कवि जिसमें भिन्न-भिन्न काल तथा स्थानके परिचायक बड़े-बड़े चित्रपट रहते

हैं और सभी घटनाओंको वास्तविक रूपमें दिखलानेकी कोशिशकी जाती है।'

'मुझे कितना अफ़सोस है, सौम्य! साकेतमें जन्म लेकर भी मैंने ऐसे अभिनयको नहीं देखा।'

'हमारे अभिनयोंके दर्शक यहाँके यवन-परिवारों तथा कुछ इष्ट-मित्रों तक ही सीमित हैं, इसीलिए बहुत-से साकेतवासी यवन-अभिनय—'

'नाटक कहना चाहिए, सौम्य!'

'हाँ, यवन नाटकको नहीं जानते। आज हम लोग एक नाटक करनेवाले हैं। हम चाहते हैं कि तुम भी हमारे नाटकको देखो।'

'ख़ुशीसे। यह आप मित्रोंका बहुत अनुग्रह है।'

अश्वघोष उनके साथ चल पड़ा। नाट्यशालामें रंगके पास उसे स्थान दिया गया। अभिनय किसी यवन (यूनानी) दुखान्त नाटकका था और प्राकृत भाषामें किया गया था। यवन कुल-पुत्रों और कुल-पुत्रियोंने हरएक पात्रका अभिनय किया था। अभिनेताओं तथा अभि-नेत्रियोंकी पोशाक यवन-देशीयों-जैसी थी। भिन्न-भिन्न दृश्योंके चित्रपट भी यवनी रीतिसे बने थे। नायिका बनी थी प्रभा, अश्वघोषकी परिचिता। उसके अभिनयकौशलको देखकर वह मुग्ध हो गया। नाटकके बीचमें एक उचित अवसर देखकर पूर्व-परिचित यवन तरुणने 'उर्वशी-वियोग' गानेकी प्रार्थना की। अश्वघोष बिना किसी हिचकके वीणा उठा रंग-मंचपर पहुँच गया। फिर उसने अपने गानेसे स्वयं रो, दूसरोंको रुलाया। उस वक्त एक बार उसकी दृष्टि प्रभाके कातर नेत्रोंपर पड़ी थी।

नाटक समाप्त हो जानेपर नेपथ्यमें सारे अभिनेता कुमार-कुमारियोंका कविसे परिचय कराया गया। अश्वघोषने कहा—'साकेत में रहते हुए भी मैं इस अनुपम कलासे बिल्कुल अनभिज्ञ रहा। आप मित्रोंका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ कि मुझे एक अज्ञात प्रभालोकका दर्शन कराया।'

'प्रभालोक' कहते समय कुछ तरुणियोंने प्रभाकी ओर देखकर मुस्करा दिया। अश्वघोषने फिर कहा—'मेरे मनमें एक विचार आया है। तुमने जैसे यवन नाटकके प्राकृत-रूपान्तरका आज अभिनय किया, मैं समझता हूँ, उसी ढंगके अनुसार हम अपने देशकी कथाओंको ले अच्छे नाटक तैयारकर सकते हैं।'

'हमे भी पूरा विश्वास है, यदि कवि, तुम करना चाहो, तो मूल यवन-नाटकसे भी अच्छा नाटक तैयार कर सकते हो।'

'इतना मत कहो, सौम्य! यवन नाटककारका मैं शिष्य-भर ही होने लायक हूँ। अच्छा, यदि मैं उर्वशीवियोगपर एक नाटक लिखूँ?'

'हम उसका अभिनय भी करनेके लिए तैयार हैं; लेकिन साथ ही पुरूरवाका पार्ट तुम्हें लेना होगा।'

'मुझे उज्र न होगा, और मैं समझता हूँ, थोड़ा-सा अभ्यास कर लेनेपर मैं उसे बुरा न करूँगा।'

'हम चित्रपट भी तैयार करा लेंगे।'

'चित्रपटपर हमें पुरूरवाके देशके दृश्य अंकित करने होंगे। मैं भी चित्र कुछ खींच लेता हूँ। अवसर मिलनेपर उसमें मैं कुछ मदद करूँगा।'

'तुम्हारे आदेशके अनुसार दृश्योंका अंकित होना अच्छा होगा। पात्रोंकी वेश-भूषका निर्देश भी, सौम्य, तुम्हें ही देना होगा। और पात्र?'

'पात्र तो, सौम्य, सभी अभी नहीं बतलाए जा सकते। हाँ, उनकी संख्या कम रखनी होगी। कितनी रखनी चाहिए?'

'सोलहसे बीस तकको हम आसानीसे तैयार कर सकते हैं।'

मैं सोलह तक ही रखनेकी कोशिश करूँगा।'

'पुरूरवा, तो सौम्य, तुम्हें बनना होगा और उर्वशीके लिए हमारी प्रभा कैसी रहेगी? आज तुमने देखा उसके अभिनयको।'

'मेरी अनभ्यस्त आँखोंको तो वह निर्दोष मालूम हुआ।'

'तो प्रभाको ही उर्वशी बनना होगा। हमारी मण्डलीमें जो काम जिसको दिया जाता है, वह उससे इन्कार नहीं कर सकता।'

प्रभाके नेत्र कुछ संकुचित होने लगे थे, किन्तु प्रमुख तरुणके 'क्यों प्रभा!' कहनेपर उसने ज़रा रुककर 'हाँ' कर दिया।

(४)

अश्वघोषने प्रमुख यवन तरुण—बुद्धप्रिय—के साथ कुछ यवन-नाटकोंके प्राकृत-रूपान्तरोंको पढ़ा और उनके स्थान आदिके संकेतके बारेमें बातचीत की। नाटकके चित्रपटोंका नामकरण उसने यवन (यूनानी) कलाके स्मरणके रूपमें यवनिका रखा। नाटकको संस्कृत-प्राकृत, गद्य-पद्य दोनोंमें लिखा। उस समयकी प्राकृत संस्कृतके इतना समीप थी कि सम्भ्रान्त परिवारोंमें उसे आसानीसे समझा जाता था। यही 'उर्वशी वियोग' प्रथम भारतीय नाटक था, और अश्वघोष था प्रथम नाटककार। कविका यह पहला प्रयास था, तो भी वह उसके 'राष्ट्रपाल', 'सारिपुत्र' आदि नाटकोंसे कम सुन्दर नहीं था।

रंगकी तैयारी तथा अभिनयके अभ्यासमें तरुण कविको खाना-पीना तक याद नहीं रहता था। इसे वह अपने जीवनकी सुन्दरतम घड़ियाँ समझता था। रोज़ घण्टों वह और प्रभा साथ तैयारी करते थे। तैराकीके दिन उनके हृदयोंमें पड़ा प्रेम-बीज अब अंकुरित होने लगा था। यवन तरुण-तरुणी अश्वघोषको आत्मीयके तौरपर देखना चाहते थे, इसलिए वह इसमें सहायक होना अपने सौभाग्यकी बात समझते थे। एक दिन घड़ियोंके तूलिका संचालनके बाद अश्वघोष नाट्यशालाके बाहर क्षुद्रोद्यानमें रखी आसन्दिकापर जा बैठा। उसी समय प्रभा भी वहाँ आ गई। प्रभाने अपने स्वाभाविक मधुर स्वरमें कहा—'कवि, तुमने उर्वशी-वियोग गीत बनाते वक्त अपने सामने क्या रखा था?'

'उर्वशी और पुरूरवाके कथानकको।'

'कथानक तो मैं भी जानती हूँ। उर्वशीको अप्सरा करके तुमने बार-बार सम्बोधित किया था ?'

'उर्वशी थी ही अप्सरा।'

'फिर उसमें पुरूरवाको उर्वशीके वियोगमे सरिता, सरोवर, पर्वत, वन सबमें ढूँढनेमें विह्वल चित्रित किया था।'

'पुरूरवाकी उस अवस्थामें यह स्वाभाविक था।'

'फिर उर्वशी-वियोगके गायकने लतागृहमें अश्रुधाराको वीणाकी भाँति गीतका संगी बना दिया था।'

'गायक और अभिनेताको तन्मय हो जाना चाहिए, प्रभा।

'नहीं, तुम मुझे साफ़ बतलाना नहीं चाहते।'

'तुम क्या समझती हो ?'

'मैं समझती हूँ, तुमने किसी पुरानी उर्वशीके वियोगका गान नहीं गाया था।'

'और फ़िर ?'

'तुम्हारी उर्वशी—उर-वसी (हृदयमें बसी)—थी, वह अप्सरा—अप = सरयूके जलमें, सरा = तैरनेवाली—थी।'

'और फिर ?'

'इस उर्वशीका पुरूरवा किसी हिमालय-जैसे पर्वत, वनखण्ड, सरिता, सरोवर और गुल्ममें नहीं बल्कि साकेतकी सरयू, पुष्पोद्यानके सरोवर, क्रीड़ा-पर्वत, वन और गुल्मको ढूढ़ता फिरता था।'

'और फिर ?'

'उसके आँसू किसी पुराने पुरूरवाकी सहानुभूतिमें नहीं, बल्कि अपनी ही आगको बुझानेके लिए निकले थे।'

'और एक बात मैं भी कहूं, प्रभा !'

'कहो, अब तक मैंने ही अधिक कहा।'

'और उस दिन लतागृहसे निकलते वक्त मैंने तुम्हारे इन मनहर नीले नयनों को आरक्त और अधिक सूजे देखा था।'

'तुमने अपने गानसे रुलाया था।'

'तुमने अपने वियोगसे वह गीत प्रदान किया था।'

'किन्तु, तुम्हारे गीतकी उर्वशी कोई पाषाणी थी, कवि! कमसे कम तुमने उसे वैसा ही चित्रित किया था।'

'क्योंकि मैं व्याकुल और निराश था।'

'क्या समझकर?'

'मैं उस अचिरप्रभा (बिजली)के दर्शनका सौभाग्य न प्राप्तकर सकूँगा। वह कबकी मुझे भूल गई होगी।'

'तुम इतने अकिंचन थे, कवि?'

'जब तक आत्म-विश्वासका कोई कारण न हो, तब तक आदमी अकिंचन छोड़ अपनेको और समझ सकता है।'

'तुम साकेत ही नहीं, हमारे इस विस्तृत भूखंडके महिमा-प्राप्त कवि हो। तुम साकेतके सरिता-तरणके विजेता हो। तुम्हारी विद्याकी प्रशंसा हर साकेतवासीकी जिह्वापर है। और नारीकी दृष्टिसे देखो, तो साकेतकी सुन्दरियाँ तुम्हें अपनी आँखोंका तारा बनाकर रखनेको तैयार हैं।'

'किन्तु, इससे क्या? मेरे लिए तो अपनी उर्वशी सब-कुछ थी। मैंने जब दो सप्ताह उसे नहीं देखा, तो जीवन निस्सार मालूम होने लगा। सच कहता हूं प्रभा, मैंने अपने चित्तको कभी इतना निर्बल न पाया था। यदि एक सप्ताह और न तुम्हें देख पाया होता, तो न-जाने क्या कर डालता।'

'कवि, तुम इतने स्वार्थी न बनो। तुम अपने देशके शाश्वत गायक हो। तुमसे अभी वह क्या-क्या आशा रखता है। तुम्हारे इस "उर्वशी-वियोग" नाटकका जानते हो, कितना बखान हो रहा है?'

'मैंने नहीं सुना।'

'पिछले सप्ताह मेरे बन्धु एक यवन व्यापारी भरुकच्छ (भड़ौंच) से यहाँ आए थे। भरुकच्छमें यवन नागरोंकी भारी संख्या रहती है।

हमारे साकेतके यवन (यूनानी) तो हिन्दू हो गए हैं; किन्तु भरुकच्छ-वाले अपनी भाषाको भूले नहीं हैं। भरुकच्छ में यवन देशसे व्यापारी और विद्वान् आया करते हैं। हमारे यह बन्धु यवन-साहित्यके बड़े मर्मज्ञ हैं। उन्होंने तुम्हारे नाटककी उपमा एम्पीदोकल और युरोपिद्—श्रेष्ठ यवन-नाटककारी—की कृतियोंसे दी। वह इसे उतरवाकर ले गए हैं। कहते थे—मिस्रका राजा तुरमाय (तालिमी) बड़ा नाट्य-प्रेमी है, उसके पास यवन भाषान्तर कर इसे भेजेंगे। भरुकच्छसे मिस्रको बराबर जलपोत आया-जाया करते हैं। जिस वक्त मैं उनके वार्तालाप को सुन रही थी, उस वक्त मेरा हृदय अभिमानसे फूल उठा था।'

'मेरे लिए तुम्हारे हृदयका अभिमानही सब-कुछ है, प्रभा!'

'कवि, तुम अपना मूल्य नहीं जानते।'

'मेरे मूल्यकी कसौटी तुम थीं, प्रभा! अब मैं उसे जानता हूँ।'

'नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए! तुम्हें प्रभाके प्रेमी अश्वघोष और युगके महान् कवि अश्वघोषको अलग-अलग रखना होगा। प्रभाके प्रेमी अश्वघोषको चाहे जो कुछ कहो-करो; किन्तु महान् कविको उससे ऊपर, सारी वसुन्धराका समझना होगा।'

'तुम जैसा कहोगी, इस बातमें मैं तुम्हारा अनुसरण करूँगा।'

'मैंने अपनेको इतनी सौभाग्यशालिनी होनेकी कभी आशा न की थी।'

'क्यों?'

'सोचती थी, तुम मुझे भूल चुके होगे।'

'तुम इतनी साधारण थीं।'

'तुम्हारे सामने थी और अब भी हूँ।'

'तुमसे मुझे कविताका नया वर मिला है। मैं अपनी कविताओंमें अब नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति पाता हूँ। "उर्वशी-वियोग" गीत तुम्हारी प्रेरणासे प्रकट हुआ और यह नाटक भी। नाटकको मैं देशकी अपनी चीज़ बना रहा हूँ, प्रभा! किन्तु तुमने कैसे समझा कि मैं तुम्हें भूल जाऊँगा?'

'कहींसे भी मैं अपनेको तुम्हारे पास पहुँचने लायक नहीं पाती थी। एक-एककर जब मैं तुम्हारे गुणोंसे पूर्णतया परिचित हो गई, तो उससे निराश ही होती गई। साकेतकी एक-से-एक सुन्दरियोंको मैंने तुम्हारे नाम पर बावली होते देखा, इससे भी आशा नहीं हो सकती थी। फिर सुना, तुम उच्च कुलके ब्राह्मण हो। यद्यपि मैं ब्राह्मणोंके बाद उच्च स्थान रखने वाले राजपुत्र यवनकी कन्या हूँ, तो भी कुलीन ब्राह्मण—जो माता-पिताकी सात पीढ़ियों तककी छान-बीन किए बिना व्याह नहीं करता—कैसे मेरे प्रेमका स्वागत करेगा ?'

'मुझे खेद है प्रभा, जो अश्वघोषने तुम्हारे चित्तको इस तरह दुखाया।'

'तो तुम प्रभा—' कहते-कहते वह रुक गई।

अश्वघोषने प्रभाके वाष्पपूर्ण नेत्रोंको चूम, कण्ठसे लगाकर कहा—'प्रभा, अश्वघोष सदा तुम्हारा रहेगा। काल भी तुम्हें उससे पराई नहीं बना सकता।'

प्रभाके नेत्रोंसे छलछल आँसू बह रहे थे और अश्वघोष कण्ठसे लगाए उसके आँसुओंको पोंछ रहा था।

'उर्वशी-वियोग' बहुत अच्छा खेला गया और एकसे अधिक बार। साकेतके सभी सम्भ्रान्त नागरिकोंने उसे देखा। उन्हें कभी ख़याल भी न था कि अभिनयकी कला इतनी पूर्ण, इतनी उच्च हो सकती है। अश्वघोषने अन्तिम यवनिकापातके समय कई बार दोहराया था कि मैंने सब कुछ यवन-रंगमचसे लिया है; किन्तु उसके नाटक इतने स्वभूमिज थे कि कोई उनपर किसी प्रकारके विदेशी प्रभावकी गन्ध भी नहीं पाता था।

जिस तरह अश्वघोषके संस्कृत-प्राकृत गीत और कविताएँ साकेत और कोसलकी सीमा पार कर गए थे, उसके नाटक उससे भी दूर तक फैल गए। उज्जयिनी, दशपुर, सुप्पारक, भरुकच्छ, शाकला (स्यालकोट), तक्षशिला, पाटलिपुत्र जैसे महानगरोंमें—जहाँ कि यवनोंकी काफी संख्या और उनकी नाट्यशालाएँ थीं—उसके नाटक रंगमंचपर

बहुत जल्द पहुँचे, और फिर सारे ही सामन्तों और व्यापारियोंमें वह बहुत प्रिय हुए।

प्रभाके माता-पिता अश्वघोषको योग्यतम जामाता माननेके लिए तैयार थे।

(५)

अश्वघोषका रंगमञ्चपर अभिनय और यवन-कन्यासे प्रेम उसके माता-पितासे छिपा नहीं रह सकता था। इसे सुनकर पिता ख़ास तौरसे चिन्तित हुए। ब्राह्मणने सुवर्णाक्षीको पहले समझानेके लिए कहा। माताने जब कहा कि हमारे ब्राह्मण-कुलके लिए ऐसा सम्बन्ध अधर्म है, तब ब्राह्मणोंके सारे वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता अश्वघोषने माँको पुराने ऋषियोंके आचरणोंके सैकड़ों प्रमाण दिए (जिनमेंसे कुछको पीछे उसने अपनी 'वज्रच्छेदिका'में जमा किया, जो आज भी 'वज्रच्छेदिकोपनिषद्'के नामसे उपनिषद्-गुटकामें सम्मलित है)। किन्तु माँने कहा—'यह तो सब ठीक है, बेटा, किन्तु आजके ब्राह्मण उस पुराने आचरणको नहीं मानते।'

'तो ब्राह्मणोंके लिए मैं एक नया सदाचार उपस्थित करूँगा।'

माँ अश्वघोषकी युक्तियोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी, किन्तु जब उसने कहा कि प्रभा और मेरे प्राण अलग नहीं रह सकते, तो वह पुत्रके पक्षमें हो गई और बोली—'पुत्र, मेरे लिए तू सब-कुछ है।'

अश्वघोषने एक दिन प्रभाको माँके पास भेजा। माँने रूपके समान ही गुण और स्वभावमें भी आगरी इस कन्याको देख आशीर्वाद दिया।

किन्तु ब्राह्मण इसे मान नहीं सकता था। उसने एक दिन अश्वघोषसे सीधे कहा—'पुत्र, हमारा श्रोत्रियोंका श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल है। हमारी पचासों पीढ़ियोंसे सिर्फ कुलीन ब्राह्मण-कन्याएँ ही हमारे घरमें आया करती हैं। आज यदि इस सम्बन्धको तुम स्वीकार करते हो, तो हम और हमारी आगे आनेवाली सन्तान सदाके लिए जातिभ्रष्ट हो जायँगे; हमारी सारी मान-मर्यादा जाती रहेगी।'

अश्वघोषके लिए प्रभाका त्याग अचिन्तनीय था।

ब्राह्मणने फिर प्रभाके माता-पितासे अनुनय-विनय की; किन्तु वह असमर्थ थे। अन्तमें उसने प्रभाके सामने पगड़ी रखी। प्रभाने इतना ही कहा कि मैं अश्वघोषसे आपकी बात कहूँगी।

(६)

प्रभा और अश्वघोष अभिन्न सहचर थे। चाहे सरयू-तीर हो, चाहे पुष्पोद्यान, यात्रोत्सव, नृत्यशाला, नाट्यशाला या दूसरी जगह, एकके होनेपर दूसरेका वहाँ रहना ज़रूरी था। प्रभा सूर्य-प्रभाकी भाँति अश्वघोषके हृदय-पद्मको विकसित रखती थी। दूध-सी छिटकी चाँदनीके प्रकाशमें दोनों अकसर सरयूकी रेतमें जाते और प्रणय-लीलामें ही अपना समय नहीं बिताते थे, बल्कि वहाँ कितनी ही बार जीवनकी दूसरी गम्भीर बातें भी छिड़ जातीं। एक दिन उस चाँदनीमें सरयूकी काली धाराके पास श्वेत सिकतापर बैठी प्रभाके रूपका चित्र वह अपने मनमें खींचने लगा। एकाएक उसके मुँहसे उद्गार निकल आया—"प्रभा, तुम मेरी कविता हो। तुम्हारी ही प्रेरणाको पाकर मैंने "उर्वशी-वियोग" लिखा। तुम्हारी यह रूपराशि मुझसे कितने ही काव्य-सौन्दर्यकी रचना कराएगी। कविता भीतरकी अभिव्यक्ति बाहर नहीं है, बल्कि वह बाहरकी अभिव्यक्ति भीतर है, इस तत्त्वको मुझे तुमने समझाया, प्रिये!"

प्रभा अश्वघोषकी बातको सुनते-सुनते शीतल सिकतातलपर लेट रही। उसके दीर्घ अम्लान केशोंको बालूपर फैलते देख अश्वघोषने उसके सिरको अपनी गोदमें ले लिया। नेत्रोंको ऊपरकी ओर करके प्रभा अश्वघोषके मुखकी रूपरेखा देख रही थी। अश्वघोषकी बातको समाप्तिपर पहुँचते देख प्रभाने कहा—'मैं तुम्हारी सभी बातोंको मानने के लिए तैयार हूँ। काव्य वस्तुतः साकार सौन्दर्यसे प्रेरित हुए बिना पूर्ण नहीं होता। मैं भी तुम्हारा काव्यमय चित्रण करती, और मूक चित्रण मैं करती भी हूँ; किन्तु कविता मेरे बसकी बात नहीं है। मैंने उस दिन कहा था कि तुम्हें अपने भीतर दो अश्वघोषोंको देखना चाहिए, जिनमें

युगके महान् कवि शाश्वत अश्वघोषका ही ख़याल मुख्य होना चाहिए; क्योंकि वह एक व्यक्तिका नहीं, बल्कि विश्वकी महानिधि है। कालकाराम के उस विद्वान् भिक्षुकी बात याद है न, जिसे हम परसों देखने गए थे ?'

'वह अद्भुत मेधावी मालूम होता है।'

'हाँ, और बहुत दूर-दूर तक घूमा भी। उसका जन्म मिस्रकी अलसदा (सिकंदरिया) नगरीका है।'

'हाँ मैंने सुना है। एक बात मुझे समझमें नहीं आती, प्रिये ! यवन सारे ही बौद्धधर्मको क्यों मानते हैं ?'

'क्योंकि वह उनकी मनोवृत्ति और स्वतंत्र प्रकृतिके अनुकूल मालूम होता है।'

'लेकिन बौद्ध सबको विरागी, तपस्वी और भिक्षु बनाना चाहते हैं ?'

'बौद्धोंमें गृहस्थोंकी अपेक्षा भिक्षु बहुत कम होते हैं, और बौद्ध गृहस्थ जीवनका रस लेनेमें किसीसे पीछे नहीं रहते।'

'इस देशमें और भी कितने ही धर्म हैं, आख़िर यवनोंका बौद्धधर्म पर इतना पक्षपात क्यों ? यह फिर भी समझमें नहीं आता।'

'यहाँ बौद्ध ही सबसे उदार धर्म है। जब हमारे पूर्वज भारतमे आए, तो सब म्लेच्छ कहकर हमसे घृणा करते थे। आक्रमणकारी यवनोंकी बात मैं नहीं कर रही हूँ, यहाँ बस जानेवाले अथवा व्यापार आदिके सम्बन्धसे आनेवाले यवनोंके साथ भी यही बर्ताव था। किन्तु बौद्ध उनसे कोई घृणा नहीं करते थे। यवन वस्तुतः अपने देशमें भी बौद्धधर्मसे परिचित हो गए थे।'

'अपने देशमे भी ?'

'हाँ, चन्द्रगुप्त मौर्यके पौत्र अशोकके समय कितने ही बौद्ध-भिक्षु यवन-लोक (यूनानी लोगों) मे पहुँचे थे। हमारे धर्मरक्षित इस देशमें आकर भिक्षु नहीं बने। वह मिस्रमें अलसदा (सिकंदरिया) के विहार में भिक्षु हुए थे।'

'मै, उनसे फिर मिलाना चाहता हूँ, प्रभा !'

'ज़रूर मिलना चाहिए। वह तुम्हें और गंभीर बातें बतलायँगे—बौद्धधर्मके बारेमें ही नहीं, यवन-दर्शनके बारेमें भी।'

'यवन भी दार्शनिक हुए हैं?'

'अनेक महान् दार्शनिक, जिनके बारेमें भदन्त धर्म-रक्षित तुम्हें बतलायेंगे। किन्तु, प्रिय, कहीं बौद्ध दर्शन सुन प्रभासे वैराग्य न कर लेना।'—कह प्रभाने अपनी बाँहोंमें अश्वघोषको बाँध लिया, मानो उसे कोई छीने लिए जा रहा हो।

''कुछ बातें तो कालकारामकी मुझे भी बहुत आकर्षक मालूम हुईं। ख़याल आता था, यदि हमारा सारा देश कालकाराम-जैसा होता।'

प्रभाने बैठकर कहा—'नहीं, प्रिय! कहीं तुम मुझे छोड़कर कालकाराममें न चले जाना।'

'तुम्हें छोड़ जाना जीते-जी! असम्भव प्रिये! मैं कह रहा था वहाँकी भेद-भाव-शून्यताके बारेमे। देखो, वहाँ यवन धर्मरक्षित, पार्शव (पर्सियन) सुमन जैसे देश-देशान्तरोंके विद्वान् भिक्षु रहते हैं, और साथ ही हमारे देशके ब्राह्मणसे चण्डाल तक सारे कुलोंके भिक्षु एक साथ रहते, एक साथ खाते-पीते और एक साथ ज्ञान अर्जन करते हैं। कालकारामके उन बूढ़े काले-काले भिक्षुका क्या नाम है?'

'महास्थविर धर्मसेन। वह साकेतके सभी विहारोंके भिक्षुओंके प्रधान हैं।'

'सुना है, उनका जन्म-कुल चण्डाल है। और उनके सामने मेरे अपने चचा भिक्षु शुभगुप्त उकड़ूँ बैठ प्रणाम करते हैं। ख़याल करो, कहाँ शुभगुप्त एक समृद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण-कुलके विद्वान् पुत्र और कहाँ चण्डाल-पुत्र धर्मसेन!'

'किन्तु महास्थविर धर्मसेन भी बड़े विद्वान् हैं।'

'मैं ब्राह्मणोंके धर्मकी दृष्टिसे कहता हूँ, प्रभा! क्या उनका बस चलता, तो धर्मसेन मनुष्य भी बन सकते थे, देवता बनकर पूजित होनेकी तो बात ही और!'

'बुद्धने अपने भिक्षु-संघको समुद्र कहा है। उस संघमें जो भी जाता है, वह नदियोंकी भाँति नाम-रूप छोड़ समुद्र बन जाता है।'

'और बौद्ध गृहस्थ भी, प्रिये, वैसा ही क्यों नहीं करते?'

'बौद्ध गृहस्थ देशके दूसरे गृहस्थोंसे छिन्न-भिन्न होकर रह नहीं सकते। आखिर उनके ऊपर परिवारका बोझ होता है।'

'मैं तो बहुत अच्छा समझता, यदि कालकारामके भिक्षुओंकी भाँति सारे नगर और जनपद (देहात) के लोग भेद-शून्य हो जाते— न कोई जातिका भेद होता, न कोई वर्णका।'

'एक बात मैंने तुमसे नहीं कही, प्रिय! तुम्हारे पिताने एक दिन मेरे सामने पगड़ी रख दी, और कहने लगे कि प्रभा, अश्वघोषको तू मुक्त कर दे।'

'गोया तुम्हारे मुक्त करनेपर वह अपने पुत्रको पा सकेंगे। तुमने क्या कहा, प्रभा?'

'मैंने कहा, आपकी बात मैं अश्वघोषसे कहूँगी।'

'और तुमने कह दिया। मुझे ब्राह्मणोंके पाखण्डोंसे अपार घृणा है। अपार घृणासे सारा गात्र जलता है। एक ओर वह कहते हैं कि हम अपने वेद-शास्त्र-को मानते हैं। मैंने बड़े परिश्रम और श्रद्धासे उनकी सारी विद्याएँ पढ़ीं; किन्तु वह क्या मानते हैं, मुझे तो कुछ समझमें नहीं आता। शायद वह केवल अपने स्वार्थको मानते हैं। जब किसी बातको उनके पुराने ऋषियोंके वचनोंसे निकालकर दिखलाओ, तो कहते हैं—इसका आजकल रिवाज नहीं है। रिवाजको ही मानो या ऋषि-वाक्योंको ही। यदि पुरानी वेद-मर्यादाको किसीने तोड़ा, तभी न नया रिवाज चला। कायर, डरपोक, स्वार्थी ऐसोंको ही कहते हैं। बस, इन्हें मोटे बछड़ोंका मास और अपनी भूयसी-दक्षिणा चाहिए। यह कोई भी ऐसा काम करनेके लिए तैयार हैं, जिससे इनके आश्रय-दाता राजा और सामन्त प्रसन्न हों।'

'ग़रीबों—और जिनको यह नीच जातियाँ कहते हैं, वह सभी ग़रीब हैं—के लिए इनके धर्ममें कोई स्थान नहीं है।'

'हाँ, यवन, शक, आभीर दूसरे देशोंसे आई जातियोंको इन्होंने क्षत्रिय, राजपुत्र मान लिया; क्योंकि उनके पास प्रभुता थी, धन था। उनसे इन्हें मोटी-मोटी दक्षिणा मिल सकती थी। किन्तु अपने यहाँके शूद्रों, चण्डालों, दासोंको इन्होंने हमेशाके लिए वहीं रखा। जिस धर्मसे आदमीका हृदय ऊपर नहीं उठता, जिस धर्ममें आदमीका स्थान उसकी थैली या डंडेके अनुसार होता है, मैं उसे मनुष्यके लिए भारी कलंक समझता हूँ। संसार बदलता है। मैंने ब्राह्मणोंके पुरानेसे आज तकके ग्रन्थोंमें आचार-व्यवहारोंको पढ़कर वहाँ साफ परिवर्तन देखा है; किन्तु आज इनसे बात करो, तो वह सारी बातोंको सनातन स्थिर मनवाना चाहते हैं। यह केवल जड़ता है, प्रिये!'

'मैं तो कारण नहीं हो रही हूँ इन उद्‌गारोंके लिए, मेरे घोष!'

'कारण होना प्रशंसाकी बात है मेरी प्रभा! तुमने मेरी कवितामें नया प्राण, नई प्रेरणा दी है। तुम मेरी अन्तर्दृष्टिमें भी नया प्राण, नई प्रेणा दे मेरा भारी हित कर रही हो। किसी वक्त समझता था कि मैं ज्ञानके छोरपर पहुँच गया। ब्राह्मण इस झूठे अभिमानके बहुत आसानीसे शिकार हो जाते हैं; किन्तु अब जानता हूँ कि ज्ञान ब्राह्मणोंकी श्रुतियों, उनकी ताल तथा भुर्जपत्रकी पोथियों तक ही सीमित नहीं है; वह उनसे कहीं विशाल है।'

'मैं एक स्त्री-मात्र हूँ।'

'और जो स्त्री-मात्र होनेसे किसीको नीच कहता है. उसे मैं घृणाकी दृष्टिसे देखता हूँ।'

'यवनोंमें स्त्रियोंका सम्मान तब भी दूसरोंसे ज्यादा है। उनमें आज भी चाहे निस्सन्तान मर जाय; किन्तु एक स्त्रीके रहते दूसरेसे व्याह नहीं हो सकता।'

'और यह ब्राह्मण सौ-सौसे ब्याह कराते फिरते हैं सिर्फ़ दक्षिणाके लिए, छिः! मैं ख़ुश हूँ, जो कोई यवन ब्राह्मण-धर्मको नहीं मानता।'

'बौद्ध होनेपर भी पूजा-पाठके लिए हमारे यहाँ ब्राह्मण आते हैं।'

'जब उन्होंने अपने स्वार्थके लिए यवनोंको क्षत्रिय स्वीकार कर लिया है, तो उतना क्यों नहीं करेंगे—दक्षिणाकी जो बात ठहरी।'

'तो क्या मैं तुम्हारे ब्राह्मणत्वके अभिमानको दूर करनेमें कारण तो नहीं बनी?'

'बुरा नहीं हुआ। यदि ब्राह्मण-अभिमान मुझमें और तुममे भेद डालना चाहता है, तो वह मेरे लिए तुच्छ, घृणास्पद वस्तु है।'

यह जानकर मुझे कितनी ख़ुशी है कि तुम मुझे प्रेम करते, हो, घोष!'

'अन्तस्तमसे प्रिये! तुम्हारे प्रेमसे वंचित अश्वघोष निष्प्राण जड़ रह जायगा।'

'तो मेरे प्रेमका पुरस्कार, बरदान भी देना चाहते हो?'

'उसी एक प्रेमको छोड़कर सब-कुछ।'

'मेरा प्रेम यदि मेरे शाश्वत अश्वघोष, युगके महान् कवि अश्वघोषको ज़रा भी हानि पहुँचा सका, तो उसे धिक्कार है।'

'साफ कहो, प्रिये!'

'प्रेममें मैं बाधा नहीं डालना चाहती; किन्तु मैं उसे तुम्हारे शाश्वत निर्माणमें सहायक देखना चाहती हूँ। और यदि मैं न रही—'

अश्वघोषने विक्षिप्तकी भाँति खड़े हो प्रभाको उठाकर जब दृढ़तापूर्वक अपनी छाती और गलेसे लगाया, तो प्रभाने देखा, उसके गाल भीगे हुए हैं। वह अश्वघोषको बार-बार चूमती और बार-बार दुहराती रही—'मेरे अश्वघोष!' फिर थोड़ा शान्त होनेपर प्रभाने कहा—'सुनो मेरे प्यारे घोष, मेरा प्रेम तुमसे कुछ बड़ी चीज़ माँगना चाहता है, उसे तुम्हें देना चाहिए।'

'तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है प्रिये!'

'फिर तुमने मुझे बात भी समाप्त नहीं करने दी?'

'किन्तु तुम तो वज्र-अक्षर अपने मुँहसे निकालना चाहती थीं।'

'लेकिन उस वज्र-अक्षरको शाश्वत अश्वघोषके हितके लिए कहना ज़रूरी है। मेरा प्रेम चाहता है कि महान् कवि अश्वघोष अपने शाश्वत कवि-रूपकी भाँति प्रभाके प्रेमको भी शाश्वत समझे, उसे सामने बैठी प्रभाके शरीरसे न नापे। शाश्वत अश्वघोषकी प्रभा शाश्वत तरुणी, शाश्वत सुन्दरी है। मैं बस इतना ही तुम्हारे मनसे मनवाना चाहती हूँ।'

'तो वास्तविक प्रभाकी जगह तुम काल्पनिक प्रभाको मेरे सामने रखना चाहती हो?'

'मैं दोनोंको वास्तविक समझती हूँ, मेरे घोष! फ़र्क़ इतना ही है कि उनमें से एक सिर्फ़ सौ या पचास वर्ष रहनेवाली है, दूसरी शाश्वत। तुम्हारी प्रभा तुम्हारे 'उर्वशी-वियोग'में अमर रहेगी। मेरे प्रेमको अमर रखनेके लिए तुम्हें अमर अश्वघोषकी ओर ध्यान रखना होगा। और अब रात बहुत बीत गई, सरयूका तीर भी सोया मालूम होता है, हमें भी घर चलना चाहिए।'

'और मैंने अमर प्रभाका एक चित्र अपने मन पर अंकित किया है।'

'प्रियतम! बस, यही चाहती हूँ।'—कहकर अश्वघोषके कपोलोंपर अपने रेशम-जैसे कोमल केशोंको लगा वह नीरव खड़ी रही।

(७)

एक बड़ा आँगन है, जिसके चारों ओर बराम्दा और पीछे तितल्ले मकानकी कोठरियाँ हैं। बराम्दोंमें अरगनोंपर पीले वस्त्र सूख रहे हैं। आँगनके एक कोनेमें एक कुआँ तथा पास ही एक स्नान-कोष्ठक है। आँगनकी दूसरी जगहोंमें कितने ही वृक्ष हैं, जिनमे एक पीपलका है। पीपलके गिर्द वेदी है और फिर हटकर पत्थरका कटघरा, जिसपर हज़ारों दीपकोंके रखनेके लिए स्थान बने हुए हैं। प्रभाने घुटने टेक उस सुन्दर

वृक्षकी वंदना करके कहा—'प्रिय, इसी जातिका वह वृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर सिद्धार्थ गौतमने अपने प्रयत्न, अपने चिन्तन द्वारा मनकी भ्रान्तियों को हटा बोध प्राप्त किया, और तबसे वह बुद्धके नामसे प्रख्यात हुए। सिर्फ उसी मधुर स्मृतिके लिए हम इस जातिके वृक्षोंके सामने सिर झुकाते हैं।'

'अपने प्रयत्न, अपने चिन्तन द्वारा मनकी भ्रान्तियोंको हटा बोध प्राप्त करनेका प्रतीक ! ऐसे प्रतीककी पूजा होनी चाहिए, प्रिये ! ऐसे प्रतीककी पूजा अपने प्रयत्न—आत्म-विजय—की पूजा है।'

फिर दोनों भदन्त धर्मरक्षितके पास गए। वह उस वक्त आँगनके एक बकुल वृक्षके नीचे बैठे थे, जहाँ नवपुष्पित फूलोंकी मधुर सुगंधि फैल रही थी। प्रभाने बौद्ध-उपासिकाकी भाँति पंच-प्रतिष्ठितसे (पैरके दोनों पजों-घुटनों, हाथकी दोनों हथेलियों और ललाटको धरतीपर रख कर) वंदना की। अश्वघोषने खड़े ही खड़े सम्मान प्रदर्शन किया। फिर दोनों ज़मीनपर पड़े चर्म-खंडोंको लेकर बैठ गए। भदन्तके शिष्य अश्वघोषको बातचीत करनेके लिए आया समझ वहाँसे हट गए। साधारण शिष्टाचारकी बातोंके बाद अश्वघोषने दर्शनकी बात छेड़ी। धर्मरक्षितने कहा—'ब्राह्मण-कुमार, दर्शनको भी बुद्धों—ज्ञानियों—के धर्ममें बंधन और भारी बंधन (दृष्टि संयोजन) कहा गया है।'

'तो भदन्त, क्या बुद्धके धर्ममें दर्शनका स्थान नहीं है ?

'स्थान क्यों नहीं, बुद्धका धर्म दर्शनमय है; किन्तु बुद्ध उसे बेड़ेकी भाँति पार उतरनेके लिए बतलाते हैं, सिरपर उठाकर ढोनेके लिए नहीं।'

'क्या कहा, बेड़ेकी भाँति ?'

'हाँ, बिना नाववाली नदीमें लोग बेड़ा बाँधकर उससे पार उतर जाते हैं; किन्तु पार उतरकर बेड़ेकी उन लकड़ियोंको उपकारी समझ सिरपर ढोते नहीं फिरते।'

अपने धर्मके लिए भी जिस पुरुषको इतना कहनेकी हिम्मत थी, उसने ज़रूर सत्य और उसके बलको देखा होगा। भदन्त, बुद्धके दर्शन-

की कोई ऐसी बात बतलायें, जिसके जाननेसे हमें अपने मनसे भी बहुत-सा समझ जानेमें सुभीता हो।'

'अनात्मवाद है, कुमार! ब्राह्मण आत्मको नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्व मानते हैं। बुद्ध-जगत्के भीतर-बाहर किसी ऐसे नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्वको नहीं मानते, इसीलिए उनके दर्शनको अनात्मवाद—अनित्यता, क्षण-क्षण उत्पत्ति-विनाश—का दर्शन कहते हैं।'

'मेरे लिए यह एक बात ही काफ़ी है, भदन्त! बेड़ेकी भाँति धर्म तथा अनात्मवादकी घोषणा करनेवाले बुद्धको अश्वघोष शतशः प्रणाम करता है। अश्वघोष जिसको ढूँढ़ता था, उसे उसने पा लिया। मैं अपने भीतर अनुभव कर रहा था कुछ ऐसी ही लहरोंको; किन्तु मैं उसे नाम नहीं दे पाता था। आज बुद्धकी शिक्षाको लोकने ठीकसे माना होता, तो दुनिया दूसरी ही होती।'

'ठीक कहा कुमार! हमारे यवन देशमें भी महान् दार्शनिक पैदा हुए हैं, जिनमें पिथागोर, हेराक्लितु तो भगवान्के समय जीवित थे; सुक्रात, देमोक्रितु, अफलातूँ, अरस्तू उनसे थोड़ा बादमें हुए। इन यवन दार्शनिकोंने गम्भीर चिन्तन किया; किन्तु हेराक्लितुको छोड़ सभी शाश्वतवाद—नित्यवाद—से ऊपर नहीं उठ सके। वर्तमानका उन्हें हदसे ज़्यादा मोह था। यही कारण था कि वह भविष्यको भी उससे बाँध रखना चाहते थे। हेराक्लितु अवश्य बुद्धकी भाँति जगत्को किसी दो क्षण भी वैसा ही नहीं मानता था; किन्तु इसमें उसका एक वैयक्तिक स्वार्थ था।'

'दर्शन-विचारमें वैयक्तिक स्वार्थ!'

'पेट सभीके पास होता है, कुमार! उस वक्त हमारे एथेन्स नगरमें गण—बिना राजाका राज्य—था। पहले हेराक्लितुके परिवारकी तरहके बड़े-बड़े सामन्त गण-शासनके सूत्रधार थे, पीछे उनको हटाकर व्यापारियों—सेठों—ने शासन सूत्र अपने हाथमें लिया। इस अवस्थामें

हेराक्लितु असन्तुष्ट था। वह परिवर्त्तन चाहता था; किन्तु आगे जानेके लिए नहीं, बल्कि पीछेकी ओर लौटनेके लिए।'

'हमे परिवर्त्तन चाहिए; किन्तु आगे बढ़नेके लिए पीछे लौटनेके लिए नहीं; मैं समझता हूँ, भदन्त, अतीत मुर्दा है।'

'बिल्कुल ठीक कहा, कुमार! बुद्ध परिवर्त्तन चाहते थे, और बेहतर जगत्को लानेके लिए भिक्षु-सघको उन्होंने उसी भविष्यके जगत्के लिए एक नमूनेके तौरपर पेश किया।'

'जहाँ जात-पाँत नहीं, जहाँ ऊँच-नीच नहीं।'

'जहाँ सबके लिए भोग समान है, जहाँ सबके लिए सेवा करना समान है। तुमने हमारे महास्थविर धर्मसेनको बाहर झाड़ू लगाते देखा होगा?'

'वह काले-काले?'

'हाँ, वह हममें सबसे श्रेष्ठ हैं। हम रोज़ पंच-प्रतिष्ठितसे उनकी वदना करते हैं। सारे कोसल-देशके भिक्षु-संघके वह नायक हैं।'

'सुना है, वह चण्डाल-कुलके हैं?'

'भिक्षु-सघ कुल नहीं देखता कुमार वह गुण देखता है। वह अपनी विद्या और अपने गुणोंसे हमारे नायक हैं, हमारे पिता हैं। उनके भिक्षा-पात्रमें यदि पात्र चुपड़ने भरकी भी कोई चीज़ मिल जाती है, तो वह बिना साथियोंको दिए नहीं खाते। यही बुद्धकी शिक्षा है। पहननेके तीन कपड़ों, मिट्टीके भिक्षा-पात्र, सूई जलछक्का, अस्तुरा और कमरबन्दके सिवाय हमारी सारी चीज़ें सघकी हैं। यह घर, बाग़, मंच, पीठ आदि सब सघके हैं। हमारे किसी-किसी विहारमें खेत भी हैं वह भी संघके हैं। सघ देख-सुनकर एक आदमीको भिक्षु बनाता है; किन्तु जो संघमें प्रविष्ट हो गया—भिक्षु बन गया—वह सबके समान है।'

'इस तरहका सघ यदि सारे देशके लिए बनता?'

'वह कैसे हो सकता है, कुमार? राजा और धनी कब दूसरोंको बराबर होने देंगे? भिक्षुओंने एक दासको सघमें दाख़िल कर लिया था।

संघमें दाख़िल होते ही वह अदास—सबके समान था; किन्तु जिसका वह दास था, उसने हल्ला मचाना शुरू किया। दूसरे दास-स्वामी भी उसके साथ शामिल हो गए। राजा स्वयं हज़ारों दासोंके स्वामी होते हैं। वह भी अपनी सम्पत्तिपर इस तरहका प्रहार कैसे सह सकते? बुद्ध क्या करते, उन्होंने बचन दिया कि आगेसे संघ दासको अपने भीतर नहीं लेगा। हमारा संघ विषमतापूर्ण समुद्रमे एक छोटा-सा द्वीप है, इसीलिए वह सुरक्षित नहीं है, जब तक कि संसारमें इस तरहकी ग़रीबी, इस तरहकी दासता है।'

(८)

शरतकी पूनो थी। शामसे ही चन्द्रमाका थाल पूर्व क्षितिजपर उग आया था, और जैसे-जैसे क्षितिजपर फैली सूर्यकी अन्तिम लाल किरणें आकाश छोड़ रही थीं, वैसे ही वैसे चन्द्रमाकी शीतल श्वेत किरणें प्रसरित हो रही थीं। अश्वघोष अब अधिकतर प्रभाके घरपर रहा करता था। दोनों छतपर बैठे थे, उसी समय प्रभाने कहा—'प्रियतम, मुझे सरयूकी लहरें बुला रही हैं—वह लहरें, जिन्होंने सबसे पहले तुम्हारा स्पर्श मेरे पास पहुँचाया था, जिन्होंने हमें प्रेम-सूत्रमे बाँधा था। तबसे दो वर्ष हो गए, किन्तु वह दिन आज ही बीता मालूम होता है। हमने कितनी चाँदनी रातें सरयूकी रेतपर बिताईं। वह कितनी मधुर होती हैं! आज फिर मधु चाँदनी है! प्रिय, चलो, चलें सरयूके तीर।'

दोनों चल पड़े। धारा नगरसे दूर थी। चाँदनीमें चमकती सफेद बालूपर वह दूर तक चलते गए। प्रभाने अपने चप्पलोंको हाथमे ले लिया था। उसे पैरोंके नीचे दबती सिकताका स्पर्श सुखद लगता था। उसने अश्वघोषकी कटिको अपने दोनों हाथोंसे लपेटकर कहा—'प्रिय, इस सरयूकी सिकताका स्पर्श कितना आह्लादक है!'

'पैरोंमें गुद्‌गुदी लगती है।'

'जिससे हर्षातिरेक हो रोमांच हो उठता है। प्यारी सरयू सरिता!'

'मैं कई बार सोचता था, प्रिये, कि हम दोनों भाग चलें। भाग चलें उस देशमें, जहाँ हमारे प्रेमकी कोई ईर्ष्या करनेवाला न हो। जहाँ तुम प्रेरणा दो, मैं गीत बनाऊँ और फिर वीणापर हम दोनों गावें। यहाँ सिकतापर इस रात्रिमें मैं अपनी वीणा नहीं ला सकता। लोग आ पहुँचेंगे। उनमेंसे कितनोंकी आँखें ईर्ष्या-कलुषित होंगी।'

'प्रिय, बुरा न मानना। मैं कभी-कभी सोचती हूँ, जब मैं न रही—'

अश्वघोषने बाहोंमें कसकर प्रभाको छातीसे लगा लिया और कहा—'नहीं प्रिये, कदापि नहीं। हम इसी तरह रहेंगे।'

'मैं दूसरे अभिप्रायसे कह रही हूँ, प्रिय! मान लो, तुम न रहे, मैं अकेली रह गई। दुनियामें ऐसा होता है कि नहीं?'

'होता है।'

'अपनी बार तुम नहीं तिलमिलाए, घोष! तुम्हारे न रहनेपर शोक का पहाड़ केवल मेरे ऊपर टूटेगा इसीलिए न?'

'तुम मेरे साथ कितनी निष्ठुरता दिखला रही हो, प्रभा!'

प्रभाने ओठोंको चूमकर अश्वघोषको हर्षोत्फुल्ल करते हुए कहा—'जीवनकी कई दिशाएँ होती हैं। सदा पूर्णिमा ही नहीं, अमावस्या भी आती है। मैं यही कह रही थी कि एकके अभावमें दूसरेको क्या करना चाहिए? तुम्हारे न रहनेपर, जानते हो, मैं क्या करूँगी?'

मुँह गिराकर लम्बी साँस ले अश्वघोषने कहा—'कहो।'

'मैं अपने जीवनका हर्गिज़ अन्त न करूँगी। भगवान् बुद्धने आत्म-हत्याको मूर्खतापूर्ण निन्दनीय कर्म कहा है। तुमने देखा न, मैंने इधर वीणामें बहुत सफलता प्राप्त की है।'

'बहुत। प्रभा, कितनी ही बार तुम्हें वीणा देकर मैं निश्चिन्त हो गाता हूँ।'

'हाँ तो, उस वक्त मेरा अशाश्वत अश्वघोष मुझसे छिन जायगा; किन्तु मैं शाश्वत अश्वघोष—युग-युगके कवि—की आराधना करूँगी। तुम्हारी वीणापर तुम्हारे गानोंको गाऊँगी, सारे जम्बूद्वीपमें और उससे

बाहर भी; जीवन-भर, जब तक कि हमारा जीवन-प्रवाह किसी दूसरे देश-कालमें साकार हो फिर न सम्मिलित हो जायगा। और मेरे न रहनेपर तुम क्या करोगे, प्रियतम?

इन शब्दोंको सुनकर अश्वघोषका अन्तस्तमसे लेकर सारा शरीर कँप गया, जिसे प्रभाने अनुभव किया। अश्वघोष बोलनेका प्रयत्न कर रहा था किन्तु उसका कंठ सूख गया था और उसकी आँखें बरसना चाहती थीं। कुछ क्षणके प्रयत्नके बाद उसने क्षीण-स्वरमें कहा—'बड़ी निष्ठुर होगी वह घड़ी! किन्तु प्रभा, मैं भी आत्म-हत्या न करूँगा। तुम्हारे प्रेमकी प्रेरणा जो-जो गीत मेरे उरमें पैदा करेगी, उन्हें गाऊँगा, जीवनके अन्त तक। मैं तुम्हारे शाश्वत अश्वघोष—' अश्वघोषका कंठ रुद्ध हो गया।

'सरयूकी धार सो रही है, प्रिय! चलो, हम भी चलें।'

(६)

ग्रीष्म ऋतु थी। माता सुवर्णाक्षी बीमार हो गई। अश्वघोष दिन-रात माँके पास रहता था। प्रभा भी दिन-भर वहीं रहती। चिकित्साका कोई असर न हुआ, और सुवर्णाक्षीकी अवस्था बिगड़ती ही गई। पूनो आई, दूधकी-सी चाँदनी छिटकी। सुवर्णाक्षीने आज चाँदनीमें ऊपर ले चलनेको कहा। छतपर उसकी चारपाई पहुँचाई गई। उसका शरीर सिर्फ हड्डियोंका कंकाल रह गया था। रह-रहकर अश्वघोषके हृदयमें टीस लगती। माँने धीमे स्वर, किन्तु स्पष्ट अक्षरोंमें कहा—'पुत्र, यह चाँदनी कितनी सुन्दर है!'

उसी वक्त अश्वघोषके कानोंमें प्रभाके शब्द गूँजने लगे—'मुझे सरयूकी लहरें बुला रही हैं।' उसका कलेजा सिहर उठा। माँने फिर कहा—'प्रभा कहाँ है, पुत्र!'

'पिताके घर गई, माँ! शाम तक तो यहीं थी।'

'प्रभा! मेरी बेटी! अच्छा पुत्र, उसे कभी न भूलना''

शब्द समाप्त भी न होने पाए थे कि एक खाँसी आई, और दो हिचकियोंके बाद सुवर्णाक्षीका शरीर निश्चल हो गया।

सुवर्णाक्षी गई। सुवर्णाक्षी-पुत्रका हृदय फटने लगा। वह रात-भर रोता रहा।

दूसरे दिन मध्याह्न तक वह माँके दाह-कर्ममे लगा रहा। फिर उसे प्रभा याद आई। वह दत्तमित्र-भवन गया। माँ-बाप समझते थे, प्रभा अश्वघोषके पास होगी। अश्वघोषका हृदय रातके प्रहारसे जर्जर हो रहा था, अब और चिन्तित हो उठा। वह प्रभाके शयनकक्षमें गया। वहाँ सभी चीज़े सँभालकर रखी हुई थीं। उसने पलगपर फैलाई सफेद चादरको हटाया। वहाँ उसने अपने चित्रको देखा। प्रभाने उसे एक आगन्तुक यवन चित्रकारसे तैयार करवाया था, और इसके लिए अनिच्छावश अश्वघोषको कितने ही घंटों बैठना पड़ा था। चित्रपर एक म्लान जूहीकी माला पड़ी थी। चित्रके नीचे प्रभाकी मुद्रासे अकित लपेटा तालपत्र-लेख था। अश्वघोषने उसे उठा लिया। रस्सीके बधन पर मुहर लगी काली मिट्टी अभी सूखी न थी। अश्वघोषने रस्सीको काटकर प्रभाकी मुहर लगी मिट्टीको रख लिया। लबे पत्तेको फैलाने पर प्रभाके सुन्दर अक्षरोंमे वहाँ पाँच पक्तियाँ थीं—

"प्रियतम, प्रभा विदाई ले रही है। मुझे सरयूकी लहरोंने बुलाया है। मै जा रही हूँ। तुमने मेरे प्रेमके लिए कोई बचन दिया है, याद है? मैं प्रभाके चिर-तारुण्य, उसके सदा एक-से रहनेवाले सौन्दर्यको दिए जा रही हूँ। अब तुम्हारी आँखोंको पके बालों, टूटे दाँतों, वलित कटिवाली प्रभा कभी नहीं देखनेको मिलेगी। मेरा प्रेम, मेरा यह शाश्वत यौवन तुम्हें प्रेरणा देगा। तुम उस प्रेरणाकी अवहेलना न करना। प्रियतम, यह न ख़याल करना कि मै तुम्हारे कुटुम्बके कलह का ख़यालकर आत्म-हत्या कर रही हूँ—सिर्फ तुम्हें काव्य-प्रेरणा देनेके लिए मै अपने अक्षुण्ण यौवनको प्रदान कर रही हूँ। प्रियतम! प्रभा तुम्हारा अन्तिम मानस आलिंगन और चुम्बन कर रही है।"

कई बार आँखोंके आँसुओंको पोंछकर अश्वघोषने पत्रको समाप्त किया। उसके बाद पत्र उसके हाथसे गिर गया। वह खुद चारपाईपर बैठ गया। उसका हृदय सुन्न हो रहा था। हृदयकी गतिके रुकनेकी वह तन्मय हो प्रतीक्षा कर रहा था। वह मिट्टीकी मूर्त्तिकी भाँति शून्य आँखोंसे ताकता रहा। कितनी ही देर तक इन्तज़ार करनेके बाद प्रभाके पिता-माता आए। उसकी उस अवस्थाको देख वह बहुत शंकित हो गए। फिर पासमें पड़े पत्रको उन्होंने पढ़ा। माँके मुँहसे चीत्कार निकली और वह धरतीपर गिर पड़ी। दत्तमित्र नीरव अश्रुधारा बहाने लगे। अश्वघोष वैसे ही टकटकी लगाए देखता रहा। प्रभाके माँ-बाप देर तक उसकी यह अवस्था देख चुपचाप चले गए। शाम हुई, रात आ गई; किन्तु वह वैसे ही बैठा रहा। उसके आँसू सूख गए और हृदयको काठ मार गया था। बड़ी रात गए वह वैसे ही बैठे-बैठे ऊँघकर लेट गया।

सबेरे जब प्रभाकी माँ आई, तो देखा कि अश्वघोष प्रकृतिस्थ हो किसी चिन्तामें बैठा है। माँने पूछा—'मन कैसा है?

'माँ, अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। प्रभाने जो काम मुझे सौंपा है, अब मैं वही करूँगा। मैंने नहीं समझा था; किन्तु प्रभा जानती थी। वह मेरे कर्त्तव्यको बतला गई है। आत्म-हत्या नहीं, प्रभाने आत्म-दान दिया! हाँ, उस आत्म-दानको आत्म हत्यामें बदलना मेरे हाथमें है; किन्तु मैं ऐसा कृतघ्न नहीं हो सकता।'

माँने अश्वघोषके भावको समझा। अश्वघोष उठ खड़ा हुआ। माँने देखकर पूछा—'कहाँ चले, बेटा?'

'भदन्त धर्मरक्षितसे मिलना चाहता हूँ और सरयूको देखना भी।'

'भदन्त धर्मरक्षित नीचे बैठे हैं और सरयू देखने मैं भी चलूँगी।'
—कहते-कहते उसका गला भर आया।

अश्वघोषने नीचे जा भदन्त धर्मरक्षितकी पंचप्रतिष्ठितसे वंदना करके कहा—'भन्ते, मुझे अब संघमें शामिल कीजिए।'

वत्स; तुम्हारा शोक दारुण है।'

'दारुण है; किन्तु मैं उसके कारण नहीं कह रहा हूँ। प्रभाने मुझको इसके लिए तैयार किया है। मैं जल्दी नहीं कर रहा हूँ।'

'तो भी तुम्हें कुछ दिन ठहरना होगा, संघ इतनी जल्दी नहीं करेगा।'

'मैं प्रतीक्षा करूँगा, भन्ते, किन्तु संघकी शरणमे रहकर।'

'पहले तुम्हें अपने पितासे आज्ञा लेनी होगी। माता-पिताकी आज्ञा के विना सघ किसीको भिक्षु नहीं बनाता।'

'तो मैं आज्ञा लेकर अऊँगा।'

अश्वघोष घरसे निकला। माँ उसके स्वस्थ मस्तिष्क-जैसे वचन सुनकर भी शंकित-हृदया थीं, इसलिए वह भी पीछे-पीछे चली। सरयू पर नाव कर दोनोंने दिन भर नीचेकी ओर धारको ढूँढा; किन्तु कुछ पता नहीं मिला। अगले दिन और नीचे गए; किन्तु कही कुछ न था।

अश्वघोषने घर जा पितासे भिक्षु होनेके लिए आज्ञा माँगी; किन्तु इकलौते बेटेको वह क्यों आज्ञा देने लगा? फिर उसने कहा—मैं माँ और प्रभाके शोकसे पीड़ित हो ऐसा नही कर रहा हूँ, तात! मैंने अपने जीवनके लिए जो कार्य चुना है, उसका यही रास्ता है। तुम देख रहे हो मेरे स्वर, मेरी चेष्टामें किसी प्रकारके चित्त-विकारकी छाप नही है। मुझे इतना ही कहना है—यदि मुझे जीवित रखना चाहते हो, तो आज्ञा दे दो, तात!'

'अच्छा तो कल शाम तक सोचनेका अवसर दो।'

'मै सात दिन तक इन्तज़ार कर सकता हूँ, तात!'

दूसरे दिन शामको पिताने आँखोंमें आँसू भरकर भिक्षु बननेकी आज्ञा दे दी।

साकेतके आर्य सर्वास्तिवाद संघने अश्वघोषको भिक्षु बनाया।

महास्थविर धर्मसेन उनके उपाध्याय और भदन्त धर्मरक्षित आचार्य बने। भदन्त धर्मरक्षित उसी समय नावसे पाटलिपुत्र (पटना) जाने वाले थे, उनके साथ ही अश्वघोषने भी साकेत छोड़ा।

(१०)

भिक्षु अश्वघोषको पाटलिपुत्रके अशोकाराम (मठ) मे रहते दस साल हो गए थे। उन्होंने बौद्धधर्मके साथ बौद्ध-दर्शन तथा यवन-दर्शनका गम्भीर अध्ययन किया। मगधके महासंघके विद्वानोंमे अश्वघोषका बहुत ऊँचा स्थान था। इसी समय पश्चिमसे शक सम्राट् कनिष्क पूर्वकी विजय करते पाटलिपुत्र पहुँचा। पाटलिपुत्र और मगध इस वक्त बौद्ध-धर्मके प्रधान केन्द्र थे। कनिष्ककी बौद्धधर्ममे भारी श्रद्धा थी। उसने भिक्षुसंघसे गन्धार ले जानेके लिए एक योग्य विद्वान् माँगा। सघने अश्वघोषको प्रदान किया।

राजधानी पुरुषपुर (पेशावर)में जाकर अश्वघोषने अपनेको एक ऐसे स्थानमे पाया, जहाँ, शक, यवन, तरुष्क (तुर्क) पारसी तथा भारतीय संस्कृतियोंका समागम होता था। यवन-नाट्यकलाको अश्वघोष पहले ही भारतीय साहित्यमे स्थान दिला चुके थे। यवन दर्शनके गम्भीर विवेचनके बाद उन्होंने उसकी कितनी ही विशेताओं, विश्लेषण-शैली तथा अनुकूल तत्वोंको ले भारतीय दर्शन—विशेषकर बौद्ध-दर्शन—को यवन-दर्शनकी देनसे समृद्ध किया। अश्वघोषने बौद्धोंके लिए यवन दर्शनसे लेनेका रास्ता खोल दिया। फिर तो दूसरे भारतीय विचारक भी मजबूर हुए, और वैशेषिक तथा न्याय इस रास्ते मे सबसे आगे बढ़े—परमाणु, सामान्य, द्रव्य, गुण, अवयवी आदि तत्व इन्होंने यवन-दर्शनसे लिए।

प्रभाने हृदयको विशाल कर दिया था, इसलिए भदन्त अश्वघोषको निज-परका विचार नही था। प्रभाकी प्रेरणासे उन्होंने अनेक काव्य, नाटक कथानक लिखे, जिनमे कितने ही लुप्त हो गए। फिर भी

प्रकृति उनसे विशेष प्रसन्न मालूम होती है, तभी तो मध्य-एशियाकी महाबालुकाराशि (गोबी) ने सत्रह सौ वर्ष बाद उनके 'सारिपुत्र-प्रकरण' (नाटक) को प्रदान किया। उनके 'बुद्ध-चरित' और 'सौन्दरानन्द' अमर काव्य हैं। उन्होंने प्रभाके दिए वचनको अच्छी तरह निबाहा, और प्रभाके अम्लान सौंदर्य ने उनके काव्यको सुन्दरतम बनाया। जन्मभूमि साकेत और माता सुवर्णाक्षीको उन्होंने कभी विस्मृत नही होने दिया और अपनी कृतियोंमें सदा अपने लिये 'साकेतक आर्यसुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष' लिखा।

१२—सुपर्ण यौधेय

काल—४२० ई०

(१)

मेरा भी भाग्यचक्र कैसा है। कभी एक जगह पैर जम नहीं सका। संसारके थपेड़ोंने मुझे सदा चंचल और विह्वल रखा। जीवनमे मिठास के दिन भी आये, यद्यपि कटुताके दिनोंसे कम। और परिवर्तन तो वर्षान्तके बादलोंकी भाँति जरा दूर पर पानी, जरा दूर पर धूप। जान नहीं पड़ता यह परिवर्तन-चक्र क्या घुमाया जा रहा है। पश्चिमी उत्तरापथ गंधारमें अब भी मधुपर्कमें वत्समांस दिया जाता है किन्तु मध्यदेश (युक्तप्रान्त-विहार)में गोमांसका नाम लेना भी पाप है—वहाँ गोब्राह्मण रक्षा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। मुझे समझमें नहीं आता, आखिर धर्ममें इतनी धूप-छाह क्यों? क्या एक जगहका अधर्म दूसरी जगह धर्म होकर चलता रहेगा, अथवा एक जगह परिवर्तन पहिले आया है, दूसरी जगह उसीका अनुकरण किया जायेगा।

मैं अवन्तीके (मालवा) के एक गाँवमें क्षिप्राके तटपर पैदा हुआ, मेरे कुलवाले अपनेको मुसाफिरकी तरह समझते थे, यद्यपि वहाँ उनके अपने खेत थे, अपना घर था, जिन्हें वह अपने कंधेपर उठाकर नहीं ले जा सकते थे। मेरे कुलवालोंके डीलडौल, रंग-रूपमें गाँवके और लोगोंसे कुछ अन्तर था—वह ज्यादा लम्बे-चौड़े, ज्यादा गौर, साथही दूसरोंकी शान न सहनेवाले थे। मेरी माँ गाँवकी सुन्दरतम् स्त्री थी, उसके गोरे मुखमंडलपर भूरे बाल बड़े सुन्दर लगते थे। हमारे परिवारके लोग अपनेको ब्राह्मण कहते थे, किन्तु मैं देखता था, गाँववालों,को इसपर सन्देह था। सन्देहकी चीज भी थी। वहाँके ब्राह्मणों में सुरा पीना महापाप था, किन्तु, मेरे घरमें वह बराबर बनती और पी जाती थी। और उच्चकुलोंमे स्त्री-पुरुषका सम्मिलित नाच सुना भी नहीं

जाता था, किन्तु मेरे कुलके सात परिवार जो कि एकसे ही बढ़े थे—शामसे ही अखाड़ेमे जुट जाते थे। अत्यन्त बचपनमे मैंने समझा सभी जगह ऐसा ही होता होगा, किन्तु, जब मैं गाँवके और लड़कोंके साथ खेलते उनके व्यंग्य वचनोंको समझने लगा, तो मालूम हुआ था, कि वह हमें अद्भुत तरहके आदमी समझते हैं, और हमारी कुलीनताको मानते हुए भी हमारे ब्राह्मण होनेमें सन्देह करते हैं। हमारा गाँव एक बड़ा गाँव था, जिसमें दूकाने और बनियोंके घर भी थे। वहाँ कुछ नागर परिवार थे, इन्हें लोग वनिया कहते किन्तु वह स्वयं हमारी भाँति अपनेको ब्राह्मण कहते, कई नागर कन्याये हमारे कुलमें आई थीं, यह भी एक कारण था, कि गाँववाले हमे ब्राह्मण माननेके लिये तैयार न थे। उनके ख्यालमे हम ब्राह्मणोंके खान-पान, शादी-व्याहके नियमोंकी अवहेलना करके कैसे ब्राह्मण हो सकते हैं? मेरे साथी लड़के जब कभी नाराज हो जाते तो मुझे "जुझवा" कहकर चिढ़ाते। मै माँसे बराबर पूछता, किन्तु वह टाल देती।

अब मैं कुछ सयाना हो गया था, दस सालकी उम्र थी, और गाँवमें एक ब्राह्मण गुरुकी पाठशालामें पढ़ने जाता था। मेरे सहपाठी सभी ब्राह्मण थे—लोगोंके कहनेके अनुसार सभी पक्के ब्राह्मण, और मैं तथा दो नागर विद्यार्थी थे, जिन्हें हमारे साथी कच्चे ब्राह्मण कहते थे। मैं गुरू जीका तेज विद्यार्थी था और उनका मुझपर विशेष स्नेह रहता था। हमारे कुलवालोंका स्वभाव, मुझमें था, और किसीकी बातको न सहकर मैं झगड़ पड़ता था। उस दिन मेरे किसी साथीने ताना मारा—"ब्राह्मण बना है, जुझवा कहींका।" मेरे चचाके सरपुत (सालेके पुत्र) ने मेरा पक्ष लेना चाहा, उसे भी कहा—"यवन कहीं का नागर ब्राह्मण बना है।" बचपनसे छोटे बच्चोंको भी ताना मारते सुनता था; किन्तु उस वक्त वह न उतना चुभता था, न उसके भीतर इतनी कल्पना उठने लगती थी। पाठशालामे हम तीनोंको छोड़ बाकी तीस विद्यार्थी थे, चार कन्याये भी थीं। जिनका रंग हम लोगों जैसा

गोरा, शरीर हम जैसा लम्बा न था, तो भी हम देखते उनके सामने तीनों लोक झुकनेके लिये तैयार थे।

उस दिन घर लौटते वक्त मेरा चेहरा बहुत उदास था। माँने मेरे सूखे ओठोंको देख मुँह चूमकर कहा—

"बेटा! आज इतना उदास क्यों है?"

मैंने पहिले टालना चाहा, किन्तु, बहुत आग्रह करने पर कहा—

"माँ हमारे कुलके बारेमें कोई बात है—जिसके कारण लोग हमें ब्राह्मण नहीं मानना चाहते।"

"हम परदेशी ब्राह्मण हैं, बेटा! इसीलिये वह ऐसा ख्याल करते हैं।"

"ब्राह्मण ही नहीं, अब्राह्मण भी माँ, हमारे ब्राह्मण होनेपर संदेह प्रकट करते हैं।"

"इन्हीं ब्राह्मणोंके कहनेपर।"

"हमारे यजमान भी नहीं हैं, दूसरे ब्राह्मण पुरोहिती करते हैं। ब्रह्मभोजमे जाते हैं, हमारे कुलमे वह भी नही देखा जाता। और तो और ब्राह्मण हमें एक पंक्तिमे खिलाते भी नहीं। माँ! जानती हो तो बतलाओ।"

माँने बहुत समझाया, किन्तु मुझे सन्तोष नहीं हुआ।

मेरा चित्त जब इस प्रकार चंचल रहता था, उस वक्त मेरे नागर सहपाठियों और संबंधियोंकी सहानुभूति मेरे साथ रहती थी, अथवा हम सभी एक दूसरेके प्रति सहानुभूति प्रदर्शितकर लिया करते थे।

(२)

समय और बीता, मै तेरह वर्षका हो गया, और पाठशालाकी पढ़ाई समाप्त होनेवाली थी—मैने अपने वेद, ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण, व्याकरण, निरुक्त, तथा कुछ काव्य पढ़े। गुरु जीका स्नेह मुझपर बढ़ता ही गया था। उनकी कन्या विद्या मुझसे चार वर्ष छोटी थी, पाठ याद करनेमे मैं उसकी सहायता करता था। और गुरु जी तथा

गुरू पत्नीके व्यवहारको देखकर विद्या भी मुझे बहुत मानती, मुझे भैया सुपर्ण कहती। मुझे गुरू परिवारसे कभी कोई शिकायत नहीं हो सकती थी, क्योंकि गुरू पत्नीका स्नेह मेरे लिये मांके समान था।

इसी वक्त फिर किसी सहपाठीने मुझे "जुझवा"का ताना मारा; और अकारण, क्योंकि अब मै हर तरहसे बचकर रहता था। कारण इसके सिवाय और कोई न था, कि पढ़ने-लिखनेमें बहुत तेज होनेसे मेरे सहपाठीको मुझसे ईर्ष्या रहती थी। अब मेरी प्रकृति गंभीर होती जा रही थी। मन उत्तेजित न होता हो यह बात न थी, किन्तु मैंने धीरे-धीरे अपने पर नियंत्रण करना सीखा था। मेरे दादाकी आयु सत्तर वर्षसे ज्यादा थी, कितनी ही बार उनसे देश-विदेश, युद्ध-अशान्तिकी बातें सुनी थीं। मै यह भी सुन चुका था, कि इस ग्राममें पहले वही अपने भाइयोंके साथ आये थे। मैंने आज दादासे अपने कुलके बारेमें असली बात जाननेका निश्चयकर लिया। गाँवसे पूरब ओर हमारा आमोंका एक बाग था। आम खूब फले हुए थे, यद्यपि उनके पकनेमें देर थी, किन्तु अभीसे सोना दासीने वहाँ अपनी झोपड़ी लगा ली थी। मैंने सुन रखा था, कि जब मेरे दादा गाँवमें आये, उसी वक्त उन्होंने सोनाको चालीस रौप्य मुद्रा (रुपये)मे किसी दक्खिनी व्यापारीसे खरीदा था—उस वक्त दक्खिनसे दास-दासियोंको बेचनेके लिये कितने ही व्यापारी आया करते थे। सोना उस वक्त जवान थी, नहीं, तो दासियाँ अभी उतनी महँगी न थीं। काली-कलूटी सोनाके चमड़े अब झूल गये थे, उसके चेहरे पर चंबल, बेतवाके टेढ़े-मेढ़े नाले खिंचे हुए थे, किन्तु कहा जाता है, जवानीमे वह सुंदर थी। दादाके वह मुँहलगी रहती थी, खासकर जब वही दोनों रहते थे। घनिष्टताका लोग और और अर्थ भी लगाते थे—एक विधुर स्वस्थ प्रौढ़ व्यक्तिके ऊपर वैसा सन्देह स्वाभाविक था।

शामको दादा बाग़ जाया करते थे, एक दिन मैं भी उनके साथ हो लिया। दादा अपने मेधावी पोते पर बहुत स्नेह रखते थे। और बाते करते करते मैंने कहा—

"दादा ! मै अपने कुलके बारेमे तुमसे सच्ची बातें जानना चाहता हूँ। क्यों लोग हमें पक्का ब्राह्मण नहीं समझते, और "शुम्भा" कहकर चिढ़ाते हैं। माँसे मैने कई बार पूछा किन्तु वह मुझे ठीकसे बतलाना नहीं चाहतीं।"

"इसके पूछनेकी क्या जरूरत है, बच्चा !"

"बहुत जरूरत है दादा ! यदि मै असली बातको ठीकसे जानता रहूँगा, तो अपने कुल पर होने वाले आक्षेपोंका प्रतीकार कर सकूँगा। मैं अब ब्राह्मणोंके बारेमें काफी पढ़ चुका हूँ दादा ! मुझमे इतना विद्या-बल है, कि मै अपने कुलके सम्मानको कायम रख सकूँ।"

"सो तो मुझे विश्वास है, किन्तु बच्चा ! तुम्हारी माँ बेचारी खुद हमारे कुलके बारेमे नहीं जानती, इसलिये, वह बतलाना नही चाहती है, यह बात न समझो। जहाँ लोकमे हमारे कुलकी स्थितिका सबंध है, वह तो अब नागरोंके संबधने तैकर दिया है। हमारी व्याह-शादी उनकें साथ होती है। अवन्ती और लाट (गुजरात)में उनकी संख्या भी बहुत है, इसलिये हमे तो उनके साथ डूबना-उतराना है, तुम्हारी पीढ़ी वस्तुतः यौधेयकी अपेक्षा नागर ज्यादा है।"

"यौधेय क्या दादा ?"

"हमारे कुलका नाम है बच्चा ! इसीको लेकर लोग हमे "शुम्भा" कहते हैं।"

"यौधेय ब्राह्मण थे दादा ?"

"ब्राह्मणोंसे अधिक शुद्ध आर्य।"

"लेकिन ब्राह्मण नहीं।"

"इसका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं'के एक शब्दमे कहनेकी जगह अच्छा होगा, कि मैं यौधेयोंका परिचय ही तुम्हें दे दूँ। यौधेय शतद्रु (सतलज) और यमुना के बीच हिमालयसे मरुभूमिके पास तकके निवासी और स्वामी थे, सारे यौधेय स्वामी थे।"

"सारे यौधेय !"

"हाँ, उनमें कोई एक राजा न था, उनके राज्यको गण-राज्य कहा जाता था। गण या पंचायत सारा राजकाज चलाती थी। वह एक आदमी—राजाके—राज्यके बड़े विरोधी थे।

"ऐसा राज्य होना तो मैंने कभी नहीं सुना दादा!"

"लेकिन ऐसा होता था बच्चा! मेरे पास यौधेय गणके तीन रुपये हैं, मेरे पितासे वह मुझे मिले। देशसे भागते वक्त उनके पास जो रुपये थे, उन्हींमें से यह हैं।"

"तो दादा! तुम यौधेयोंके देशमें नहीं पैदा हुए?"

"मैं दस वर्षका था जब मेरे पिता-माताको देश छोड़ना पड़ा, मेरे दो बड़े भाई थे, जिनके वंशजोंको तुम यहाँ देखते हो।"

"देश क्यों छोड़ना पड़ा दादा?"

"पुरातन कालसे वह यौधेयोंकी अपनी भूमि थी। बड़े बड़े प्रतापी राजा चक्रवर्ती—मौर्य, यवन, शक—भारतभूमि पर पैदा हुए किन्तु किसीने थोड़ा सा कर ले लेनेके सिवाय हमारे गणको नहीं छेड़ा। यही गुप्त हाँ, इसी चंद्रगुप्त—जो अपनेको विक्रमादित्य कहता है, और जिसका दर्बार कभी कभी उज्जयिनीमें भी लगा करता है—का वंश चक्रवर्ती बना, तो उसने यौधेयोंका उच्छेद कर दिया। यौधेय सबल चक्रवर्तीको कुछ भेंट दे दिया करते थे, किन्तु गुप्त राजा इससे राजी नहीं हुआ। उसने कहा, हम यहाँ अपना उपरिक (गवर्नर) नियुक्त करेंगे, यहाँ हमारे कुमारामात्य (कमिश्नर) रहेंगे। जिस तरह हम अपने सारे राज्यका शासन करते हैं, वैसा ही यहाँ भी करेंगे। हमारे गणनायकोंने बहुत समझाया, कि यौधेय अनादिकालसे गण छोड़ दूसरे प्रकारके शासनको जानते नहीं हैं। किन्तु, राज मदमत्त वह इसे क्यों मानने लगा। आखिर यौधेयोंने अपनी इष्ट गणदेवीके सामने शपथ ले तलवार उठाई। उन्होंने बहुत बार गुप्तोंकी सेनाको मार भगाया, और यदि वह चौगुनी पचगुनी तक ही रहती तो वह उनके सामने न टिकती। किन्तु लौहित्य (ब्रह्मपुत्र)से मरुभूमि तक फैले उसके महान् राज्यकी

सारी सेनाके मुकाबिलेमें यौधेय कहाँ तक अपनेको बचा पाते। यौधेय जीतते जीतते हार गये—जन हानि इतनी अधिक हुई। गुप्तोंने हमारे नगर गाँव सभी बर्बाद कर दिये, नर-नारियोंका भीषण संहार किया। हमारे लोग तीस साल तक लड़ते रहे—वह अधिक कर देनेके लिये तैयार थे, किन्तु चाहते थे कि उनके देशकी गण शासन प्रणाली अक्षुण्ण रहे।"

"कैसा रहा होगा वह गण-शासन दादा?"

"उसमें हर एक यौधेय शिर ऊँचा करके चलता था किसीके सामने दीनता दिखलाना वह जानता न था। युद्ध उसके लिये खेल था, इसीलिये उसके वंशका नाम यौधेय पड़ा था।"

"तो हमारी तरह और भी यौधेय होंगे न दादा?"

"होंगे, बच्चा! किन्तु, वह तो सूखे पत्तोंकी भाँति हवामें बिखेर दिए गए हैं।"

"और हमारी तरह किसी नागरवंशमें मिलकर आत्म-विस्मृत बन जाने वाले हैं?"

"हम अपनेको ब्राह्मण क्यों कहते हैं दादा?"

"यह और पुरानी कहानी है बचा! पहिले सारी दुनियामें राजा नहीं, गणहीका राज्य था। उस वक्त ब्राह्मण, क्षत्रियका फ़र्क़ नहीं था।"

"ब्रह्म-क्षत्र एक ही वर्ण था दादा!"

"हाँ, जब ज़रूरत होती तो आदमी पूजा-पाठ करता, जब ज़रूरत होती तो खड्ग उठाता। किन्तु, पीछे विश्वामित्र, वशिष्ठने आकर वर्ण बाँटना शुरू किया।"

"तभी तो एक पिताके दो पुत्रोंमें कोई रन्तिदेवकी भाँति क्षत्रिय कोई गौरिवीतिकी भाँति ब्राह्मण ऋषि होने लगा।"

"ऐसा लिखा है, बच्चा?"

"हाँ, दादा! वेद और इतिहासमें ऐसा मिलता है। संकृति ऋषिके ये दोनों पुत्र थे। यही नहीं, और भी कितनी ही विचित्र बातें इन

पुराने ग्रन्थों में मिलती हैं, जिन्हें आजकलके लोग विश्वास नहीं करेंगे। चर्मण्वती (चंबल)के किनारे दशपुरको देखा है दादा!"

"हाँ, बच्चा! कई बार अवन्ती (मालवा)में ही तो है। मैं कितनी ही बार बरात गया हूँ। वहाँ नागरोंके बहुतसे घर हैं, जिनमें कितने ही भारी व्यापारी सार्थवाह हैं।"

"यही दशपुर रन्तिदेवकी राजधानी थी। और चर्मण्वती नाम क्यों पड़ा, यह तो और अचरजकी बात है।"

"क्या बच्चा?"

"ब्राह्मण सकृतिके पुत्र किन्तु स्वतः क्षत्रिय राजा रन्तिदेव अपनी अतिथिसेवाके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं, वह सतयुगके सोलह महान् राजाओं मे हैं। रन्तिदेवके भोजनालयमें प्रतिदिन दो हजार गायें मारी जाती थीं। उनका गीला चमड़ा जो रसोईमे रखा जाता था, उसीका टपका हुआ जल जो बहा, वही एक नदी बन गया। चर्मसे निकलनेके कारण उसका नाम चर्मण्वती पड़ा।"

"सच ही, यह क्या पुराने ग्रन्थोंमे मिलती है बच्चा?"

"हाँ, दादा महाभारत*मे साफ लिखा है।"

"महाभारतमे, पाँचवे वेदमें? गोमासभक्षण!"

"अतिथियोंके खानेके लिए इस गोमासके पकाने वाले दो हज़ार रसोइये थे दादा! और तिसपर भी ब्राह्मण अतिथि इतने बढ़ जाते कि रसोइयोंको मासकी कमीके कारण सूप ज्यादा ग्रहण करनेकी प्रार्थना करनी पड़ती थी।

---

* "राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज।
अहन्यहनि बध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा।"
"समांसं ददतो ह्यन्न रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्त्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम!"—वनपर्व २०८।८-१०
"महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् संसृजे यतः।
ततश्चर्मण्वती त्येवं विख्याता सा महानदी।"—शान्तिपर्व २९-२३

"ब्राह्मण गोमांस खाते थे, क्या कहते हो बच्चा !"

"महाभारत† पाँचवा वेद झूठ कह सकता है; दादा ?"

"क्या दुनिया इतनी उलट पुलट गई है ?"

"उलटती पुलटती जाती है दादा ! तो भी अपनेको पक्का ब्राह्मण कहनेवाले यह दिवान्ध सबकी आँख मुँदवाना चाहते हैं। मुझे विश्वास हो गया कि हमारे पूर्वज यौधेय लोग ब्राह्मणोंके छलछद्र फैलनेसे पहिलेके रीतिरिवाज, धर्मकर्म पर चलते थे।"

"हाँ, और वह ब्राह्मणोंको कभी अपनेसे ऊँचा नहीं मानते थे।"

"यहाँ आकर दादा ! तुमने अपने लड़कों-भतीजोंकी शादी आवन्तक (मालवीय) ब्राह्मणोंको छोड़ नागरोंमे क्यों की ?"

"दो कारण थे, एक तो ये ब्राह्मण हमारे कुलके बारेमें सन्देह कर रहे थे, किन्तु उससे कुछ नहीं होता, चाहते तो हम खास ब्राह्मण कन्याओं से ब्याह कर लेते। हमने नागरोसे ब्याह-शादी इसलिये करनी शुरू की, कि वह भी हमारी भाँति ज्यादा गौर होते हैं, और हमारी ही भाँति ब्राह्मणोंके न मानने पर भी अपनेको ब्राह्मण कहते हैं।"

"नागर कौन हैं दादा !"

"ब्राह्मण, सिर्फ ब्राह्मण कहनेसे तो नहीं मानते, वह तो पूछते हैं कहाँके ब्राह्मण कौन गोत्र। ये हमारे सम्बन्धी लोग नागरों मे बसते थे, इसलिये इन्होंने अपनेको नागर ब्राह्मण कहना शुरू किया, जैसे कि हम अपनेको यौधेय ब्राह्मण कहते हैं।"

---

†"सांकृति रन्तिदेवं च मृतं सञ्जय शुश्रुम।
द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः॥
गृहानभ्यागतान् विप्रान् अतिथीन् परिवेषकाः। —द्रोणपर्व ६७।१-२
"तत्र स्म सूदाःक्रोशान्ति सुमृष्ट मणिकुण्डलाः॥
सूपं भूयिष्ठम श्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा।"—द्रोणपर्व ६७।१७-१८
—शान्तिपर्व २७-२८

"लेकिन वह वस्तुतः हैं कौन दादा !"

"समुद्र तीरके यवन हैं, बच्चा। उनमें बहुतसे ब्राह्मण नहीं बौद्ध-धर्मको मानते हैं। उज्जयिनीमें जानेपर मालूम होगा'। अभी तो ऐसे भी बहुतसे हैं, जो अपनेको साफ यवन कहते हैं। ब्राह्मण इन्हें क्षत्रिय मानने के लिए बहुत कह रहे हैं।"

"तो वर्ण और जातियाँ इस मानने-मनवाने पर चल रही हैं दादा !"

"देखनेमें तो ऐसाही आ रहा है बच्चा !"

(३)

मैं अब बीस सालका बलिष्ठ सुन्दर तरुण था और अपने गाँवमे पढ़ना समाप्त कर अब मैं उज्जयिनी के बड़े बड़े विद्वानोंका विद्यार्थी था। मेरी माँके ननिहालके लोग उज्जयिनीके धनाढ्य नागरोंमे थे, और उन्होने आग्रह करके मुझे अपने पास रखा था। मेरे जैसे गाँवके विद्यार्थीके लिये उज्जयिनी विस्तृत संसारके देखनेके लिये गवाक्षसी थी। कालिदासका नाम और उनकी कुछ कविताओंको मै पहिले पढ़ चुका था, किन्तु यह कुछ दिन उसे उस महान कविके ,पास पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कविका चंद्रगुप्त विक्रमादित्यके दर्बारमे बहुत मान था, इसलिये वह बहुत समय उज्जयिनी से अनुपस्थित रहते थे। मुझे अपने कविगुरुका अभिमान था, किन्तु कालिदासकी राजाके संबधकी दास-मनोवृत्ति बहुत बुरी लगती थी। उस समय कवि 'कुमारसम्भव' को लिख रहे थे, मुझे उन्होंने बतलाया था, कि विक्रमादित्यके पुत्र कुमार गुप्तको ही मै यहाँ शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेयके नामसे अमरता प्रदान करना चाहता हूँ। मेरे निस्संकोच कटाक्षसे उसके कड़वी होते भी कवि नाराज न होते थे। मैंने एक दिन कहा—

"आचार्य ! आपकी काव्य-प्रतिभाका राज्य अनन्तकालके लिये है, और चंद्रगुप्त, कुमारगुप्तका राज्य सिर्फ उनके जीवन भरके लिये, फिर अपनेको क्यों राजाओंके सामने इतना अकिंचन बनाते हैं।"

"विक्रमादित्य वस्तुतः धर्मका संस्थापक है सुपर्ण ! उसने देखो, हूणोंसे भारतभूमिको मुक्त किया।"

"किन्तु, उत्तरापथ (पंजाब) और कश्मीरमें अब भी हूण हैं, आचार्य !"

"बहुत भागसे उन्हें निकाला।"

"राजा इस तरह एक दूसरेको निकाला ही करते हैं, और दूसरेकी जगह अपने राज्यको स्थापित करते हैं।"

"किन्तु, गुप्तवंश गो-ब्राह्मण रक्षक है।"

"आचार्य ! मूढ़ोंको भरमानेवाली ऐसी बातोंके सुननेकी आशा मैं आपसे नहीं करता। आप जानते हैं, हमारे पूर्वज ऋषि गोरक्षा करते थे, किन्तु गोभक्षणके लिये। 'मेघदूत'*में आप हीने चर्मण्वती (चंबल) को गाय मारनेसे उत्पन्न रन्तिदेवकी कीर्ति लिखा है।"

"तुम धृष्ट हो सुपर्ण, मेरे प्रिय शिष्य !"

"यह मै सुननेके लिये तैयार हूँ, लेकिन मैं यह सहनेके लिए तैयार नहीं हूँ, कि मेरा अनन्तशीलका चक्रवर्ती इन धर्मध्वंसक गुप्त राजाओंके सामने घुटने टेके।"

"तुम उनको धर्मध्वंसक कहते हो सुपर्ण !"

"हाँ, जरूर। नन्दों, मौर्यों, यवनों, शकों और हूणोंने भी जो पाप नहीं किया, वह इन गुप्तोंने किया। भारतमहीसे इन्होंने गण-राज्योंका नाम मिटा दिया।"

"गण-राज्य इस युगके अनुकूल न थे सुपर्ण ! यदि प्रथम चंद्रगुप्त या समुद्रगुप्तने इन गणोंको कायम रखा होता तो उन्होंने हूणों तथा दूसरे प्रबल शत्रुओंको परास्त करनेमें सफलता न पाई होती।"

---

*"व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्,
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।"—मेघदूत १।४५

"सफलता अपना राज्य स्थापित करनेकी, दूसरे चंद्रगुप्त मौर्य बनने की! लेकिन चाणक्यकी अप्रतिभ बुद्धिकी सहायतासे स्थापित और व्यवस्थापित मौर्य साम्राज्य भी बहुत दिनों नहीं चला। विक्रमादित्य और कुमारगुप्तके वंशज भी यावच्चंद्र दिवाकर शासन नहीं करेंगे; फिर इन्होंने प्रजाके शासनके चिह्नों तकको जो मिटा दिया, यह किस धर्म कामके लिये ? क्या अनादिकालसे चले आते गणोंमें प्रजाशासनका उच्छेद करना महान् अधर्म नहीं है ?"

"लेकिन, राजा विष्णुका अंश है।"

"कुमारगुप्त भी अपने साथ मोरका चित्र खिंचवायेगा, और कल को कोई कवि उसे कुमारका अवतार कहेगा। यह धोखा, यह पाखंड किसलिये ? गधशालिका भात और मधुर मास-सूपके लिये, राष्ट्रकी सारी सुन्दरियोंको रनिवासमें भरनेके लिये, कृषि और शिल्पके काममें मरने वाली प्रजाकी गाढ़ी कमाईकी मौज करनेमें पानीकी तरह बहानेके लिये! और इसके लिये आप गुप्तोंको धर्म संस्थापक राजा कहते हैं। विष्णु ! हाँ, गुप्त वैष्णव कहलानेका बड़ा ढोंग रच रहे हैं, ब्राह्मण उन्हें विष्णुका अंश बना रहे हैं, उनके सिक्कों पर लक्ष्मीकी मूर्ति अंकित की जा रही है। विष्णुकी मूर्तियों और देवालयों पर प्रजाको भूखा मार कर, लूटकर खूब रुपये खर्च किये जा रहे हैं; इस आशा पर कि गुप्त वंशका राज्य प्रलयकाल तक कायम रहे।"

"लेकिन, तुम क्या कह रहे हो सुपर्ण ! तुम राजाके विरुद्ध इतनी कड़ी बात कह रहे हो।"

"अभी आचार्य ! सिर्फ तुम्हारे सामने कह रहा हूँ, फिर किसी समय परमभट्टारक महाराजाधिराज कुमारगुप्तके सामने भी कहूँगा। मेरे लिये इस ढोंगको जीते जी बर्दाश्त करना मुश्किल है। किन्तु, वह आगे और शायद दूरकी बात है, मैं तो चाहता हूँ कि आप भी अश्वघोषके चरणों पर चलते।'

"किन्तु प्रिय ! मैं सिर्फ कवि हूँ, अश्वघोष महापुरुष और कवि

दोनों थे। उनके लिये संसारके भोग कोई मूल्य न रखते थे, मेरे लिये विक्रमादित्यके रनिवास जैसी सुन्दरियाँ चाहियें, उदुम्बरवर्णा (लाल) द्राक्षी सुरा चाहिये। प्रासाद और परिचारक चाहिये। मैं कैसे अश्वघोष बन सकता हूँ। मैंने 'रघुवंश' के बहाने गुप्तोंके रघुवंशित्वकी प्रशंसा की, जिससे प्रसन्न हो विक्रमादित्यने यह प्रासाद दिया, काञ्चनमाला जैसी यवन सुन्दरी प्रदान की, जो पंद्रह सालसे मेरे पास रहनेपर भी अपने पिंगलकेशोंमें मुझे बाँधे फिरती है। मैंने यह 'कुमारसंभव' की नींव रखी है, यह देखो अभी और क्या मेरे पास लाता है।"

"मैं नहीं समझता आचार्य! यदि आप "बुद्धचरित" और "सौंदरानन्द" ही लिखते, तो भूखों मरते, या भोगसे सर्वथा वंचित होते, पर आपको भ्रम है, कि बिना राजाओंकी चापलूसीके आपका जीवन बिल्कुल नीरस होता। आपने आनेवाले कवियोंके लिये बुरा उदाहरण रखा, सभी कालिदासके अनुकरणके नामपर अपने दोषोंको छिपायेंगे।"

"मैं उस तरहके भी काव्य लिखूँगा।"

"किन्तु, ऐसा कुछ भी नही लिखेंगे जिसमें गुप्तोंके पापघट पर प्रहार होगा!"

"वह हमसे नहीं होगा सुपर्ण! हम इतने सुकुमार हो गये हैं।"

"और राजाओंके हर पापके लिये धर्मकी दोहाई भी देंगे!"

"उसकी तो जरूरत है, बिना उसके राजशक्ति दृढ नहीं हो सकती। वशिष्ठ, और विश्वामित्रने भी ऐसा करना जरूरी समझा।"

"वशिष्ठ और विश्वामित्र भी कवि कालिदास हीकी भाँति प्रासाद और सुंदरीके लिये यह सब पाप करने पर उतारू थे।"

"सुपर्ण! पुस्तकी विद्याके अतिरिक्त सुना है, तुम युद्ध-विद्या भी सीख रहे हो। यदि तुम्हारी सम्मति हो, तो परम भट्टारक से कहूँ, तुम्हें कुमारामात्य या सेनानायकके पद पर देखकर मुझे बहुत खुशी होगी, महाराज भी पसंद करेंगे।"

"मैं किसीको अपना शरीर न बेचूँगा, आचार्य !"

"अच्छा राज पुरोहितोंमे स्थान कैसा रहेगा ?"

"ब्राह्मणोंके स्वार्थीपनसे मुझे बहुत चिढ है।"

"तो क्या करोगे ?"

"अभी विद्या और पढ़नेको है।"

(४)

उज्जयिनीमें रहते मैंने अपनी विद्याकी पिपासाको तृप्त करनेका ही मौका नहीं पाया, बल्कि जैसा कि मैंने कहा, मुझे विस्तृत संसारको जाननेका भी मौका मिला। वहाँ मैंने नजदीकसे देखा, किस तरह ब्राह्मणोंने अपनेको राजाओंके हाथमे पूर्णतया बेच डाला है। कोई समय था, जब कि दूसरोंके न स्वीकार करनेपर भी मुझे ब्राह्मण होनेका भारी अभिमान था, गाँव छोड़नेसे पहले ही यह अभिमान जाता रहा था। गाँवसे नगरमें आनेपर मैंने असली यवनोंको देखा, जो कि भरुकच्छ (भड़ोच)से अक्सर उज्जयिनी आते थे, और वहाँ उनकी कितनी ही बड़ी बड़ी पण्यशालायें थीं; मैं कितने ही शक-आभीर परिवारोंमें गया, जिनके पूर्वज शताब्दी ही पहिले उज्जयिनी, लाट (गुजरात) और सौराष्ट्र (काठियावाड़)के शासक महा क्षत्रप थे। मैंने पक्क नारंग-स्पर्धी गालों; रोमहीन मुख—गोल गोल आँखोंवाले हूणोंको भी देखा। युद्धमें वह निपुण हो सकते थे, किन्तु वैसे उन्हें प्रतिभाका धनी नहीं पाया। इन तरह तरहके पुरुषोंके देखनेसे सबसे अच्छे स्थान बौद्धोंके विहार (मठ) थे, जो एकसे अधिक संख्यामें उज्जयिनीके बाहर मौजूद थे। मेरे मातुल कुलके लोग बौद्ध थे, और कितने ही नागर भिक्षु भी इन मठोंमे रहते थे, इसलिये मुझे अक्सर वहाँ जाना पड़ता था। मैं एक बार भरुकच्छ भी गया था।

पुस्तककी पढाई समाप्त कर मैंने देशाटन द्वारा अपने ज्ञानको बढाना चाहा, उसी वक्त मुझे पता लगा कि विदर्भमें अचिन्त्य

(अजन्ता) विहार नामका एक बहुत प्रसिद्ध विहार है, जहाँ संसारके सभी देशोंके बौद्ध भिक्षु रहते हैं। मैं वहाँके लिये रवाना हो गया।

अब तक मैं जहाँ भी गया था, पासमें काफी संबल, तथा सहायक साथियोंके साथ गया था, अबकी बार यह पहिला समय था, जब कि मैं निस्सहाय निस्सबल निकला था। रास्तेमें चोरोंका डर न था, गुप्तोंके इस प्रबंधकी प्रशंसा करनी होगी। किन्तु, क्या गुप्त-शासनने देशके प्रत्येक परिवारको इतना समृद्ध कर दिया था, जिससे कि बटमारी-रहज़नी उठ गई थी ? नहीं, गुप्त राजाओंने कर उगाहनेमे अपने पहिलेके सारे शासकोंको मातकर दिया था राज-प्रासादोंके बनानेपर कभी इतना धन नहीं खर्च किया गया होगा, और उनके सजाने में तो और भी हद्द की गई। पहाड़ों, नदियों, पुष्करिणियों, समुद्रोंको सशरीर उठाकर उन्होंने अपने रम्य प्रासादोंके पास रखनेकी कोशिश की थी। उनके क्रीड़ा-वन वस्तुतः वनसे मालूम होते थे, जिनमे पिंजड़ोंमें हिंस्र-पशु रहते, और बाहर मृग, गवय घूमते। क्रीड़ापर्वतमे स्वाभाविक शैल-पार्वत्य वन, जल प्रपात बनाये जाते। सरोवरोंको पतली नहरोंसे मिला सेतु और नावे दिखलाई जातीं। प्रासादके भीतरके सामानमे हाथीदाँत, सोना, रूपा, नाना रत्न, चीनांशुक (रेशमी वस्त्र), महार्घ कालीन आदि प्रचुर परिमाणमें होते। प्रासादोंको सजानेमें चित्रकार अपनी तूलिकाका चमत्कार दिखलाते, मूर्तिकार पाषाण या धातुकी सुन्दर मूर्तियोंका यथास्थान विन्यास करते। विदेशी यात्रियों और राजदूतोंके मुखसे इन चित्रों और मूर्तियोंकी मैंने भूरि भूरि प्रशसा सुनी थी, जिससे मेरा शिर गर्वोन्नत जरूर हुआ था; किन्तु, जब मै क्षुद्र गाँवोंके गरीब घरों-की अवस्था देखता तो उज्जयिनीके उन प्रासादोंपर जल भुन जाता—मानो, पासके गढ़े-गड़हियाँ जैसे गाँवमें उठी दीवारों और टीलोंके कारण होती हैं, उसी तरह यह दरिद्रता उन्हीं प्रासादोंके कारण है। नगरों, निगमों (कस्बों) ही नहीं गाँवोंमे भी चतुर शिल्पी नाना भाँतिकी वस्तुयें बनाते—कातनेवाली सूक्ष्म तंतुओं, तन्तुवाय सूक्ष्म वस्त्रोंको तैयार

करते, स्वर्णकार, लौहकार, चर्मकार अपनी अपनी वस्तुओंके बनानेमें कौशल दिखला देते, राजप्रासादोंकी कलापूर्ण वस्तुओंके तैयार करनेवाले हाथ इन्हीं हाथोंके सगे संबंधी हैं, किन्तु जब मै उनके शरीरों, उनके घरोंको देखता, तो पता लगता कि उनके हाथके निर्मित सारे पदार्थ उनके लिये सिर्फ सपनेकी माया हैं। वह गाँवोंसे सिमिट सिमिटकर नगरों, निगमोंके सौधों, प्रासादों, या पण्यागारोंमे चले जाते; फिर वहाँसे भी उनका बहुतसा भाग पश्चिमी समुद्रके भरुकच्छ आदि तीर्थोंसे पारस्य (ईरान) या मिश्रका रास्ता लेता, या पूर्वी समुद्रके ताम्रलिप्त (तमलुक)से यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) पहुँच जाता। भारतका सामुद्रिक वाणिज्य इतना प्रबल कभी नहीं हुआ, और अपने पण्योंके लिये समुद्र पारकी लक्ष्मी कभी भारतमें इतनी मात्रामें नहीं आई होगी, किन्तु उससे लाभ किसको था ? सबसे अधिक गुप्त राजाओंको जो हर पण्य पर भारी कर लेते थे, फिर सामन्तोंको जो बड़े-बड़े राजपदों या जागीरोंके स्वामी थे, और शिल्पियों और बनियों दोनोंसे लाभ उठाते थे। सार्थवाहों तथा बनियोंका नाम अन्त मे आनेपर भी वह इस लूटके छोटे हिस्सेदार न थे। इस सबके देखनेसे मुझे साफ हो गया कि गाँवके कृषक और शिल्पी क्यों इतने गरीब हैं; और मार्गों और राजपथोंको सुरक्षित रखनेके लिए गुप्तराजा क्यों इतने तत्पर मालूम होते हैं।

गाँवोंमें दरिद्रता थी, किन्तु, एक दिल दहलाने वाला दृश्य वहाँ कम दिखलाई पड़ता था। वहाँ, पशुओंकी भाँति बिकनेवाले दास-दासियोंका हाट न लगता था, न उनके नंगे शरीरोंपर कोड़े पड़नेके दृश्य दिखलाई देते थे। मेरे गुरु कालिदासने एक प्रसगमे कहा था, कि दास-दासी पुरविले कर्मसे होते हैं। जिस दिन मैने उनके मुँहसे यह बात सुनी उसी दिन पुरविले जन्मसे मेरा विश्वास उठ गया। गुप्तोंने जिस तरह धर्मको सैकड़ों तरहसे अपनी सत्ता दृढ करने लिये इस्तेमाल करनेमें उतावलापन दिखलाया था, उससे इस समय यह ख्याल हर समझदार

के मनमें आना स्वाभाविक था। किन्तु, जब मैं साधारण प्रजा को देखता तो वह इस तरफसे बिल्कुल उदास थी। क्यों? शायद वह अपने को बेबस पाती थी। ग्रामवासी सिर्फ अपने गाँवभरकी दुनियाकी खोज खबर लेते थे, गाँवकी अंगुलभर भूमिके लिए वह उसी तरह लड़ सकते थे, जिस तरह कि शायद कुमारगुप्त भी अपनी किसी भुक्ति (प्रान्त, सूबा) के लिए भी न लड़ता। किन्तु, गाँवकी सीमाके बाहर कुछ भी होता हो, उसकी उन्हें पर्वाह नहीं। मुझे एक गाँवकी घटना याद है, उस गाँवमें चालीसके क़रीब घर थे, सभी फूसकी छत वाले। गर्मीमे चूल्हेसे एक घरमें आग लग गई। सारे गाँवके लोग पानी ले लेकर उस घरकी ओर दौड़ गए, किन्तु, एक घरके दम्पति घड़ों में पानी भरकर अपने घरके पास बैठे रहे। सौभाग्यसे उस गाँवमें ऐसा घर एक ही था। नही तो गाँवका एक घरभी न बचता। इस वक्त मुझे यौधेयोंका गण याद आया; जहाँ एक राष्ट्रके सभी घर अपने सारे राष्ट्रके लिये मरने जीनेको तैयार थे। समुद्रगुप्त, चद्रगुप्त, कुमारगुप्तकी दिग्विजयोंके लिए भी लाखोंने प्राण दिए, किन्तु, दासोंकी भाँति दूसरेके लाभके लिये, स्वतंत्र मानवकी भाँति अपने और अपनोंके हितके लिए नहीं। मेरा रोआँ काँप उठता, जब कि प्रजापर सिर्फ एक सौ वर्षके इस गुप्त शासनके प्रभावको ख्याल करता। मैं सोचता यदि ऐसा शासन शताब्दियों तक चलता रहा, तो यह देश सिर्फ दासोंका देश रह जायेगा, जो सिर्फ अपने राजाओं के लिये लड़ना-मरना भर जानेंगे, उनके मनसे यह ख्याल ही दूर हो जायेंगे, कि मानवके भी कुछ अधिकार हैं।

अचिन्त्य विहार बड़ा ही रमणीय विहार था। एक हरितवसना पर्वतस्थलीको एक अर्धचन्द्राकार प्रवाह वाली नदी काट रही थी, इसी क्षुद्र किन्तु, सदानीरा सरिताके बायें तट पर अवस्थित शैलको काटकर शिल्पियोंने कितने ही गुहामय सुन्दर प्रतिमा गेह, निवास-स्थान, तथा सभा भवन बनाये। इन गुहाओंको भी प्रासादोंकी भाँति चित्रों, मूर्तियोंसे

सजाया गया है, यद्यपि वह कई पीढ़ियोंमे और शायद सैकड़ों पीढ़ियों के लिये अचिन्त्य विहारके भित्ति चित्र सुंदर हैं, पाषाण-शिल्प सुन्दर हैं; किन्तु, वह गुप्त राजप्रासादोंका मुकाबिला नहीं कर सकते, इसलिये वह मेरे लिए उतने आकर्षक नही थे। हाँ, मेरे लिये आकर्षक थी यहाँकी भिक्षु-मंडली, जिनमें देशदेशान्तरोंके व्यक्ति बड़े प्रेमभावसे एक साथ एक परिवारकी तरह रहते, वहाँ मैंने सुदूर चीनके भिक्षुको देखा, पारसीक और यवन भिक्षुओंको देखा, सिंहल, यव, सुवर्ण द्वीपवाले भी वहाँ मौजूद थे, चम्पा द्वीप कम्बोज द्वीपके नाम और सजीव मूर्तियाँ वहीं सुनने और देखनेमें आईं। कपिशा, उद्यान, तुषार, कूचाके सर्वपिंगल पुरुष भिक्षुओंके कषायको पहिने वहीं मिले।

मुझे बाहरके देशोंके बारेमें जाननेकी बड़ी लालसा थी, और यदि यह विदेशी भिक्षु एक एक करके मिले होते, तो मैं उनके पास एक एक साल बिता देता, किन्तु यहाँ इकट्ठे इतनी संख्यामे मिल जानेके कारण दरिद्रकी निधिकी भाँति मै अपनेको सँभालनेमें असमर्थ समझने लगा।

दिङ्नागका नाम मैंने अपने गुरूके मुखसे सुना था। कालिदास गुप्तराज, राजतन्त्र, तथा उसके परम सहायक ब्राह्मण धर्मके जबर्दस्त समर्थक थे, और किस अभिप्रायसे यह मैं पहिले बतला चुका हूँ। वह दिङ्नागको इस काम में सबसे जबर्दस्त बाधक समझते। वह कहते थे कि इस द्रविड़ नास्तिकके सामने विष्णु क्या तैंतीस कोटि देवताओंका सिंहासन हिलता है। धर्मके नामपर राजा और ब्राह्मणोंके स्वार्थके लिये हम जो कुछ कूट-मन्त्रणा कर रहे हैं, उसका रहस्य उससे छिपा नहीं है। मुश्किल यह था, कि उसे बूढा वसुबन्धु जैसा गुरु मिल गया था। वसुबंधुको कालिदास ज्ञानवारिधि कहते थे। भदन्त वसुबंधु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी द्वितीय राजधानी अयोध्यामे दर्बारीके तौर पर नहीं बल्कि स्वतन्त्र सम्मानित गुरूके तौरपर कई साल रहे थे और पीछे गुप्तोंकी नीच भावनासे निराश हो अपनी जन्म-भूमि पुरुषपुर (पेशावर) को चले गये थे। दिङ्नागने लोहेके तीर या खड्गको नहीं, बल्कि उससे

भी तीक्ष्ण ज्ञान और तर्कके शस्त्रको वितरण करनेका व्रत लिया है। इनसे आध घंटा बात कर लेने ही में ब्राह्मणोंका सारा मायाजाल काईकी भाँति छँट जाता है। मैं छै मास अचिन्त्य विहारमें रहा, और प्रतिदिन दिङ्नागके मुखसे चारों ओर प्रकाशके फैलानेवाले उनके उपदेशोंको सुनता था, मुझे इस बातका अभिमान है, कि मुझे दिङ्नाग जैसा गुरू मिला। उनका ज्ञान अत्यन्त गम्भीर है, उनके वचन आगके दहते अंगारोंकी भाँति थे। मेरी ही भाँति वह ससारके पाखंड मायाजाल को देख क्रोधोन्मत्त हो जाते। एक दिन वह कह रहे थे—

"सुपर्ण! प्रजाके ही बल पर हम कुछ कर सकते थे, किन्तु प्रजा दूर तक बहक चुकी है। तथागत (बुद्ध) ने जाति वर्णके भेदको उठा डालनेके लिये भारी प्रयास किया था। उसमें कुछ अंशमें उन्हें सफलता भी हुई। देशके बाहरसे यवन, शक गुर्जर, आभीर, जो लोग आये, इन्हें ब्राह्मण म्लेच्छ कहकर घृणा करते थे, किन्तु तथागतके संघने उन्हें मानवताके समान अधिकारको प्रदान किया। कुछ सदियों तक जान पड़ा कि भारतसे सारे भेद-भाव मिट जायेंगे, किन्तु भारतके दुर्भाग्यसे इसी वक्त ब्राह्मणोंके हाथमें गुप्त राजसत्ता आ गई। गुप्त स्वय जब पहिले आये थे, तो ब्राह्मण उन्हें म्लेच्छ कहते थे, किन्तु कालिदास ने उनके गौरवको बढ़ानेके लिये 'रघुवंश" और "कुमार संभव" लिखा है। गुप्त अपने राजवंशको प्रलय तक कायम रखनेकी चिन्तामें पागल हैं, ब्राह्मण उन्हें इसका विश्वास दिला रहे हैं। हमारे भदन्त वसुबन्धु ऐसा विश्वास नहीं दिला सकते थे। वह खुद लिच्छवियोंके गण-तंत्रके आधार पर निर्मित भिक्षु संघके सच्चे अनुयायी थे। बौद्धोंको ब्राह्मण जबर्दस्त प्रतिद्वंद्वी समझते हैं, वह जानते हैं कि सारे देशोंके बौद्ध गोमांस खाते हैं, जिसे वह नहीं छोड़ेंगे, इसलिये इन्होंने भारतमें धर्मके नामपर गोमास वर्जन—गो-ब्राह्मण रक्षाका प्रचार शुरू किया है। बौद्ध जाति वर्ण-भेदको उठाना चाहते हैं ब्राह्मणोंने अब वर्ण बहिष्कृत यवन शक आदिको ऊँचे ऊँचे वर्ण देने शुरू किये हैं। यह जबर्दस्त

फंदा है, जिसमें कितने ही बौद्ध गृहस्थ भी फसते जा रहे हैं। इस फूट से प्रजाकी शक्तिका छिन्न-भिन्नकर वह राजशक्ति और ब्राह्मण-शक्तिको दृढ़ करना चाहते हैं, किन्तु इसका परिणाम घातक होगा, सुपर्ण ! देशके लिये, क्योंकि दासोंकी शक्तिके बलपर कोई राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता।"

मैंने अपने यौधेयोंके आत्मोत्सर्गकी कहानी कही, तो आचार्यका हृदय पिघल गया। जब मैंने यौधेयगणके पुनरुज्जीवनकी अपनी लालसाको उनके सामने प्रकट किया, तो उन्होंने कहा—'मेरी सदिच्छा और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। उद्योगी पुरुषसिंहको विघ्नबाधाओंसे नहीं डरना चाहिये।"

उनके आशीर्वादको लेकर मैं जा रहा हूँ यौधेयोंकी भूमिकी ओर, चाहे तो उस मृत भूमिका फिरसे उत्थान करूँगा, या रेतके पदचिह्नकी भाँति मिट जाऊँगा।

१३—दुर्मुख

काल—६३० ई०

(१)

मेरा नाम हर्षवर्धन है। शीलादित्य या सदाचारका सूर्य मेरी उपाधि है। चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपने लिए विक्रमादित्य (पराक्रमका सूर्य) उपाधि पसन्दकी और मैंने यह कोमल उपाधि स्वीकार की। विक्रममें दूसरेको दबाने, दूसरेको सतानेकी भावना होती है; किन्तु शील (सदाचार) मे किसीको दबाने तपानेकी भावना नहीं है। गुप्तोंने अपने लिए परम वैष्णव कहा। मेरे ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन—जिनको गौड़ शशाकने विश्वास-घातसे तरुणाईमें ही मार डाला और जिसका स्मरण करके आज भी मेरा दिल अधीर हो जाता है—परम सौगत (परम बौद्ध) थे, सुगत (बुद्ध) की भाँति वह क्षमा-मूर्ति थे। अपनेको सदा उनका चरण-सेवी मानते हुए मैंने अपने लिए परम माहेश्वर (परम शैव) होना पसन्द किया; किन्तु शैव होनेपर भी मेरे हृदयमें बुद्धकी भक्ति कितनी थी, इसे भारत ही नही, भारतके बाहरकी दुनियाँ भी जानती है। मैने अपने राज्यके सारे धर्मोंका सम्मान किया है—प्रजा-रंजनके ही लिए नहीं, बल्कि अपने शील (सदाचार)के संरक्षणके लिए भी। हर पाँचवे साल राज-कोषके बचे धनको प्रयागमें त्रिवेणीके तीर ब्राह्मणों और श्रमणों (बौद्ध भिक्षुओं)में बाँटता था। इससे भी सिद्ध होगा कि मैं सभी धर्मों की समान अभिवृद्धि चाहता रहा। हाँ, मैंने समुद्रगुप्तकी भाँति दिग्विजयके लिए यात्रा की थी; लेकिन वह शीलादित्य नाम धारण करनेसे पहले। यह आप न ख़याल करे कि यदि दक्षिणापथके राजा पुलकेशीके सम्मुख असफल न हुआ होता, तो विक्रमादित्यकी तरह ही कोई पदवी मैं भी धारण करता। मैं सारे भारतका चक्रवर्ती होकर भी चन्द्रगुप्त नहीं, अशोकके कलिंगविजयकी भाँति पश्चात्तापकर शील द्वारा मनुष्यों की विजय करता—मेरा स्वभाव ऐसा ही कोमल है।

राज्य स्वीकार करनेसे मैं इन्कार करता रहा, क्योंकि स्थाण्वीश्वर-पति महाराज प्रभाकरवर्धनका पुत्र, कान्यकुब्जाधिपति परम भट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्धनका अनुज हो, मैंने राज्य-भोगोंको देखकर नहीं, भोगकर असार-सा समझ लिया था। भ्राताके मारे जानेके बाद कितने ही समय तक मै राजसिंहासनपर बैठनेसे इन्कार करता रहा। यदि भाईके हत्यारेके प्रतिशोधका क्षत्रियोचित विचार मनमे न उठ आया होता, तो शायद मै कान्यकुब्जके सिंहासनपर बैठता ही नहीं, और वह मेरी बहन राज्यश्रीके पति-कुल—मौखरि-कुल—में चला जाता, जो वस्तुतः हमारे भाईसे पहले वहाँसे गुप्तोंके चले जानेपर राज्यका शासन करता था। यह सब मै इसलिए कहता हूँ कि मेरे बाद आनेवाले समझे कि हर्षने स्वार्थकी दृष्टिसे अपने सिरपर राजमुकुट नहीं रखा। मुझे अफसोस है, मेरे दरबारी चापलूसोंने—राजा चापलूसोंसे पिंड छुड़ा नहीं सकते, यही बड़ी मुश्किल है—मुझे भी समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके रगमें रॅगना चाहा, किन्तु उनकी यह बाते मेरे साथ न्याय नही, अन्यायके लिए हैं, यद्यपि जान बूझकर नहीं।

मैंने राज्य स्वीकार किया सिर्फ शील सदाचार, धर्म) पालनके लिए, सारे प्राणियोंके हितके लिए। मैने विद्यादानको भारी दान समझा, इसीलिए गुप्तोंके वक्तसे बढ़ती चली आती नालन्दाकी समृद्धिको और भी बढ़ाया, जिसमे कि वहाँ दस सहस्र देशी-विदेशी विद्वानों और विद्यार्थियोंको आरामके साथ विद्याध्ययन करनेका सुभीता हो। विद्वानोंका सम्मान करना मेरे लिए सबसे खुशीकी बात थी, इसीलिए मैने चीनके विद्वान् भिक्षु वेन्-चिङ्का दिल खोलकर सम्मान किया। बाणकी अद्भुत काव्य-प्रतिभाको देखकर मैने उसे भुजंगता (लम्पटता) से हटाकर अच्छे रास्तेपर लगाना चाहा—यद्यपि वह बहुत ऊपर नहीं उठ सका और कालिदासके क़दमोंपर चल सिर्फ खुशामदी कवि ही रहना चाहा। किन्तु मगधके एक छोटे-से गाँवसे निकालकर उसे विश्वके सामने रखनेका प्रयास मेरे विद्या-प्रेमका ही द्योतक था।

मैं चाहता था, सभी अपने-अपने धर्मका पालन करें। अपने धर्म पर चलना ही ठीक है। इसीसे संसारमें शान्ति और समृद्धि रहती है, और परलोक बनता है। सभी वर्णवाले अपने वर्ण-धर्मका पालन करें, सभी आश्रमवाले अपने आश्रमका पालन करें, सभी धर्म-मत अपने श्रद्धाविश्वासके अनुसार पूजा-पाठ करें—इसके लिए मै सदा प्रयत्न-शील रहा।

कामरूप (आसाम) से सौराष्ट्र (काठियावाड़) और विन्ध्यसे हिमालय तकके अपने विस्तृत राज्यमें मैंने न्यायका राज्य स्थापित किया। मेरे अधिकारी (अफसर) जुल्म न करने पाये, इसके लिए समय समयपर मै स्वय दौरा करता था। मैं इसी तरहके एक दौरेपर था, जबकि ब्राह्मण बाण मेरे बुलानेपर मेरे पास आया था। अपने जाने उसने मेरी कीर्त्ति बढ़ानी चाही; किन्तु, मै समझता हूँ, यात्रामें भी जिस तरह के मेरे राजसी ठाट-बाटका वर्णन उसने किया है, वह मेरा नहीं, किसी विक्रमादित्यके दरबारका हो सकता है। मेरी जीवनी (हर्ष-चरित) वह चुपके-चुपके लिख रहा था। मुझे एक दिन पता लगा, तो मैंने पूछा। उसने लिखित अंश मुझे दिखाया। मैंने उसे बहुत नापसन्द किया और डाँटा भी, जिसका एक परिणाम तो ज़रूर हुआ कि वह उतने उत्साहसे आगे न लिख सका। उसकी 'कादम्बरी'को मैंने अधिक पसन्द किया—यद्यपि उसमे राज-दरबार, रनिवास, परिचारक-परिचारिका, प्रासाद, आराम आदिका ऐसा वर्णन किया गया है, जिससे लोगोंको ख़ामख़ाह भ्रम होगा कि यह सारा वर्णन मेरे ही राज-दरबारका है। मुझे अपनी पारसीक रानीसे बहुत प्रेम रहा है। वह नौशेरवाँकी पोती ही नहीं है, बल्कि अपने गुणों और रूपसे किसी भी पुरुषको मोह ले सकती है। बाणने उसीका महाश्वेताके नामसे वर्णन किया। मेरी सौराष्ट्री रानी कुछ उमर ढलनेपर आई थी। उसके दिलको सन्तुष्ट करनेके लिए मैंने उसके निवासको सजानेके लिए कुछ विशेष आयोजन किया था। बाणने उसे ही कादम्बरी और उसके निवासके रूपमें अंकित कर दिया है। बाणकी

रचनामें इन दो बातोंको छोड़ बाक़ी किसी वर्णनको मेरा नहीं समझना चाहिए, या बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण समझना चाहिए।

मै अपने अन्तिम दिनोंमे अनुभव कर रहा हूँ कि बाण मेरा हितैषी साबित नहीं होगा। बाणके 'हर्ष-चरित' ही मे नहीं, 'कादम्बरी' में भी जो कुछ राजा और उसके ऐश्वर्यके बारेमें वर्णन किया गया है, उसे लोग मेरा ही वर्णन कहेंगे। और फिर 'नागानन्द', 'रत्नावलि' और 'प्रियदर्शिका' नाटकोंको तो उसने मेरे नामसे लिखकर और भी अनर्थ किया है। लोग कहेंगे, कीर्त्तिका भूखा होकर हर्षने पैसे दे दूसरेके ग्रन्थों को अपने नामपर मोल ख़रीदा। मै सच कहता हूँ, मुझे इस बातका पता बहुत पीछे लगा, जब कि हज़ारों विद्यार्थी मेरे नामसे इन ग्रन्थोंको पढ चुके थे और कितनी ही बार वे खेले भी जा चुके थे।

मैं अपनी प्रजाको सुखी देखना चाहता था। मैंने उसे देखा। मैं अपने राज्यको शान्त और निरापद देखना चाहता था। अन्तमे यह साध भी पूरी होकर रही, और लोग उसमें सोना उछालते हुए एक जगहसे दूसरी जगह जा सकते थे।

मेरे कुलके बारेमें अभी ही पीठ-पीछे लोग कहने लगे हैं कि वह बनियोंका कुल है। यह बिल्कुल गलत है। हम वैश्य क्षत्रिय हैं। वैश्य बनिये नहीं। किसी समय हमारे शातवाहन-कुल में सारे भारतका राज्य था। शातवाहन राज्यके ध्वंसके बाद हमारे पूर्वज गोदावरी-तीरके प्रतिष्ठानपुर (पैठन)को छोड़ स्थाण्वीश्वर (थानेसर) चले आये। शातवाहन (शालिवाहन) वंश कभी बनिया नहीं था, यह सारी दुनिया जानती है; यद्यपि उसका शक क्षत्रियोंके साथ शादी-ब्याह होता था, जो राजाओंके लिए उचित ही है। मेरी भी प्रिया महाश्वेता पारसीक राजवंशकी है।

(२)

बाण मेरा नाम है। मैंने कितने ही काव्य-नाटक लिखे हैं, जिनकी कसौटीपर ही लोग मुझे कसना चाहेंगे, इसीलिये मुझे यह लेख लिखकर

छोड़ना पड़ रहा है। मुझे निश्चय है कि वर्तमान राजवंशके समय तक यह लेख नहीं प्रकट होगा। मैंने इसके रखनेका इन्तज़ाम किया है। आनेवाले लोग मेरे बारेमें ग़लत धारणा रखनेसे बच जायँगे, यदि मेरी प्रसिद्ध पुस्तकोंके पढनेके पहले इस लेखको पढ़ लेंगे।

राजा हर्षने भरी सभामें मुझे भुजंग (लम्पट) कहा था, जिससे लोगोंको भ्रम हो सकता है। मैं धनी पिताका लाड़ला पुत्र था। भास कालिदासकी कृतियोंको पढ़-पढ़कर मेरी तबीयत रंगीन हो गई थी, इसमे सन्देह नहीं। मेरे पास रूप और यौवन था। मुझे देशाटनका शौक़ था। मैंने यौवनका आनन्द लेना चाहा, और चाहता तो अपने पिताकी भाँति घरपर ही वह ले सकता था, किन्तु मुझे वह भारी पाखंड जँचा—भीतरसे काम स्वेच्छाचारी होतें हुए भी बाहरसे अपनेको जितेन्द्रिय, सयमी, पुजारी, महात्मा प्रकट करना मुझे बहुत बुरा लगता था। मैंने जीवन-भर इसे पसन्द नहीं किया। जो कुछ किया, प्रत्यक्ष किया। पिता ने अपने असवर्ण पुत्रको स्वीकारकर सिर्फ एक ही बार हिम्मत दिखलाई थी; किन्तु, वह तरुणाईका 'पाप' गिना जा सकता था। मैंने देखा, जवानीके जिस आनन्दको मैं लेना चाहता हूँ, उसे अपनी जन्मभूमिमे नही ले सकता। वहाँ सारे जाति कुलवाले बिगड़ जायेंगे, फिर धन-वित्त से भी हाथ धोना पड़ेगा। मुझे एक अच्छा ढग याद आया। मैंने अपनी एक नाटक-मडली बनाई—हाँ, मगधसे बाहर जाकर। फिर मेरे तरुण मित्र वही थे, जो गुणी और कला-कुशल थे। धूर्त्त, खुशामदी, मूर्ख बनानेवाले मित्रोंको मैं कभी पसन्द नहीं करता था। मैंने अपनी मण्डलीमें कितनी ही सुन्दर तरुणियोंको भी शामिल किया, जिनमे सभी वारवनिताएँ (वेश्याएँ) नहीं थीं। इसी यात्रामें मैंने अभिनय करनेके लिए 'रत्नावलि', प्रियदर्शिका' आदि नाटक-नाटिकाएँ लिखीं। मैंने तरुणाईके आनन्दके साथ कलाको भी मिला दिया, और इसमे कलाकी जो सेवा हुई, उसे देखते हुए सहृदय पुरुष मेरी प्रशसा ही करेंगे। मैंने जीवनका आनन्द लिया, साथ ही आपको 'रत्नावलि', 'प्रियदर्शिका'

आदि प्रदान कीं। कितने दूसरे भोगी हैं, जो सिर्फ़ अपने आनन्द भरको ही सब-कुछ समझते हैं। लोग कहेंगे, मैंने राजा हर्षको प्रसन्न करनेके लिए अपने नाटकोंको उसके नामसे प्रकट कर दिया। उन्हें यह मालूम नहीं कि जिस वक्त प्रवासमे ये नाटक लिखे गए थे, उस वक्त मैं हर्षका सिर्फ़ नाम-भर जानता था। उस वक्त मुझे यह भी पता न था कि कभी हर्ष मुझे बुलाकर अपना दरबारी कवि बनायेंगे। मैंने इन नाटकोंका कर्त्ता हर्षको सिर्फ़ अपनेको छिपानेके लिए प्रकट किया। इन नाटकोंके पढ़नेवाले उनके मूल्यको जानते हैं। वह बिल्कुल नए थे। मेरे दर्शकोंमें गुणीजनोंकी संख्या भी होती थी। पंडित, राजा, कलाविद् ख़ास तौरसे उन्हें देखने आते थे। यदि उनको पता लग जाता, तो मैं नाटक-मण्डलीका सूत्रधार न रह पाता। लोग महाकवि बाणके पीछे पड़ जाते। मैंने हर्षको छोड़ कामरूप (आसाम)से सिन्धु और हिमालयसे सिंहलके अनुराधपुर तकके राज-दरबारोंको अपने नाटक दिखलाये थे। ख़याल कीजिये, यदि कामरूपेश्वर, सिंहलेश्वर तथा कुन्तलेश्वरको पता लग जाता कि नाटकों का महाकवि यही बाणभट्ट है, तो फिर मेरे पर्यटन, मेरे आनन्दानुभाव का क्या होता? मैं दरबारी कवि नहीं बनना चाहता था। यदि हर्षके राज्यमें बसता न होता, तो उनका भी दरबारी कवि न बनता। मेरे पास पिताकी काफ़ी सम्पत्ति थी।

आपको ख़याल हो सकता है, हर्षके कहनेके अनुसार मै निरा भुजंग—वेश्या लम्पट—था। मेरी मण्डलीमे वार-वनिताएँ बहुत कम आईं। जो आईं, उन्हें मैंने नृत्य-संगीत-अभिनय-कलाके ख़यालसे लिया। मेरे नाट्य-गगनकी तारिकाएँ दूसरी ही तरह आती थीं। आगे क्या होगा, नही जानता; किन्तु, इस वक्त देशकी सारी तरुणियाँ राजाओं और उनके सामन्तोंकी सम्पत्ति समझी जाती हैं—चाहे वे ब्राह्मणकी कन्याएँ हों या क्षत्रियकी। मेरी बुआको मगधके एक मौखरि सामन्तने ज़बरदस्ती रख लिया था। वह मर गया, और बुआकी आयुभी गिर

गई, तो वह हमारे घर रहा करती थीं। मेरे ऊपर उनका परम स्नेह था। मैंने उनके उस सामन्त-सम्बन्धकी ओर कभी ख़याल नहीं किया। आख़िर इस अबलाका दोष क्या था? सुन्दर तरुणियाँ कम होती हैं; किन्तु, जब उनके प्रथम अधिकारी कुछ थोड़े-से सामन्त हों, तो एक-एक-सामन्तपर उनकी कितनी संख्या पड़ेगी, इसे आप ख़ुद समझ सकते हैं। सामन्तों और राजाओंने इन तरुणियोंके स्वीकारके कई तरीक़े निकाले थे। कोई-कोई पतिके पास जानेसे पहली रातको उन्हें अपनी समझते थे। इसे लोग धर्म-मर्यादा समझने लगे थे और अपनी बेटियों, बहुओं तथा बहनोंको डोलियोंपर बैठाकर अन्तःपुरमें एक रातके लिये पहुँचाते थे। किन्तु, डोला न भेजनेका मतलब था सर्वनाश। पसन्द आनेपर वह रनिवासमें रख ली जाती थीं—रानीके तौर पर नहीं, परिचारिकाके तौरपर। रानी बननेका सौभाग्य तो सिर्फ़ राजकुमारियों और सामन्त-कुमारियोंको ही हो सकता था। अन्तःपुर (रनिवास,की इन हज़ारों-हज़ार तरुणियोंमें अधिकांश ऐसी थीं, जिन्हें एक दिनसे अधिक राजा या सामन्तका समागम नहीं प्राप्त हुआ। बतलाइए, उनकी तरुणाई उनसे क्या माँगती होगी? मेरी अभिनेत्रियाँ अधिकतर इन्हीं रनिवासोंसे आती थीं, और चोरीसे भागकर नहीं। इसे बुरा समझिये या भला, मैं राजाओ और सामन्तोंको बातकी बातमें अपनी ओर खींचनेमें सिद्धहस्त था—राजनीतिमें नहीं, उससे मेरा कोई मतलब न था। इसकी साक्ष्य दे रहे थे वे सैकड़ों पत्र, जो राजाओं और राज-सामन्तों की ओरसे मेरी प्रशंसामें मिले थे। जब वह कलाकी तारीफ़ करते, तो मैं कलाविद्का रोना रोना शुरू करता—'क्या करें देव, कलाकार तरुणियाँ होनेपर भी मिलती ही नहीं।'

'होनेपर भी नहीं मिलतीं!'

'एक दिनके चुम्बन, एक दिनके आलिंगन या एक दिनकी सहशय्याके बाद जहाँ लाखों तरुणियाँ अन्तःपुरोंमें बन्द करके रख दी जायँ, वहाँ कलाकार स्त्रियाँ कहाँसे मिलें!'

'ठीक कहते हो, आचार्य ! मैं इसे अनुभव करता हूँ; किन्तु, एक बार अन्तःपुरमे ले लेनेपर हम उन्हें निकालें कैसे ?'

इसपर मै उन्हें ढग बतलाता। गाना-नाचना आज हमारी राज-कन्याओं, सामन्त-कन्याओं और राजान्तःपुरिकाओंके लिए अनिवार्य है। यह मानों उनके लिए जल और आहारके तौरपर है। मैं अपनी चतुर नारियोंको भेजता। राजा अपनी उन अन्तःपुरिकाओंको कला सीखनेके लिए उनके पास जानेको कहता। जिसे हमें लेना होता, उसे अन्तःपुरके कष्ट और कलाविद्के जीवनका आनन्द बतलाते; साथ ही यह भी कि जैसे यहाँ राजाने हमारी मंडलीकी एक निपुण नटीको रनिवासम ऊँचा स्थान दिया है, वैसे ही हो सकता है कि तुम्हें भी आगे मौका मिले। इतना कहनेपर अनेक तरुणियोंका राज़ी होना स्वाभाविक था—यद्यपि हम उनमे से योग्यतमको ही लेते। राजा लोगोंने जीवनमें एक वारके समागमके लिए जहाँ हज़ारों तरुणियोंका अवरोध कर रखा हो, वहाँ अन्तःपुरम पुरुषप्रवेशके कड़े निषेधसे भी कुछ बनता-बिगड़ा नहीं। बूढे कचुकी ब्राह्मण उनको तरुणाईके आनंद से रोक नहीं सकते।

मैंने जब विधवाके सती होनेका विरोध किया, तो पाखंडियोंने—ब्राह्मणों और राजाओंसे बढकर दुनियामे कोई पाखडी नहीं हो सकता--बड़ा हो हल्ला मचाया। कहने लगे, वह गर्भ-हत्या और विधवा-विवाह फैलाना चाहता है। गर्भ हत्या मै बिल्कुल नहीं चाहता, किन्तु, यहाँपर यह स्वीकार करनेमे कोई उज्र नहीं कि मैं विधवा-विवाह पसन्द करता हूँ। गुप्तोंके शासनसे हमारा पुराना धर्म कुछ से-कुछ हो गया। जहाँ हमारे श्रोत्रिय बिना वत्सतरी मासके किसी आतिथ्यको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे, वहाँ अब गोमास-भक्षणको धर्म-विरुद्ध समझा जाता है। जहाँ हमारे ऋषि विधवाओंके लिए देवर—दूसरा वर—बिल्कुल उचित समझते थे और कोई तरुण विधवा ब्राह्मणी, क्षत्रिया छः महीने-बरस दिनसे ज्यादा पति-विधुरा नहीं रह

सकती थी, वहाँ अब उसे धर्म-विरुद्ध समझते हैं। स्वयं इन सारी ख़ुराफ़ातों—इस नये (हिन्दू) धर्म—की जड़ गुप्त राजवंशमें ही रामगुप्त की विधवा नहीं, सधवा स्त्रीको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने अपनी पटरानी बनाया था। तरुण स्त्रीको विधवा रखनेमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी उन्हें रोक नहीं सकते, और किस मुँहसे रोकेंगे, जब कि अपनी-अपनी पत्नियोंके रहते वह ख़ुद पराई स्त्रियोंके पीछे दौड़नेसे बाज़ नहीं आए। तरुण विधवा रखनेका आवश्यक परिणाम है गर्भपात, क्योंकि बच्चा उत्पन्नकर पालन करनेका मतलब है विधवा-विवाह स्वीकार करना, जिससे कि वह बचना चाहते हैं। इसी डरसे अब ब्राह्मणों और सामन्तोंने कुलीनता सिद्ध करनेका नया ढग निकाला है। वह है विधवाओंको ज़िन्दा जलाना। स्त्रीको इस तरह ज़िन्दा जलानेको वे लोग महापाप नहीं, महापुण्य समझते हैं। हर साल लाखों-लाख तरुणियोंको बलात् अग्निशात् करते देख जिन देवताओंका हृदय नहीं पसीजता, वह या तो वस्तुतः ही पत्थरके हैं अथवा हैं ही नहीं। कहते हैं, स्त्री सती अपने मनसे होती है! धूर्त्त! पाखंडी! नराधम! इतना झूठ क्यों बोलते हो? इन राजाओंके अन्तःपुरोंकी एक बारकी स्पृष्ट सैकड़ों स्त्रियोंमें—जिन्हें तुम आगमें भूनकर सती बना रहे हो—कितनी हैं, जिनका उस नर-पशुके साथ ज़रा भी प्रेम है; जिसने उन्हें जीवन-भरके लिए वन्दिनी बनाया, उसके लिए प्रेम? और वियोगमें पागल हो आगमें कूदनेका जो एकाध दृष्टान्त मिलता है, उसके पागलपनको भी दो-चार दिनोंमें ठंडा किया जा सकता है। आत्म-हत्या धर्म! सत्यानाश हो तुम पाखंडी पुरोहितों और राजाओंका। प्रयागके उस बरगद—अक्षयवट—से जमुनामें कूदकर मरनेको इन्होंने धर्म बतलाया, जिसके कारण हर साल हज़ारों पागल मरकर 'स्वर्ग' पहुँच रहे हैं! केदार-खंडके सत्पथमें जा बर्फ़में गलनेको इन्होंने धर्म कहा, जिसके कारण हर साल सैकड़ों सत्पथ के रास्ते स्वर्ग सिधारते हैं! मैं सारी आत्म-हत्याओंके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठा सकता था, क्योंकि मुझे ब्राह्मणोंमें राजाके आश्रित रहना था।

राजाके आश्रित रह रहा हूँ, किन्तु यह आश्रय लेना जान-बूझकर न था। मेरी अपनी सम्पत्ति इतनी थी कि मैं एक संयत भोगपूर्ण जीवन बिता सकता था। अपने समयके धर्मध्वजी राजाओं और ब्राह्मणोंसे मैं बहुत अधिक संयम रख सकता था। हर्ष और दूसरे राजर्षियोंकी भाँति मैं लाखचुम्बी (लाख सुन्दरियोंको भोगनेवाला) बननेकी होड़ रखने-वाला न था। ज़्यादा-से-ज़्यादा सौ सुन्दरियाँ होंगी, जिनके साथ मेरा किसी न-किसी समय प्रेम रहा होगा। किन्तु मेरा घर, सम्पत्ति, सब कुछ हर्षके राज्यमें था। जब उसका दूतपर दूत आ रहा हो फिर मैं कैसे राज-दरबारमे जानेसे इन्कार करता? हाँ, यदि मैं भी अश्वघोष होता, घर-द्वारकी फ़िक्र न होती, तो हर्षकी परवाह न करता।

हर्षके बारेमें यदि आप मेरी गुप्त सम्मति पूछेंगे, तो मैं कहूँगा कि अपने समयका वह बुरा मनुष्य या बुरा राजा न था। अपने भाई राज्यवर्धनके साथ उसका बहुत प्रेम था, और यदि भाईके लिए सती होनेका भी हमारे धर्मनायकोंने विधान किया होता, या संकेत भी कर रखा होता, तो वह उसे कर बैठा होता। लेकिन साथ ही उसमें दोष भी थे, और सबसे बड़ा दोष था दिखावा—प्रशंसाकी इच्छा रखते हुए अपनेको निस्पृह दिखाना; सुन्दरियोंकी कामना रहते हुए अपनेको कामना-रहित जतलाना; कीर्त्तिकी वाञ्छा रखते हुए कीर्त्तिसे कोसों दूर रहनेकी चेष्टा दर्शाना। मैंने हर्षको बिना पूछे अपने नाटकोंको 'हर्ष निपुण कवि'के नामसे क्यों प्रसिद्ध किया, इसके बारेमे कह चुका हूँ। किन्तु परिचय तथा रात-दिनकी संगति होनेके बाद उसने कभी नहीं कहा—'बाण, अब इन नाटकोंको अपने नामसे प्रसिद्ध होने दो।' यह आसान भी था। सिर्फ़ एक बार उसके अधीन सामन्त-दरबारोंमें 'श्री हर्षो निपुणः कविः'की जगह 'श्री बाणो निपुणः कविः'के साथ नाटक के अभिनय करा देनेकी ज़रूरत थी।

मुझे जगत् जैसा है, उसे वैसा ही चित्रित करनेकी बड़ी लालसा थी। यदि मैंने पर्यटनमें अपने बारह वर्ष न बिताए होते, तो शायद यह

लालसा न उत्पन्न होती, अथवा उत्पन्न भी होती, तो मैं उसका निर्वाह नहीं कर सकता। मैंने जहाँ अच्छोदसरोवरका वर्णन किया, वहाँ हिमालयकी तराईकी एक सुन्दर भूमि मेरे सामने थी। कादम्बरी-भवनके वर्णन करनेमें हिमालयका कोई दृश्य था। विन्ध्याटवीमें अपनी एक देखी जगहमें जरद् (बूढ़े) द्रविड़ धार्मिकको मैंने बैठाया। लेकिन इतने ही चित्रणसे मै अपनी तूलिकाको विश्राम नहीं देना चाहता था। मैंने हर्ष तथा दूसरे अपने सुपरिचित राजाओंके प्रासादों, अन्तःपुरों और उनकी लक्ष्मीका चित्रण अपने ग्रन्थोंमें किया; किन्तु मैं उन कुटियों और उनके वेदनापूर्ण जीवनको नहीं चित्रित कर सका, जिनकी वह अवस्था इन्हीं प्रासादों और रनिवासोंके कारण है। यदि चित्रित करता तो इन सारे राज-प्रासादों तथा राज-भोगोंपर इतनी ज़बरदस्त कालिमा पुतती कि हर पाँचवे साल प्रयागमें राजकोष—ग़लत है, अतिरिक्त कोष—उड़ानेवाला हर्ष फिर मुझे भुजंगकी पदवी देकर ही सन्तुष्ट न होता।

(३)

मुझे लोग दुर्मुख कहते हैं, क्योंकि कटु सत्य बोलनेकी मुझे आदत है। हमारे समयमें और भी कटु सत्य बोलनेवाले जब-तब मिलते हैं; किन्तु वह पागलोंके बहाने वैसा करते हैं, जिसके कारण कितने ही उन्हें सचमुच पागल समझते हैं और कितने ही श्रीपर्वतसे आया कोई अद्भुत सिद्ध। मैं भी इस श्रीपर्वतके युगमें एक अच्छा ख़ासा सिद्ध बन सकता था; किन्तु उस वक्त मेरा नाम दुर्मुख नहीं होता। किन्तु यह लोक-वंचना मुझे पसन्द नहीं। लोक-वंचनाके ही ख़यालसे मैंने नालन्दा छोड़ा, नहीं तो मै भी वहाँके पण्डितों, महापण्डितोंमें होता। वहाँ रहकर मैंने एक आदमीको अन्धकार-राशिमें अंगार फेंकते देखा था; किन्तु यह भी देखा कि किस तरह अपने-पराए उसके पीछे पड़े थे। आपको जिज्ञासा होगी उस आदमीके बारेमें। वह था तार्किक श्रेष्ठ, हज़ारों पुरुष-भेड़ोंमें एक ही पुरुष-सिंह धर्मकीर्त्ति। नालन्दामें बैठे हुए

उसने डकेकी चोटसे कहा—'बुद्धिके भी ऊपर पोथीको रखना, संसारके कर्त्ता ईश्वरको मानना, स्नान करनेसे धर्म होनेकी इच्छा, जन्म-जातिका अभिमान, पाप नाश करनेके लिए शरीरको सन्तप्त करना—अक्ल मारे हुओंकी जड़ताके ये पाँच लक्षण हैं।'*

मैंने धर्मकीर्त्तिसे कहा—'आचार्य, तुम्हारा हथियार तीक्ष्ण है; किन्तु इतना सूक्ष्म हो गया है कि यह लोगोंको नज़र ही नहीं पड़ेगा।'

धर्मकीर्त्तिने कहा—'मैं भी अपने हथियारकी कमज़ोरीको समझता हूँ। जिसका मैं ध्वंस करना चाहता हूँ, उसके लिए मुझे कवचहीन हो सबको दिखलाई देनेवाले प्रचण्ड हथियारोंको हाथमें लेना चाहिए। नालन्दाके स्थविर-महास्थविर (सन्त-महन्त) अभीसे मुझसे नाराज हैं। क्या तुम समझते हो, मैं एक भी विद्यार्थी पा सकूँगा, यदि मै कहना शुरू करूँ—नालन्दा एक तमाशा है, जिसमें ऐसे विद्यार्थी आते हैं, जो कभी विस्तृत लोकको आलोकित नहीं कर सकते, वह अपने ज्ञान-तेजसे अर्शो-अल्पर्शोंकी आँखोंमे चकाचौंध-भर पैदा करेंगे।' जिनको शीलादित्यके दिए गाँवोंसे सुगन्धित चावल, तेमन, घी, खजूर आदि मिलते हैं, वह शीलादित्यके भोगका शिकार बनी प्रजाको कैसे विद्रोही बननेका सन्देश दे सकता है?'

'तो आचार्य, आपको इस अन्धरात्रिसे निकलनेका कोई रास्ता भी सूझता है?'

'रास्ता? हरएक रोगकी दवा होती है, हरएक विपत्से निकलनेका कोई मार्ग होता है; किन्तु इस अन्धरात्रिसे निकलनेका रास्ता या इस वैतरणीका सेतु एक पीढ़ीमें नहीं बन सकता, मित्र! क्योंकि इसके बनानेवाले हाथ इतने कम हैं और उधर अन्धकारका बल ज़बरदस्त है।'

---

* वेदप्रामाण्य कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंचलिंगानि जाड्ये॥
—प्रमाणवार्त्तिक

'तो हताश हो बैठ जाना चाहिए ?'

'बैठ जाना लोक-वंचनासे कहीं अच्छा है। देखते नहीं, जिन्हें मार्गदर्शक होना चाहिए, वह कितने लोक-वंचक हैं ? और यह अवस्था सिर्फ एक देशकी नहीं, सारे विश्वकी मालूम हो रही है। सिंहल, सुवर्णद्वीप, यवद्वीप, कम्बोजद्वीप, चम्पाद्वीप, चीन, तुषार, पारस्य—. कहाँके विद्वान् विद्यार्थी हमारे नालन्दामें नहीं हैं। उनसे बात करनेसे मालूम होता है कि लोक अन्धा बना दिया गया है—'धिग् व्यापक तमः'।

धर्मकीर्तिने सहस्राब्दियों तक जलते रहनेवाले शब्दाङ्गारोंको फेंक इस निशान्धकारको दूर करनेकी कोशिश की; किन्तु तत्काल तो उसका मुझे कोई असर होता नहीं दिखलाई देता। मैंने तै किया, बलती हुई दीपयष्टियों (मशालों) को फेंकनेका। इसका एक फल तो यह हुआ कि मै दुर्मुख बन गया। यहाँ यह साफ़ कर देना चाहता हूँ कि अपनी जीभको इस्तेमाल करनेमें मुझे भी राजसत्तापर सीधे प्रहार न करनेका ख़याल रखना पड़ता है, नहीं तो दुर्मुखका मुख दस दिनोंमें बन्द कर दिया जाय। फिर भी आँख बचाकर कभी-कभी मैं दूर तक चला जाता हूँ।

आख़िर इसका क्या अर्थ है, तुम मरनेके बाद मुक्ति और निर्वाण दिलानेकी बात करते हो, और यहाँ जो लाखों दास पशुओंकी भाँति बँधे बिक रहे हैं, उन्हें मुक्त करनेकी कोशिश क्यों नहीं करते ? मैंने एक बार प्रयागके मेलेपर राजा शीलादित्यसे यही सवाल किया था—'महाराज, तुम जो बड़े-बड़े धनी विहारों और ब्राह्मणोंको पाँचवें साल इतना धन बाँट रहे हो, इसे दास-दासियोंको मुक्त करानेमे लगाते, तो क्या वह कम पुण्यका काम होता ?'

शीलादित्यने दूसरे समय बात करनेकी बात कहकर टालना चाहा; किन्तु मैंने दूसरा समय भी निकाल लिया, और निकालनेका मौक़ा राजाकी बहन भिक्षुणी राज्यश्रीने ज़बर्दस्ती दिलाया। मैंने राज्यश्रीके

सामने दास-दासियोंकी नरक-यातनाका चित्र खींचा। उसका दिल पिघल गया। फिर जब मैंने कहा कि धन देकर इन सनातन—पीढ़ी-दर-पीढ़ीके—बन्दी मानवोंको मुक्ति प्रदान करना सबसे पुण्यकी बात है, तो यह उसके मनमें बैठ गया। बेचारी सरल-हृदया स्त्री दासताके भीतर छिपे बड़े-बड़े स्वार्थोंकी बात क्या जानती थी! उसे क्या मालूम था कि जिस दिन भूमिको स्वर्गमें परिणत कर दिया जायगा उसी दिन आकाशका स्वर्ग ढह पड़ेगा। आकाश-पातालके स्वर्ग-नरकको क़ायम रखनेके लिए, उनके नामपर बाज़ार चलानेके लिए, ज़रूरत है, भूमिके स्वर्ग-नरककी, राजा-रंककी, दास-स्वामीकी।

राजाने अकेलेमे बातकी। उसने पहले तो कहा—'मै एक बार बहुत-सा कोष ख़र्चकर मुक्त तो कर सकता हूँ; किन्तु फिर ग़रीबीके कारण वह बिक जायँगे।'

'आगेके लिए मनुष्यका क्रय-विक्रय दण्डनीय कर दें।'

फिर वह चुपचाप सोचने लगा। मैंने उसके सामने 'नागानन्द'के नागका दृष्टान्त दिया, जिसने दूसरेके प्राणको बचानेके लिए अपना प्राण देना चाहा। 'नागानन्द' हर्ष राजाका बनाया नाटक कहा जाता है, क्या जवाब देता! आख़िरमें यही पता लगा कि दास-दासियोंको मुक्त करनेमे उसको उतनी कीर्ति मिलनेकी आशा नहीं, जितनी कि श्रमण-ब्राह्मणोंकी झोली भरने या बड़े-बड़े मठ-मन्दिरोंके बनानेमे। मुझे उसी दिन पता लग गया कि वह शीलादित्य नहीं, शीलान्धकार है।

बेचारे शीलादित्यको ही मै क्यों दोष दूँ! आजकल कुलीन, नागरिक होनेका यह लक्षण है कि सब एक दूसरेकी वंचना करें। पुराने बौद्ध-ग्रन्थोंमे बुद्धकालीन रीति-रवाजको पढ़कर मैं जानता हूँ कि पहले मद्य पीना वैसा ही था, जैसा कि पानी पीना। न पीनेको उस वक्त उपवास-व्रत मानते थे। आजकल ब्राह्मण मद्य-पानको निषिद्ध मानते हैं, और खुलकर पीना आफत मोल लेना है; किन्तु इसका परिणाम क्या है? देवताके नामपर, सिद्धि-साधनाके नामपर छिपकर

भैरवीचक्र चल रहे हैं। ब्रह्मचर्यका भारी हल्ला मचा हुआ है; किन्तु परिणाम ? भैरवीचक्रमें अपनी-पराई सभी स्त्रियाँ जायज़ हैं। यही नहीं, देवताके वरदानके नामपर वहाँ माँ, बहन, बेटी तकको जायज कह दिया गया है। और परिव्राजकों, भिक्षुओंके अखाड़े अप्राकृतिक व्यभिचारके अड्डे बन गए हैं। यदि सचमुच इस दुनियाका देखने-सुननेवाला कोई होता, तो इस वंचना, इस अंधेरको वह एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त न करता।

एक बार मैं कामरूप गया था। वहाँके राजा नालन्दाके प्रेमी और महायानपर भारी श्रद्धा रखते थे। मैंने कहा—'महायानी बोधिसत्त्वके व्रतको मानते हैं, जिस व्रतमे कहा गया है कि जब तक एक भी प्राणी बन्धनमें है, तब तक मुझे निर्वाण नहीं चाहिए। आपके राज्यमे महाराज, इतने चण्डाल हैं, जो नगरमें आते हैं, तो हाथसे डंडा पटकते आते हैं, जिसमें लोग सजग हो जायँ और उनको छूकर अपवित्र न बनें। वह अपने हाथोंमें बर्तन लेकर चलते हैं, जिसमें उनका अपवित्र थूक नगरकी पवित्र धरतीमे न पड़ जाय। कुत्तेके छूनेसे आदमी अपवित्र नहीं होता और न उसका विष्टा ही नगरको चिर-दूषित करता है; फिर क्या चण्डाल कुत्तेसे भी बदतर हैं ?'

'कुत्तेसे बदतर नहीं हैं। उसमे भी वह अंकुर, जीवन-प्रवाह मौजूद है, जो कभी विकसित होकर बुद्ध हो सकता है।'

'फिर क्यों नहीं राज्यमें डुग्गी पिटवा देते कि आजसे किसी चंडालको नगरमें डंडा या थूकका बर्तन लानेकी ज़रूरत नहीं है।'

'यह मेरी शक्तिसे बाहरकी चीज़ है।'

'शक्तिसे बाहर !'

'हाँ, धर्म-व्यवस्था ऐसी ही बँधी हुई है।'

'बोधिसत्त्वोंके धर्मकी—महायानकी यही व्यवस्था है ?'

'लेकिन यहाँकी प्रजा महायानपर तो नहीं चलती।'

'मैं गाँव, पुर सर्वत्र त्रिरत्नकी जयदुन्दुभी बजते देखता हूँ।'

'हाँ, कहनेके लिए। जिस दिन मैं यह घोषित करूँगा, उसी दिन मेरे प्रतिद्वन्द्वी भड़काकर तूफान खड़ा करेंगे कि यह तो सनातनसे चले आए सेतुको तोड़ रहा है।'

'क्या बोधिसत्व-जीवनकी महिमाके बारेमें अहर्निश जो उपदेश हो रहे हैं, उनका किसीपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है? मैं समझता हूँ महाराज, कुछपर असर ज़रूर पड़ा है, और यदि बोधिसत्वकी भाँति अपना सब कुछ अर्पण करनेके लिए तैयार हो जायँ, तो आपके पीछे चलनेवाले बहुत-से मिल जायँगे।'

'राज्यके भीतरका सवाल ही नहीं, हमारे परम भट्टारक देव भी नाराज़ हो जायँगे।'

'शीलादित्य हर्ष! जिन्होंने 'नागानन्द' नाटकमें बोधिसत्व-जीवनका भव्य चित्र चित्रित किया है?'

'हाँ, चला आया सेतु तोड़ना किसीके बसकी बात नहीं है।'

'यही बात यदि तथागत समझते? यही बात यदि आर्य अश्वघोष समझते? यही बात यदि आर्य नागार्जुन समझते?'

'उनको साहस था, तो भी सेतु तोड़नेमें वह भी दूर तक नहीं जा सके।'

'दूर तक नहीं, नज़दीक तक ही बढ़िए, महाराज! कुछ आप बढ़ेंगे, कुछ आपके आगे आनेवाले बढ़ेंगे।'

'क्या मुझे आप अपने मुँहसे कायर कहलाकर ही छोड़ेंगे?'

'कायर नहीं, किन्तु यह ज़रूर कि धर्म हमारे लिए ढोंग है।'

'मेरे दिलसे पूछिए, तो मै "हाँ" कहूँगा; किन्तु यदि जीभसे पूछिए, तो वह या तो साफ "नहीं" कहेगी, अथवा गूँगी बन जायगी।'

ब्राह्मणोंके धर्मसे मुझे नफरत है। वस्तुतः कामरूप-नृपति जैसे कितने ही दिलके भले लोगोंको कायर बनानेका दोष इसी ब्राह्मण-धर्मको है। जिस दिन यह धर्म इस देशसे उठ जायगा, उस दिन पृथिवीका एक भारी कलंक उठ जायगा। नालन्दामें आए विदेशी

भिक्षुओंसे सुना कि उनके देशमें ब्राह्मण-जैसी कोई सर्वशक्तिमान धर्म-नायक जाति नहीं है। उनके इस कहनेसे मुझे यह भी समझमें आ गया कि क्यों उन देशोंमें डंडे और पुरवे लेकर चलनेवाले चण्डालोंका पता नहीं। ब्राह्मणोंने हमारे देशके मनुष्योंको छोटी-बड़ी जातियोंमें इस तरह बाँट दिया है कि कोई अपनेसे नीचेवालेको अपनेसे मिलने देनेके लिए तैयार नहीं। इनका धर्म और ज्ञान साफ़ राहु-केतुकी छाया है।

नालन्दामें देश-देशान्तरोंकी विचित्र ख़बरें बहुत मिला करती थीं, इसीलिए मैं एक-दो वर्ष पर्यटनकर फिर छः महीनेके लिए नालन्दा चला जाता हूँ। एक बार एक पारसीक भिक्षुने बतलाया कि उनके देशमें मज़्दक नामका एक विद्वान् कुछ ही समय पहले हुआ था, जिसने एक प्रकारके संघवादका प्रचार किया था। बुद्धने भी भिक्षु-भिक्षुणियोंके लिए एक तरहके संघवादका—जहाँ तक सम्पत्तिका सवाल है—उपदेश किया; किन्तु वह संघवाद अब सिर्फ़ विनयपिटकमें पढ़नेके लिए है। आज तो बड़ी-बड़ी वैयक्तिक (पौद्‌गलिक) सम्पत्ति रखनेवाले भिक्षु हैं। आचार्य मज़्दक ब्रह्मचर्य और भिक्षुवादको नहीं मानता था। वह मानवके प्रकृत जीवन—प्रेमी प्रेमिका, पुत्र-पौत्रके जीवन—को ही मानता था; किन्तु कहता था कि सारी बुराइयोंकी जड़ 'मैं' और 'मेरापन' है। उसने कहा—'सम्पत्ति अलग नहीं होनी चाहिए; सब मिलकर कमायें, सब मिलकर खायें। पति-पत्नी अलग नहीं होने चाहिएँ, प्रेम स्वेच्छापर रहे और सन्तान सबकी सम्मिलित मानी जाय। वह प्राणी-दया और संयमकी भी शिक्षा देता था। मुझे उसके विचार सुन्दर मालूम हुए। जब मैंने सुना कि मज़्दक और उसके लाखों अनुयायियोंको मारकर एक पारसीक राजा—नौशेरवाँ—ने न्यायमूर्तिकी उपाधि धारण की है, तो मुझे मालूम हो गया कि जब तक राजा रहेंगे, जब तक धर्म और उसके दान पुण्यसे जीनेवाले श्रमण-ब्राह्मण रहेंगे, तब तक पृथिवी स्वर्ग नहीं बन पायगी।

१४—चक्रपाणि

काल—१२०० ई०

उस वक्त कन्नौज भारतका सबसे बड़ा और समृद्ध नगर था। उसके हाट-बाट, चौरस्ते बहुत ही रौनक थे। मिठाइयाँ, सुगन्धि तेल, पान, आभूषण और कितनी ही दूसरी चीज़ोंके लिए वह सारे भारतमे मशहूर था। छः सौ सालोंसे मौखरि, बैस, प्रतिहार, गहरवार-जैसे भारतके अपने समयके सबसे बड़े राजवशोंकी राजधानी होनेके कारण उसके प्रति एक दूसरा ही तरहकी श्रद्धा लोगोंमे हो आई थी। यही नहीं, जातियोंने उसके नामपर अपनी शाखाओंके नामकरण कर डाले थे। इसीलिए आज ब्राह्मण, अहीर, काँदू आदि बहुत-सी जातियोंमे कान्य-कुब्ज ब्राह्मण, कान्यकुब्ज अहीर आदि हैं। कान्यकुब्ज (कन्नौज के नामपर लोगोंको उसी तरहका ख़याल पैदा हो जाता था, जैसा कि हिन्दूधर्मके नामपर। हर्षवर्द्धनके समयसे अब तक दुनियामें बहुत परिवर्त्तन हो गया था; किन्तु तबसे अब भारतीय दिमाग़में भारी कूपमंडूकता आ गई थी।

हर्षवर्द्धनके कालमें अरब मे एक नया धर्म—इस्लाम—पैदा हुआ था, जिसको उस समय देखकर कौन कह सकता था कि उसके संस्थापक की मृत्यु (६२२ ई०) के सौ सालके भीतर ही वह सिन्धसे स्पेन तक फैल जायगा। जातियों और राजाओंके नामपर देश-विजय ही अब तक सुननेमें आती थी, अब धर्मके नामपर देशोंकी विजय-यात्रा पहले-पहल सुननेमें आई। उसने अपने शिकारोंको सजग होनेका मौक़ा नहीं दिया, और उन्हें एकाएक धर दबाया। ससानियों (ईरानियों) का ज़बरदस्त साम्राज्य देखते-देखते अरबोंके स्पर्शके साथ कागज़की नावकी भाँति गल गया और इस्लाम-संस्थापककी मृत्युके बाद दो शताब्दियाँ बीतते-बीतते इस्लामी राज्यकी ध्वजा पामीरके ऊपर फहराने लगी।

इस्लामने पहले सारी दुनियाको अपने अरबी कबीलोंका विस्तृत रूप देना चाहा और उसीके साथ कबीलोंकी सादगी, समानता और भ्रातृभावको अपने अनुयायियोंके भीतर भरना चाहा। इस अवस्थासे वैदिक आर्योंके पूर्वज तबसे तीन हज़ार वर्ष पहले ही गुज़र चुके थे। गुज़रा युग फिर लौटना असम्भव है। इसलिए जैसे ही इस्लाम कबीलोंसे आगेकी सीढ़ीपर रहनेवाले सामन्तशाही मुल्कोंके सम्पर्कमें आया, वैसे ही उसकी तलवारके सामने इनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता विलीन हो गई, उसी तरह उनके सम्पर्कमें आते ही इस्लामी समाजके कबीलेपनका स्वरूप ख़त्म हो गया। इस्लामका प्रधान शासक कितने ही समय तक केवल उसके संस्थापकका ख़लीफ़ा—उत्तराधिकारी—कहा जाता था, चाहे वह वस्तुतः सुल्तान—निरंकुश राजा—होता। किन्तु अब तो नामसे भी सुल्तान कहलानेवाले अनेक आ मौजूद हुए थे, जिन्हें इस्लामके पवित्र कबीले, उसकी सादगी, समानता, भ्रातृभावसे कोई मतलब न था। लेकिन नए मुल्कोंके जीतनेमें तलवार चलानेवाले सिपाहियोंकी ज़रूरत थी, और यह तलवार अब अरबी नहीं ग़ैर-अरबी थी। इन सिपाहियोंको सुल्तानके नामपर लड़नेके लिए उतना उत्साहित नहीं किया जा सकता था, इसीलिए स्वर्गकी न्यामतोंके प्रलोभनके साथ पृथिवीकी न्यामतोंमें उन्हें हिस्सेदार बनाया गया। लूटके माल तथा तातारी बन्दियोंमें उनका हक़ था, नई जीती भूमिपर बसनेका उनका स्वत्व था, अपने पुराने पीड़कों और स्वामियोंसे मुक्त होने तथा उनका अस्तित्व तक मिटा देनेका उनका हक़ था। पराजितोंमेंसे विजेताओंके झण्डोंको अपना बनाकर आगे बढ़नेवाले इतने सैनिक कभी किसीको नहीं मिले थे। ऐसी सेनासे—जो हमारे भीतरसे ही अपने लिए लड़नेवाली सेना तैयार कर सके—मुक़ाबिला करना आसान काम न था।

हर्षको मरे सौ वर्ष भी नहीं गुज़रे थे कि सिन्ध इस्लामके शासनमें चला गया। बनारस और सोमनाथ (गुजरात) तकके भारतको इस्लामी तलवारका तजुर्बा हो चुका था।। इस नए ख़तरेसे बचनेके

लिए नए तरीक़ेकी ज़रूरत थी; किन्तु हिन्दू अपने पुराने ढर्रेको छोड़नेके लिए तैयार न थे। सारे देशके लड़नेके लिए तैयार होनेकी जगह वही मुट्ठीभर राजपूत (पुराने क्षत्रिय तथा शादी ब्याह करके उनमें शामिल हो जानेवाले शक, यवन गुर्जर आदि) भारतके सैनिक थे, जिन्हें बाहरी दुश्मनोंसे ही फ़ुर्सत न थी, और राजवंशोंकी नई-पुरानी शत्रुताओंके कारण आख़िर तक भी वह आपसमें मिलनेके लिए तैयार न थे।

(१)

'महाराज, चिन्ता न करें। सिद्ध गुरुने ऐसी साधना शुरू की है, जिससे कि तुर्क सेना हवामें सूखे पत्तोंकी भाँति उड़ जायगी।'

'गुरु मित्रपाद (जगन्मित्रानन्द) की मुझपर कितनी कृपा है ! जब-जब मुझपर, मेरे परिवार पर, कोई संकट आया, गुरु महाराजने अपने दिव्य-बलसे बचाया।'

'महाराज, सिद्ध गुरुने हिमालयके उस पार भोट देशसे कन्यकुब्जके संकटको देखा। उन्होंने इसीलिए मुझे आपके पास भेजा है।'

'कितनी कृपा है!'

'कहा है, तारिणी (तारादेवी) महाराजकी सहायता करेंगी। तुर्कोंकी चिन्ता न करें।'

'तारामाईपर मुझे पूरा भरोसा है। तारिणी ! आपच्छरण्ये ! माँ, म्लेच्छोंसे रक्षा कर।'

वृद्ध महाराज जयचन्द्र अपने इन्द्र-भवनके समान राज-प्रासादमें एक कर्पूरश्वेत कोमल गद्देपर बैठे हुए थे। उनकी बग़लमें चार अति सुन्दरी तरुणी रानियाँ बैठी थीं, जिनके गौर मुखपर भ्रमर-से काले केश पीछेकी ओर द्वितीय सिर बनाते हुए जूड़ेके रूपमें बँधे थे। चूड़ामणि, कर्णफूल, अंगद, कंकण, हार, चन्द्रहार, मुक्ताहार, कटिकिंकिणी, नूपुर आदि नाना स्वर्ण-रत्नमय आभूषण उनके शरीरसे भी भारी थे। उनके शरीरपर सूक्ष्म साड़ी और कंचुकी थी; किन्तु जान पड़ता था, वे शरीरके गोपनके लिए नहीं, बल्कि सुप्रकाशनके लिए थीं। कंचुकी स्तनों

के उभार और अरुणिमाको सुन्दर रीतिसे दिखलाती थी। उससे नीचे सारा उदर नाभि तक अनाच्छादित था। सारी उरु और पिंडुली की आकृति और वर्णको झलकाती थी। उनके केशोंके सुगन्धित तैल और नवपुष्पित यूथिका (जूही) स्रजके कारण सारी शाला गम-गम कर रही थी। रानियोंके अतिरिक्त पचाससे अधिक तरुणी परिचारिकाएँ थीं, जिनमें कोई चँवर, मोर्छल या व्यजन (पंखे) झल रही थी; कोई पानदान लिए, कोई दर्पण और कंघी लिए, कोई सुगन्धित जल की झारी लिए, कोई काँचके सुराभाँड़ और कनक चषक लिए, कोई साँपके केंचुलीकी तरह शुभ्र निर्मल अंग-पोंछन लिए खड़ी थी। कितनी ही मृदंग, मुरज, वीणा, वेणु आदि नाना वाद्योंको लिए बैठी थीं और कुछ जहाँ-तहाँ स्वर्ण-मण्डित दण्ड लिए खड़ी या टहल रही थी। सिवाय आगन्तुक मित्रपादके शिष्य शुभाकर भिक्षु और राजा जयचन्द्रके वहाँ सभी नारियाँ थी और सभी तरुणी वयस्क सुन्दरियाँ।

भिक्षुने महाराजसे विदाई ली। रानियों और राजाने खड़े होकर अभिवादन किया। अब यहाँ नारीमय जगत् था। जयचन्द्र वृद्ध थे; किन्तु उनके अर्द्ध-श्वेत लम्बे-लम्बे केश बीचमें माँग निकाल पीछेकी ओर जिस प्रकार बाँधे हुए (द्विफालबद्ध) थे, बड़ी-बड़ी मूँछे जिस प्रकार सँवारी हुई थीं, उनके शरीरके आभूषणों और वस्त्रोंकी जिस प्रकार सज्जा थी, उससे पता चलता था कि वह यौवनको अनस्ति (असमाप्त) समझते थे। उनके इशारे पर चषकको एक परिचारिकाने झुककर महाराजके सामने किया और रानीने ले, भरे प्यालेको महाराज के सामने पहुँचाया। उन्होंने उसे रानीके ओठसे लगाकर कहा—'राजल्ल (राजलक्ष्मी), मेरी तारा, तुम्हारे उच्छिष्ट किए बिना मैं कैसे इसे पान कर सकता हूँ?'

रानीने ओठों और जीभकी नोकको भिगो लिया। राजाने उस प्रसादको पान किया। फिर उनकी एक-एक ताराओंने उन्हें प्रसाद प्रदान किया। आँखोंमें लाली आई। तुरस्क (तुर्क)-चिन्ता चेहरेसे

दूर हो मुस्कराहट आने लगी। राजाका स्थूल शरीर मसनदके सहारे ओठंग गया, और उसने किसी रानीको एक बगलमे, किसीको दूसरी बगलमे दबाया, किसीकी गोदमे सिरको रखा और किसीके वक्षस्थलपर भुजाओंको। सुराके प्याले बीच-बीचमें चल रहे थे। रानियोंके साथ कामोत्तेजक परिहास हो रहे थे। राजाने इसी समय नाचनेकी आज्ञा दी। घाघरा पहने, घुँघरू बाँधे, बिल्वस्तनी, अनुदरा, विकट नितम्बा सुन्दरियाँ नाचनेके लिए खड़ी हुईं। वीणा और मृदंग ध्वनित होने लगे। काकली गानके साथ नृत्य शुरू हुआ। एक गानके बाद राजाको वह फीका लगने लगा। उसने सुन्दरियोको नग्न हो नाचनेकी आज्ञा दी। नर्त्तकियोंने सारे वस्त्र और सारे आभूषण उतार दिए, सिर्फ पाद-किंकिणी भर रखी। पार्श्वमे बैठी रानियों और तरुणी परिचारिकाओंके साथ आलिंगन-चुम्बन और परिहास चलता रहा। बीच-बीचमें नग्न-नर्त्तन होता रहा। जिसका नग्न-शरीर महाराजाको आकर्षित करता, वह उनके पास आ जाती और फिर दूसरी नग्न हो उसका स्थान ग्रहण करती। महाराजकी आँखें और लाल हो गई थीं। उनके कंठ और स्वर पर भी सुराने प्रभाव डाला था—'धू-धत्-तू-ते-रे तु-तुर्-र्-कों-ों-की-ी। म्-मे-रे इ-इन्-न्द्र-म्-पु-र्-र्में कौ-ौ-न सा-ा-ला-ा आ-ा-त्-ता-ा है। स्-सब् न्-नगी ना-ा-चें।'

शालाकी सारी रानियोंने अपने-अपने कपड़ों और आभूषणोंको उतार दिया। उनके तरुण सुन्दर गौर शरीरपर घनस्थूल कबरी (जूड़ा) से भारी हुआ सिर राजाको पसन्द नही आया। उसने कबरीको खोल देनेको कहा, और सभी सिरोंसे काली नागिनोंकी भाँति दीर्घ वेणियाँ नितम्बोंपर लटकने लगीं। महाराजको स्वयं कंचुक उतारते देख तरुणियोंने उनके वस्त्रों और आभूषणोंको भी उतारा। उनके मांस लटके चिबुक, अतिफुल्ल कपोल, गंगाजमुनी मूँछें, प्रसूताकी तरहके लम्बित स्तनों, महाकुम्भ-सा उदर, पृथुल कोमल मास-मेदपूर्ण उरु तथा पेंडुली, रोमश स्थूल बाहुओंको देखकर साधारण तरुणी भी अवश्य

किये बिना नहीं रहती; किन्तु, यहाँ उनका शरीर-प्राण इस बूढ़ेके हाथ था। कोई उनके दन्त-रहित ओठोंमें अपने ओठोंको दे रही थी, कोई उनके पार्श्वोंसे अपने स्तनोंको पीड़ित कर रही थी, कोई उनकी रोमश भुजाओंको अपने कन्धों और कपोलोंसे लगा रही थी। कामोत्तेजक गीतके साथ नृत्य शुरू हुआ। रानियों और परिचारिकाओंके बीच अपनी उछलती तोंद लिए महाराज भी नाचने लगे।

(२)

'आइए कवि चक्रवर्ती!' कह राजाने एक अधेड़ पुरुषके लिए आसनकी ओर संकेत किया, और बैठ जानेपर पानके दो बीड़े बड़े सम्मानके साथ प्रदान किये। कवि चक्रवर्तीकी आयु पचाससे उपर थी। उनके गौर भव्य चेहरेपर अब भी उजड़े वसन्तकी छाप थी। उनकी मूँछें अब भी काली थीं। उनके शरीरपर सफेद धोती और सफेद चादरके अतिरिक्त रुद्राक्षकी एक सुन्दर माला तथा सिरपर भस्मका चन्द्राकार त्रिपुण्ड था।

कविने सुवासित सुवर्ण पत्रवेष्टित पान मुँहमें रखते हुए कहा—'देव, यात्रा क्षेमसे तो हुई? शरीर स्वस्थ तो था? रातें सुखकी नींद तो लाती हैं न?'

'अब पौरुष थकता जा रहा है, कवि-पुंगव!'

'महाराज, आप अपने कवि श्रीहर्षका खूब उपहास करते हैं।'

'पुंगव उपहास नहीं, प्रशंसाका शब्द है।'

'पुंगव बैलको कहते हैं, देव!'

'जानता हूँ, साथ ही श्रेष्ठको भी कहते हैं।'

'मैं तो इसे बैलके अर्थमें ही लेता हूँ।

'और मैं श्रेष्ठके अर्थमें। फिर कवि-मित्र, तुम्हारे जैसे नरम सचिव (लँगोटिया यार)से उपहास-परिहास नहीं किया जाय, तो किससे किया जाय?

'दरबारमें तो नहीं, महाराज!' श्रीहर्षने धीरेसे कहा।

जयचन्द्र कविका हाथ पकड़ आस्थानशाला (दरबारहाल)से निकल क्रीड़ोद्यानकी ओर चल पड़े। ग्रीष्मका प्रारम्भ था। हरे-हरे वृक्षोंको धीरे-धीरे कम्पित करनेवाला समीर बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था। राजाने दीर्घिका (पुष्करिणी)के सोपानके ऊपर रखे शुभ्र मर्मरशिलासन पर बैठ बगलके आसनपर कविको बैठनेके लिए कहा और फिर बात शुरू की—'तुम रातकी क्या पूछते हो, कवि! अब तो मैं अनुभव करने लगा हूं कि मै दरअसल बूढा हूँ।'

'कैसे?'

'नग्न सुन्दरियाँ भी मेरे कामको नहीं जगा सकतीं।'

'तब तो महाराज, आप पूरे योगी हैं।'

'इस योगीके पासकी यह सोलह हज़ार सुन्दरियाँ क्या करेंगी?'

'बाँट दें, महाराज! बहुतसे लेनेवाले मिल जायेंगे, या ब्राह्मणोंको गंगा-तटपर जलकुश ले दान कर दें, "सर्वेषामेव दानस्ता भाग्योदानं विशिष्यते"।'

'वही करना पड़ेगा। वैद्यराज चक्रपाणिका वाजीकरण रस तो निष्फल ही गया। अब सिर्फ तुम्हारे काव्यरसकी एकमात्र आशा है।'

'नग्न सौन्दर्य-रस जहाँ कुण्ठित हो, वहाँ काव्य-रस क्या करेगा? और अब फिर महाराज, आप साठ सालसे ऊपर हो गए हैं।'

'साठा तो पाठा होता है, कवि!'

'कौन? क्या सोलह सहस्र कलोरियोंका चिरविहारी वृषभ?'

'तुम काशी (बनारस)में दिखलाई नहीं दिए, मुझे कन्नौजसे आए दो मास बीत गए।'

'महाराज, मै चैत्र नवरात्रमे भगवती विंध्यवासिनीके चरणोंमे गया था।'

'मेरी नाव विन्ध्यवासिनीके घामसे ही गुज़री। जानता, तो बुला लेता।'

'या वहीं उतरकर कुमारी-पूजामे व्यस्त हो जाते।'

'तो कवि, कुमारी-पूजाके ही लिए तो तुम वहाँ नहीं गए थे ?'

'हम भगवतीके उपासक शाक्त हैं, महाराज !'

'लेकिन तुम राम-सीताकी वदना करते हो, तो मालूम होता है कि पक्के वैष्णव हो ?'

'अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।'

'सभा मध्ये वैष्णव हो ?'

'होना ही पड़ता है, महाराज ! हम आपकी तरह दूसरेकी जीभ थोड़े ही खिंचवा सकते हैं ?'

'धन्य हो नाना रूपधर !'

'महाराज, इतना ही नहीं, मैंने सुगत (बुद्ध)को भी अपनी आराधनामें शामिल कर लिया है ।'

'सुगत, भगवान् तथागतको भी ?'

'भगवान् !'

'हाँ, छीः नाम आनेपर इस स्थानमें भी मेरी आँखोंमें ज़रा लज्जा आने लगती है ।'

'वज्रयानने महाराज, हम शाक्तोंके लिए सुगतकी पूजा सरल कर दी है ।'

'ठीक कहा मित्र, इसीलिए तो उसे सहजयान कहते हैं ।'

'इन सहजयानी सिद्धोंके दोहों और गीतोंमे मुझे कोई कवित्व तो नहीं दिखलाई पड़ता; किन्तु पच मकार (मद्य, मास, मीन, मुद्रा, मैथुन)का प्रचारकर जितना लोक-कल्याण इन्होंने किया है, उसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ ।'

'किन्तु, अब मेरे लिए, जान पड़ता है, अखंड पंचमकारकी उपासना दुष्कर होगी ।'

'वज्रयानके साथ नागार्जुनका माध्यमिक दर्शन क्या सोनेमें सुगन्धि है !'

'तुम्हारे काव्यका रस तो मैं चख लेता हूँ । यद्यपि कहीं-कहीं उसमें

भी माथा चकराता है; किन्तु यह दर्शन तो पत्थरकी तरह मेरे सिरपर बोझा बना हुआ है।'

'तो भी महाराज, नागार्जुनका दर्शन बड़े कामका है। वह बहुतसी मिथ्या धारणाओंको दूर कर देता है।'

'लेकिन तुम तो वेदान्ती प्रसिद्ध हो, कवि!'

'मैंने अपने ग्रन्थको वेदान्त कहकर ही प्रसिद्ध किया है, महाराज, किन्तु, जब 'खंडन खंड खाद्य'में नागार्जुनकी चरण-धूलिको ही सर्वत्र वितरित किया है।'

'याद तो रहनेका नहीं, फिर भी बतलाओ, नागार्जुनमें क्या ख़ास बात है?'

'सिद्धराज मित्रपाद नागार्जुनके ही दर्शनको मानते हैं।'

'मेरे दीक्षा-गुरु?'

'हाँ, नागार्जुन कहते हैं—पाप-पुण्य, आचार-दुराचार सभी कल्पनाएँ हैं। जगत्की सत्ता-असत्ता कुछ भी सिद्ध नहीं की जा सकती स्वर्ग-नरक और बन्धन-मोक्ष बालकोंके भ्रम हैं। पूजा उपासना पामरों की वंचनाके लिए हैं। देव-देवीकी लोकोत्तर कल्पना मिथ्या है।'

'जीवन तो मैंने भी इसी दर्शनमें विताया है, कवि!'

'सभी विताते हैं, महाराज! नक़द छोड़ उधारके पीछे मूर्ख दौड़ते हैं।'

'लेकिन अब तो नक़दको सामने रखकर टुकुर-टुकुर ताकना है मित्र! पर तुम तो अभी घिसते नहीं मालूम होते।'

'मैं आठ वर्ष छोटा भी तो हूँ, महाराज! फिर मैंने एक ब्राह्मणीसे ज़्यादा ब्याह नहीं किया।'

'ब्याह करनेसे क्या होता है? इतने ब्याह करनेपर तो भाँवरोंमें ही आदमी थककर मर जाय।'

'मेरे घरमें एक ही ब्राह्मणी है, महाराज!'

'और दुनिया विश्वास कर लेगी कि कवि श्रीहर्ष उसी दँतटुट्टी बुढ़ियापर सती हो रहा है!'

'विश्वास करेगी, जो कर ही रही है, महाराज! मैने अपने ग्रन्थोंमें अपनी समाधि लगा ब्रह्म-साक्षात्कारकी बात भी लिख दी है।'

'तुम्हारे माध्यमिक दर्शनमे ब्रह्म और उसके साक्षात्कारकी भी गुंजायश है, कवि।'

'महाराज, वहाँ क्या-क्या गुंजाइश नही है।'

'प्रजाकी अन्धी आँखें मौजूद रहनी चाहिएँ, उन्हें सबका साक्षात्कार कराया जा सकता है।'

'तो महाराज, आपका धर्मपरसे विश्वास उठ गया है।'

'इसे मै नहीं जानता, कवि! मुझे मालूम ही नहीं पड़ता, किस वक्त विश्वास आता है और किस वक्त चला जाता है। तुम्हारे धर्मात्मा ब्राह्मणोंके उपदेशों-आचरणोंको सुन-देखकर मेरे लिए कुछ तै करना मुश्किल है। मैं तो यही जानता हूँ कि दान-पुण्य, देवालय-सुगतालयका निर्माण आदि जो कुछ धर्म कहता हो, करो; किन्तु नक़द जीवनको हाथसे न जाने दो।'

'प्रेम और धर्मसे चलकर उनकी बात राज काजपर आई। श्रीहर्षने कहा—'क्या सचमुच महाराजने पृथिवीराजका साथ देनेसे इन्कार कर दिया है?'

'मुझे क्या ज़रूरत है उसका साथ देनेकी? उसने खुद तूफ़ानसे झगड़ा मोल लिया है ख़ुद भुगतेगा।'

'मेरी भी सम्मति यही है, महाराज! यह चक्रपाणि झूठमूठ परेशान करता है।'

'उसका काम चिकित्सा करना है; सो उसमें तो कुछ नहीं बन पड़ता। तीन बार बाजीकरण-चिकित्सा की; किन्तु सब निष्फल! और अब चला है राज-काजमे सलाह देने।'

'नहीं महाराज, वह मूर्ख है। व्यर्थ ही युवराजने उसे सिरपर चढा रखा है।'

(३)

'ठीक कहा वैद्यराज, श्रीहर्ष गहरवारोंकी जड़में घुन बनकर लगा है। इसने पिताजीको कामुक अंधा बना रखा है।'

'कुमार, मै बीस वर्षसे कान्यकुब्जेश्वरका राजवैद्य हूँ। मेरी औषधियोंका कुछ गुण है।'

'गुण सारी दुनिया जानती है, वैद्यराज!'

'किन्तु महाराज वाजीकरणके सम्बन्धमें नाराज़ हैं। अतिकामुक पुरुषकी तरुणाईको कितनी देर तक बढ़ाया जा सकता है, कुमार? इसीलिए आहार-विहारमें संयम करनेके लिए लिखा गया है। मैं तो कहता हूँ, मुझे मल्लग्राम (मलाँव) मे बैठ जाने दीजिए; लेकिन उसको भी वे नही मानते।'

'किन्तु पिताके दोषके कारण हमें न छोड़ जाइए, वैद्यराज! गहरवारोंको अब बस आपसे ही आशा है।'

'मुझसे नहीं, कुमार हरिश्चन्द्रसे। कितना अच्छा हुआ होता, यदि गहरवार-वंशमे जयचन्द्रकी जगह हरिश्चन्द्र होते! चन्द्रदेवके सिंहासनको हरिश्चन्द्रकी ज़रूरत थी।'

'या श्रीहर्षकी जगह वैद्यराज चक्रपाणि जयचन्द्रके नरम सचिव हुए होते। किन्तु वैद्यराज, आपको गहरवार-सूर्यके अस्त होते समय तक हमारे साथ रहना चाहिए।'

'अस्तके साथ अस्त होनेके लिए भी मै तैयार हूँ, कुमार! पर गहरवारोंका सूर्यास्त नहीं होगा, बल्कि हिन्दुओंका सूर्यास्त होगा। हम मल्लगामी ब्राह्मण सिर्फ़ स्रुवा और प्रोक्षणीके ही धनी नहीं, बल्कि तलवारके भी धनी हैं। इसीलिए हम भी तुर्कोंसे युद्ध करना चाहते हैं, कुमार!'

'और मेरे पिता ख़ुद अपने जामाताको सहायता देनेके लिए तैयार नही। पृथ्वीराज मेरा अपना बहनोई है, वैद्यराज! संयुक्ताका उससे प्रेम था, वह उसके साथ अपनी ख़ुशीसे गई। इसमें पिताको नाराज़ होनेकी क्या ज़रूरत?'

'पृथ्वीराज वीर है, कुमार !'

'इसमें कोई सन्देह नहीं, वैद्यराज ! वीरताके ही कारण वह तुर्क सुल्तानसे लोहा ले रहा है, नहीं तो हमारे कान्यकुब्ज राज्यके सामने उसका राज्य है ही कितना ! वह सुल्तानको यदि रास्ता भर दे देता, तो सुल्तान उसे पुरस्कृत करता। सुल्तानकी आँख दिल्लीपर नहीं, कान्यकुब्जपर है। छः सौ सालसे कन्नौज भारतके सबसे बड़े राज्यपर शासन कर रहा है। किन्तु उन्हें समझावे कौन ? पिता समझनेकी ताक़त खो बैठे हैं।'

'यदि इस वक्त वह शासन-भार युवराजके ही हाथोंमें दे देते।'

'मुझे एक बार ख़याल आया था, वैद्यराज, कि पिताको सिंहासनसे हटा दूँ; किन्तु आपकी शिक्षा याद आ गई। बीस वर्षोंमें आपकी प्रत्येक शिक्षा को मैंने हितकर पाया, इसलिए मैं उसके विरुद्ध नहीं जा सकता था।'

'कान्यकुब्जका सिंहासन जर्जर हो गया है, कुमार ! ज़रा-सा भी गलत क़दम रखनेपर सारी इमारत ढह पड़ेगी। यह समय पिता-पुत्रके कलहका नहीं है।'

'क्या किया जाय वैद्यराज, हमारे सारे सेनापति तथा सेनानायक कायर और अयोग्य हैं। तरुण सेनानायकोंमें कुछ योग्य और बहादुर हैं; किन्तु उनके रास्तोंको बूढ़े रोके हुए हैं। यही हालत मन्त्रियोंकी है, जो चापलूसी करना भर अपना कर्त्तव्य समझते हैं।'

'रनिवासमें अपनी बहन-बेटी भेजकर जो पद पाते हैं, उनकी यही हालत होती है। लेकिन बीतेकी हमें फ़िक्र नहीं करनी चाहिए, हमें आगेकी चिन्ता करनी चाहिए।'

'आज मेरे हाथमें होता, तो सारे हिन्दू तरुणोंको खड्गधारी बना देता।'

'किन्तु यह पीढ़ियोंका दोष है, कुमार, जिसने सिर्फ़ राजपुत्रोंको ही युद्धकी ज़िम्मेदारी दे रखी है। द्रोण और कृप-जैसे ब्राह्मण महाभारतमें लड़े थे; किन्तु पीछे सिर्फ एक जातिको...।'

'मैं समझता हूँ; पर जात-पाँत भी तो हमारे रास्ते में एक बहुत बड़ी रुकावट है।'

'रुकावट, कुमार, यह सबसे बड़ी रुकावट है। पूर्वजोंके अच्छे कार्योंका अभिमान दूसरी चीज़ है; किन्तु हिन्दुओंको हज़ारों टुकड़ोंमें सदाके लिए बाँट देना महापाप है।'

'आज इसका फल भोगना पड़ रहा है। काबुल अब हिन्दुओंका न रहा, लाहौर गया और अब दिल्लीकी बारी है।'

'आज भी यदि हम पिथौराके साथ मिलकर लड़ सकते!'

'ओह, कितना कुफ्र है, वैद्यराज!'

'एक कुफ्र है? हमारी नाव कुफ्रोंके बोझसे डूबी जा रही है; किन्तु हम मोहके मारे एक चीज़को भी फेंककर नावको हल्की करना नहीं चाहते।'

'धर्मका अजीर्ण है, वैद्यराज!'

'धर्मका क्षयरोग। हमने कितना अत्याचार किया है? हर साल करोड़ों विधवाओंको आगमें जलाया है, स्त्री-पुरुषोंकी पशुओंकी भाँति ख़रीद-बेंच की है, देवालयों और विहारोंमें सोना-चाँदी तथा हीरा-मोती के ढेर लगाकर म्लेच्छ लुटेरोंको निमन्त्रण दिया है और शत्रुसे मिलकर मुक़ाबिलेके समय फूटमें पड़े हैं। अपनी इन्द्रिय-लम्पटताके लिए प्रजाकी पसीनेकी कमाईको बेदर्दीसे बरबाद करते हैं।'

'लम्पटता नहीं, पागलपन, वैद्यराज! अपनी इच्छाकी एक सहृदया स्त्री भी काम-सुखके लिए पर्याप्त है और इन्द्रियके पागलपनके लिए पचास हज़ार भी कुछ नहीं। वहाँ प्रेम हर्गिज़ नहीं हो सकता। मेरे पिताने जब पिछली संक्रान्तिके दिन अपने रनिवासकी स्त्रियोंमें से बहुतों को ब्राह्मणोंको दान दिया, तो वे रोती नहीं थीं, भीतरसे बहुत ख़ुश थीं। मेरी भामा यह कह रही थी।'

'दान लेनेवाले ब्राह्मणके घर ज़्यादासे ज़्यादा एक या दो सौतिने होंगी, कुमार, वहाँ सोलह सहस्रकी भीड़ तो न होगी। और मैं तो इसे भी दासता समझता हूँ। स्त्री क्या सम्पत्ति है कि उसका दान दिया जाय?'

'हमें भी कोशिश करनी चाहिए कि हम मिलकर तुर्कोंका मुक़ाबिला करें।'

'यह तो महाराजके हाथमें है। पाखंडी श्रीहर्ष उनके कानमें लगा हुआ है।'

(४)

अष्टमीकी रात थी। चाँद अभी-अभी पूरबके क्षितिजपर उगने लगा था। अभी सारी भूमिको प्रकाशित होनेमे देर थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, जिसमें बहुत दूर कहीं उल्लूकी डरावनी आवाज़ सुनाई दे रही थी। इस नीरवतामे दो आदमी ऊपरसे आकर यमुनाकी अँगनाईमें तेज़ीसे उतर गए। उन्होंने अँगुलियोंको मुँहमें डाल तीन बार सीटी बजाई। यमुनाकी परली ओरसे एक नाव आती दिखलाई पड़ी। नीरव चलती नदीमें धीरे-धीरे थापी चलाती एक मझोली नाव किनारेपर आ लगी। दोनों आदमी धीरेसे नावपर कूद गए। भीतरसे किसीने पूछा—'सेनानायक माधव?'

'हाँ आचार्य, और आल्हण भी मेरे साथ आया है। कुमार कैसे हैं?'

'हाँ, अभी तक तो होश नही आया है; किन्तु इसके लिए मैंने थोड़ी-सी दवा भी दे दी है। कहीं कुमार रणक्षेत्रकी ओर लौट पड़ते तो?'

'लेकिन आचार्य, वह आपकी आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं कर सकते।'

'सो तो मुझे विश्वास है; किन्तु फिर भी यह अच्छा ही है। इससे घावका दर्द भी कम हो जायगा।'

'घाव ख़तरनाक तो नहीं है, आचार्य?'

'नहीं सेनानायक, घावको मैंने सी दिया है और रक्तस्राव भी बन्द हो गया है। निर्बलता ज़रूर है; किन्तु और कोई डर नहीं। अच्छा

बताओ, तुम क्या कर आए ? महाराजके शवको रनिवासमें भेज दिया ?'

'हाँ।'

'तो अब राजान्तःपुरकी स्त्रियाँ महाराजको लेकर सती होंगी ?'

'जिनको होना होगा, होंगी।'

'और सेनापति ?'

'बूढा सेनापति तो आखिरमें मरते वक्त जाग उठा था। कितने ही सेनानायक पाँसा पलटते देख भाग चले थे; किन्तु उनमें भागनेका भी कौशल न था। मुझे आशा नहीं कि उनमें से कोई बचा हो।'

यही बात यदि तीन वर्ष पहले हुई होती और हरिश्चन्द्र हमारे महाराज तथा माधव तुम कान्यकुब्जके सेनापति हुए होते !'

लम्बी साँस लेकर माधवने कहा—'आचार्य, आपकी एक-एक बात आईनेकी भाँति झलकती थी। आपने महाराजको बहुत समझाया था कि राय पिथौरासे मिलकर तुर्कोंसे मुक़ाबिला किया जाय; किन्तु सब अरण्य-रोदन ही साबित हुआ।'

'अब अफ़सोस करनेसे कोई फायदा न होगा। बतलाओ, और क्या व्यवस्था की जाय ?'

'पाँच सौ नावें पचास-पचासके गिरोहमें सैनिकोंसे भरी अभी आ रही हैं। गागा, मोगे, सलखूके नायकत्वमें मैंने सेनाओंको बाँटकर आदेश दिया है कि चन्दावर (टावा)से पूरब हटकर तुर्कोंसे लड़ें—सीधे कम, छापा मारकर ज्यादा—और परिस्थितिको प्रतिकूल होते देखकर पूरबकी ओर हटते जायँ।'

'कन्नौजके राज-प्रासाद ·· ?'

'मैंने वहाँसे जितनी चीज़ें हटाई जा सकती थीं, हटा दी हैं। गंगामें हो बहुत-सी नावें दो दिन पहले ही निकल चुकी थीं।'

'मैंने इसीलिए, माधव, तुम्हें सेनापतिकी छायासे बचाया था। उसने अपनेसे पहले तुम्हें मरवा दिया होता। तुमको और कुमारको

बचा देखकर मुझे सन्तोष है। अभी हिन्दुओंके लिए कुछ आशा है। कुछ भी हो, अन्तिम समय तक हमें अपनी शक्तिमें से एक-एक रत्तीको सोच-समझकर व्यय करना होगा।'

'दूसरी नावें आती मालूम होती हैं, आचार्य!'

'सेनानायक आल्हण, उनके आते ही सब नावोंको यहाँसे चलने का आदेश कर देना।'

'बहुत अच्छा, आचार्य!'—आल्हणने नम्र स्वरमें कहा।

'अच्छा चलो माधव, नीचे कोठरीमें चलो। किन्तु वहाँ अँधेरा है! मैंने जान-बूझकर वहाँसे दीपक बुझा दिए।' कुछ आगे बढ़कर—'ज़रा ठहरो। राधे!'

'बाबा!'—एक तरुण स्त्री-कंठसे आवाज़ आई।

'चकमकसे दीपक जलाना, और लोहा यत्नसे रखा है न?'

'अच्छा।'

फिर माधवकी ओर फिरकर वे बोले—'भाई, कोई वैद्यराज कहे, कोई आचार्य, कोई बाबा, यह सब याद रखना मेरे लिए मुश्किल होगा।... तुम सब मेरे बचपनके नाम "चक्कू"से मुझे पुकारा करो।'

'नहीं, स्त्रियोंकी आदत बदलनी मुश्किल है, इसलिए हम सब आपको बाबा चक्रपाणि पाडेयकी जगह बाबा कहेंगे।'

'अच्छा, चलो। दीपक जल गया।'

दोनों सीढ़ियोंसे नीचे उतरे। नावका दो-तिहाई भाग पटा हुआ था, जिसके नीचे एकके पीछे एक दो छोटी कोठरियाँ थीं। एक ओर नावमें खाली जगह थी। दोनों एक कोठरीके भीतर घुसे। वहाँ दीपक की पीली रोशनीमें एक चारपाई दिखलाई पड़ती थी, जिसके ऊपर कंठ तक सफ़ेद दुशालेसे ढँका कोई सो रहा था। चारपाईकी बग़लमें रखी एक मचियासे कोई तन्वी उठी। चक्रपाणिने कहा—'भामा, कुमार हिले-डुले तो नहीं।'

'नहीं, बाबा, उनका श्वास वैसे ही एक-सा चल रहा है।'

'घबरा तो नहीं रही हो, बेटी !'

'चक्रपाणिकी छत्रछायामे घबराना ? कही गहरवारवंशने पहले पहचाना होता अपने गुरु द्रोणाचार्यको !'

'यह हमारे सेनापति, परम सहायक महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके सेनापति, माधव आ गए।'

'महादेवी भामा, आपका सेवक माधव सेवामें उपस्थित है।'—कह माधवने अभिवादन किया।

'मैं अपने माधवसे अपरिचित नहीं हूँ। कुमारके साथ पाँसु-क्रीड़ा करनेवाले क्या कभी मुझे भूल सकते हैं ?'

'और जिसकी भुजाएँ, भामा, गहरवार-वंशकी धूलि लुंठित लक्ष्मी को फिरसे उठा लानेके लिए शक्ति रखती हैं।'

'बाबा, तुम्हारे मुँहसे भामा कहलाना कितना प्रिय लगता है !'

'पिता याद आते होंगे, पुत्री !'

'नहीं बाबा, हमें राजकुलमें दूसरी ही हवा बहानी होगी। ओह, कितनी बनावट, कितना ढोंग है वहाँ ? हमे मनुष्यमे सीधा-सादा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। पुराने राजकुलको पिता (श्वसुर) भट्टारकके साथ जाने देना चाहिए।'

'गया पुत्री, वह तो बहुत देरसे गया। क्या तुमने कुमारके अन्तः-पुरको देखा है ?'

आँखोंसे आँसुओंको पोंछते हुए उसने कहा—'बाबा, आपने हमें फिर मनुष्य बना दिया।'

'नहीं पुत्री, यदि कुमार हरिश्चन्द्रकी जगह कोई दूसरा होता, तो मैं सिर्फ पानी पीटता रहता। यह सब कुछ कुमार हरिचन्द्र · ।'

'बाबा !'

सबने कुमार की अधखुली आँखोंको देखा। भामा उनके पास दौड़ गई और बोली—'मेरे चन्द्र, राहुके मुँहसे निकले चन्द्र !'

'हाँ, मेरी भामा ! लेकिन, मै तो अभी बाबाकी आवाज़ सुन रहा था।'

'बाबा !'

'वह बाबा नहीं, जिसने गहरवारोंके सूर्यको डुबाया; इस बाबाको, जिसे तुम बाबा कहती हो और जिसे मैं भी बाबा कहूँगा।'

चक्रपाणिने दीपकसे कुमारके पीले तरुण चेहरेको देख ललाटपर हाथ फेरते हुए कहा—'कुमार, तबीयत कैसी है ?'

'तबीयत ऐसी है, मालूम होता है, जैसे मै युद्ध-क्षेत्रसे घायल होकर नहीं लौटा हूँ।'

'घाव बुरा था, कुमार !'

'होगा, किन्तु मेरा पीयूषपाणि बाबा जो पास था।'

'थोड़ा कम बोलो, कुमार !'

'हरिश्चन्द्रके लिए बाबा चक्रपाणिके मुँहसे निकला एक-एक अक्षर ब्रह्मवाक्य है।'

'लेकिन ऐसा हरिश्चन्द्र चक्रपाणिके किसी कामका न होगा।'

'बाबा, यह हरिश्चन्द्रकी श्रद्धाकी बात है; और जहाँ मेधाकी बात है, वहाँ हरिश्चन्द्र ब्रह्माके वाक्यको भी बिना कसौटीपर कसे नहीं मान सकता।'

'कुमार, तुम्हें पाकर गहरवार-वंश नहीं, हिन्दू-देश धन्य है।'

'बाबा चक्रपाणिको पाकर—ज़रा पानी।'

भामाने तुरन्त गिलासमें पानी भरकर दिया। बाबाने नावको चलते जानकर कहा—'हम बनारस चल रहे हैं, कुमार,—द्वितीय राजधानीको। सेनापति माधवने सेनाके लिए आदेश दे दिया है। सेना इधर तुर्कोंको रोकेगी, उधर हम बनारसमें गहरवार-राजलक्ष्मी के सैनिक तैयार करेंगे।'

'नहीं बाबा, जैसा आप दूसरे समय कहा करते थे, उसी हिन्दू-राजलक्ष्मीको लौटानेकी तैयारी करें। अब यह लौटी राजलक्ष्मी हिन्दू-राजलक्ष्मी होगी। इसे हिन्दू-भुज-बलसे जीतकर लौटाना होगा।

'चण्डाल और ब्राह्मणका भेद मिटाकर।'

'हाँ, मेरे गुरुद्रोण !'

१५—बाबा नूरदीन

काल—१२०० ई०

"वह समय खतम हो गया, जब हम हिंदको दुधार गायसे बढ़कर नहीं समझते थे और किसानों, कारीगरों, बनियों और राजाओंसे ज्यादा से ज्यादा धन जमाकर ग़ोर भेजते या खुद मौज उड़ाते। अब हम ग़ोरके गुलाम नहीं; बल्कि हिंदके स्वतंत्र खल्जी शासक हैं।" एक छरहरे जवानने अपनी काली दाढ़ीके ऊपरी मूँछकी पतली स्याहीपर अँगुलियाँ चलाते हुए कहा—उसके सामने एक सफेद लबी दाढ़ी, वड़ा अमामा (पगड़ी), सफेद अचकन पहने कोई शात, संभ्रात चेहरेका आदमी घुटने टेके बैठा था।

बूढ़ेने कहा—"लेकिन जहाँपनाह! यदि पटेलों, मुखियों, इलाकेदारोंको छेड़ा जायगा, तो वह बिगड़ जायेंगे और सल्तनतके गाँव-गाँवमें हम अपनी पल्टने मालगुजारी वसूल करनेके लिए नहीं भेज सकते।"

"पहिले इस बातको आप तैकर डालिये कि आप हिन्दी बनकर हिंदके शासक रहना चाहते हैं, या हीरा-मोतीसे ऊँटों और खच्चरोंको भरकर ले जानेवाले गजनी-ग़ोरके लुटेरे?"

"अब हमें हिंदमें रहना है जहाँपनाह!"

"हाँ, गुलामोंकी तरह हमारी जड़ ग़ोरमे नहीं, दिल्लीमे है। यदि कोई विद्रोह, कोई अशाति होगी तो न हमें अरब, अफ़ग़ानिस्तानसे सेना मिलनेवाली है और नहीं भागकर वहाँ टिकने का ठौर है।"

"यह मानता हूँ जहाँपनाह!"

"तो अब हमें इस घरमें रहना है, इसीलिए इसे ठीक करना होगा, जिसमें यहाँके लोग सुखी और शात रहें। यहाँकी प्रजामें कितने मुसलमान हैं? सौ वर्षमें दिल्लीके आस-पासको भी हम मुसलमान

नहीं बना सके। कहिये मुल्ला अबू-मुहम्मद ! आप कितने दिनमें आशा करते हैं, सारी दिल्ली और इस दयारको मुसलमान बना देखनेकी ?"

सामने बैठे तीसरे वृद्धने दाँतोंके बिना भीतर घुसे ओठोंके नीचे नाभी तक लटकती सफ़ेद दाढ़ीके बालोंको ठीक करते कहा—"मैं निराश नहीं हूँ, सुल्ताने-ज़माना ! किन्तु इस अस्सी वर्षके बूढ़ेका तजरबा है कि यदि हम जबर्दस्ती मुसल्मान बनाना चाहेंगे, तो मुझे कभी उम्मीद नहीं कि हम उसमे पूरी तौर पर सफल होंगे।"

'इसलिए, हम हिन्दमें बस जानेवाले मुसल्मान उस दिन तकके लिए इंतिजार नहीं कर सकते, जब सारा हिंद मुसल्मान हो जायगा। हमने एक सदी यों ही गँवा दी और अपनी प्रजाका कुछ भी ख्याल न कर सिर्फ़ अपने भूमिकर, चुंगी, महसूलको ज्यादासे ज्यादा वसूल करना चाहा। परिणाम देखा ! शाही खजानेमें एक रुपया आता है, तो पाँच चले जाते हैं तहसील करनेवालोंके पेटमें। दुनियाके किसी मुल्कमे देखा है कि गाँवके मुखिया, पटेल घोड़ोंपर सवार हो निकलें, रेशमी लिबास पहिनें, ईरानकी बनी कमानसे तीर चलायें। नहीं, वज़ीरुल्मुल्क ! मेरी सल्तनतमे अब इस तरहकी लूट बन्द करनी होगी।"

"लेकिन हुजूरवाला ! कितने ही हिन्दू इस लालचसे भी मुसलमान होते थे। अब यह भी रास्ता बन्द हो जायेगा।'—मुल्लाने कहा।

'इस्लाम इस तरहकी लूट और रिश्वत अगर कबूल करता है, तो सर्कारी खजाने और सर्कारी मालकी भी खैरियत नहीं; और, जिस हुकूमतके ऐसे खिदमतगार हों, उसके लिए क्या उम्मीदकी जा सकती है ?"

"ऐसोंसे सल्तनतके पाये मजबूत नहीं हो सकते, जहाँपनाह ! यह मानना पड़ेगा। मुझे ख्याल था सिर्फ़ बद्-अमनीका।'—वज़ीरने कहा।

"गाँवके अमले चाहेंगे वैसा करना, यदि उनका बस चलेगा। किन्तु गाँवोंमें अमले ज्यादा होते हैं या किसान ?"

"किसान ! सौ पर एक कोई अमला पड़ता होगा।"

"उन्हीं सौ किसानोंका खून चूसकर वह घोड़ेपर सवार हो सकता है, रेशमी लिबास पहिन सकता है, और ईरानी कमानसे तीर चला सकता है। इस तरहकी खून-चुसाई बन्द करा हम किसानोंकी हालत बेहतर बनायेंगे। उन्हें हुकूमतका वफादार बनायेंगे। क्या एकके नाराज करनेसे सौको खुश करना और खुशहाल देखना अच्छा नहीं है।"

'जरूर है हुजूरवाला! और मुझे भी अब शक नहीं रहा। यद्यपि हिन्दुस्तानके मुसल्मान सुल्तानोंमें आप एक नयी बात करने जा रहे हैं; किन्तु कामयाबी होगी। इससे सिर्फ गाँवोंके ऊपरी श्रेणीके कुछ लोगोंको हम नाराजकर लेंगे।"

"गाँवों और शहरोंके ऊँची श्रेणीके कुछ लोगोंके नाराज़ होनेकी पर्वाह नहीं। अब थोड़े दिनोंके लिए बनी झोपड़ीकी जगह हमें शासन-की मजबूत इमारतकी बुनियाद रखनी होगी।"

मुल्ला कुछ सोच रहा था। उसने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए फिर कहा—"हुजूर-वाला! अब मैं भी समझता हूँ, कि गाँवके आमिलोंकी जगह गाँवोंके सारे किसानोंकी बेहतरीका ख्याल करना हुकूमतके लिये ज्यादा लाभदायक साबित होगा। हमने गाँवों-कस्बोंके कपड़ेके कारीगरोंकी ओर थोड़ी निगाहकी; उनकी पचायतोंको मजबूत करनेमें सहायता दी, जिससे वे बनिये महाजनोंकी लूट से बचे। बेगारमें हरएक अमला उनसे कपड़े बनवाता, रूई धुनवाता था, उसको रोका; और आज इसका यह परिणाम देख रहे हैं कि रूई-धुननेवाले, कपड़ा बनने सीनेवाले मुश्किलसे कोई होंगे, जो इसलामकी सायामें न आ गये हों।"

"अब आपने देखा मुल्ला साहिब! जो बात सल्तनतके लिये भली है, वह इस्लामके लिये भी भली है।"

"लेकिन एक बातकी अर्ज है जहाँपनाह! आप अमीरुल्मोमिनीन (मुसलमानोंके नायक) हैं—"

"साथ ही मैं हिन्दुओंका सुल्तान हूँ। हिन्दमें मुसलमानोंकी संख्या बहुत कम है, शायद हज़ारमें एक।"

"हिन्दू इस्लामकी तौहीन करते फिरते हैं। आगे उनका हौसिला और बढ़ सकता है। तौहीन बंद होनी चाहिये।"

"तौहीन ! क्या कुरान-पाकको पैरों तले रौंदते हैं !"

"इतनी हिम्मत कहाँ हो सकती है !"

"क्या मस्जिदोंको नापाक करते हैं !"

"यह भी नहीं हो सकता।"

"क्या रसूल-खुदाको सरे-बाजार गालियाँ सुनाते हैं !"

"नहीं जहाँपनाह ! बल्कि, जो हमारे सूफियोंके संसर्गमें आये हैं वे तो रसूल-खुदाको भी ऋषि मानते हैं। लेकिन, वे हमारे सामने कुफ्रकी रस्में अदा करते हैं।"

"जब उन्हें आप काफिर मानते हैं, तो कुफ्रकी रस्मके लिये शिकायत क्यों है ! मेरे चचा सुल्तान जलालुद्दीनने मेरी तरह तै नहीं कर पाया था, कि उन्हें अपनेको स्थायी हिन्दी शासक समझना चाहिये, या जबतक सारा हिन्द मुसलमान न हो जाय, तब तकके लिये अस्थायी। किन्तु उन्होंने एक बार आपकी तरहके प्रश्नकर्त्ताको क्या जवाब दिया था, मालूम है !"

"नहीं हुजूर-वाला !"

"कहा था—'बेवकूफ तू देखता नहीं कि हिन्दू रोजाना मेरे महलके सामनेसे शंख बजाते और ढोल पीटते हुए जमुना किनारे अपनी मूर्तियोंको पूजने जाते हैं। वे मेरी आँखोंके सामने अपनी कुफ्रकी रस्में मनाते हैं। मेरी और मेरे शाही रोबकी हतक करते हैं। मेरे दीनके दुश्मन (हिंदू) हैं, जो मेरी राजधानीमें मेरी आँखोंके सामने ऐशो-इशरत और शानो-शौकतसे जिंदगी बसरकर रहे हैं, और दौलत और खुशहालीके कारण मुसलमानोंके साथ अपनी शान और घमंडको जाहिर करते हैं। शर्म है मेरे लिये मैं उनको उनकी ऐशो-इशरत और फख्र-व-गरूरमें छोड़े हुए हूँ और इन थोड़ेसे तिनकोंपर सब्र किये हूँ

जो कि वे खैरातके तौर पर मुझे दे देते हैं।' मैं समझता हूँ, इससे बेहतर जवाब मैं भी नही दे सकता।"

'लेकिन सुल्ताने जमाँ! सुल्तानका इस्लामी फर्ज भी है।"

"जिन्होंने ऐसा कसूर किया है, जिसकी सजा मौत है, उसे इस्लाम की शरणमें आने पर मैं जीनेकी इजाज़त दे सकता हूँ। जो गुलाम हैं और इस्लाम लाता है, उसे गुलामीसे मुक्त होने का हुक्म दे सकता हूँ; लेकिन खरीदकी कीमत शाही खजानेसे देकर; नहीं तो इस मुल्कमें करोड़ों-करोड़ों रुपये गुलामों पर लगे हैं। और सभी गुलामोंकी आजादीके लिये तो आप कह भी नहीं सकते?"

"नहीं जहाँपनाह! गुलाम रखना तो अल्लाहतालाने भी जायज़ फर्माया है।"

"नहीं, यदि आप कहें तो तख्तको खतरेमें डाल मैं मुस्लिम, गैर-मुस्लिम सभी दास-दासियोंको आजाद करनेका फर्मान निकाल देता हूँ।"

"नहीं! यह शरीअत के खिलाफ होगा।"

"शरीअतके खिलाफ होनेकी बातको छोड़े मुल्लासाहब! इस वक्त आपका ध्यान होगा किसी अमीना दासी पर। सबसे ज्यादा गुलाम तो हैं मुसलमानोंके घरोंमें।"

"और अल्लातालाने मोमिनोंके लिये उन्हें जायज़ ठहराया है।"

"लेकिन यदि दास-दासियाँ भी मोमिन हैं? फिर तो हुआ न कि आप उन्हें इस दुनियाँकी आजाद हवामे साँस लेने देना नहीं चाहते और सिर्फ बहिश्तकी उम्मीद पर रखना चाहते हैं।"

"मुझे और कहना नहीं है। इस्लामी सल्तनतमे इस्लामी शरीअत का शासन होना चाहिये, बस मै इतना ही कहना चाहता हूँ।"

"लेकिन यह चाहना थोड़ा नहीं है। इसके लिये इस्लामी सल्तनत की अधिकाश प्रजाको मुसलमान होना चाहिये। आप लोगोंके सामने—वज़ीर साहब! आप भी सुनें—मैं अपने विचारोंको साफ रख देना चाहता हूँ। सुल्तान महमूद जैसा एक विदेशी सुल्तान अपनी

जबर्दस्त विदेशी सेनाके साथ शान्ति-पूर्ण शहरोंको लूट, लूटके माल को ऊँटों, खच्चरों पर लाद भले ही ले जा सकता था; लेकिन वही बात बाल-बच्चोंके साथ दिल्लीमें बस जाने वाले मेरे जैसे आदमीके बूतेकी नहीं है। हमारी हुकूमत कायम है हिंदू प्रजाकी लगान पर, हिंदू सिपाहियों और सेनानायकों पर—मेरा सेनापति मालिक हिंदू है, चित्तौड़का राजा मेरे लिये पाँच हजार सेनाका सेनानायक है।"

"लेकिन जहाँपनाह! गुलाम सुल्तान भी तो दिल्ली ही में रहते थे।"

"आप हिचकिचाये मत, मुझे चंचल और गुस्सैल कहा जाता है, किंतु यह सब विरोधी विचारोंको सुननेसे मुझे रोक नहीं सकते। गुलामोंकी हुकूमत चिड़िया-रैन बसेरा थी। मगोलोंके तूफानसे हिंदुस्तानकी इस्लामिक सल्तनत बाल-बाल बची है, हिंदुओंको पता न था, कि मंगोलों जैसा दुश्मन मुसलमानोंने कभी देखा नहीं; नहीं तो जरा भी उन्होंने मंगोलोंको शह दी होती, तो हिंदकी सरजमीनमें नया लगा इस्लाम का पौधा ठहर नहीं सकता था। जानते हैं न चंगेज़का ख़ानदान दुनियाकी सबसे बड़ी सल्तनत चीन पर हुकूमत कर रहा है?"

"जानता हूँ, हुजूर-वाला!" मुल्लाने कहा।

"और वह ख़ानदान समनिया मज़हबको मानता है?"

"समनिया! उनके बहुतसे मठों-मंदिरोंके जला देने, बर्बादकर देने पर भी, अभी वह मज़हब, कुफ्रका साकार स्वरूप हिंदकी सरजमीनसे उठा नहीं।"

"कुफ्रका साकार स्वरूप वही क्यों?"

"जहाँपनाह! हिंदुओं—ब्राह्मणों—के मज़हबमें, तो सिरजनहार अल्लाहका ख्याल भी है, किन्तु समनिया तो उससे बिल्कुल इनकार करते हैं।"

"चंगेजका खानदान आज नहीं उसके पोते कुबलेखानके जमानेसे ही अपने को समनोंका मुरीद मानता है। यही, नहीं खुद चंगेज़की

फौजके मंगोलोंमें बहुतसे समनी सिपहसालार तथा सैनिक थे। बुखारा समरकंद, बलख आदि इस्लामी दुनियाके शहरोंको मुसलमानोंकी सभ्यताके समस्त केंद्रोंको उन्होंने चुन चुनकर तबाह कर डाला। उन्होंने हमारी औरतोंको बिना ऊँचे नीचे घरानेका ख्याल किये आमतौरसे दासी बनाया। बच्चोंको बेदर्दीसे कत्ल किया। इन सब जुल्मोंके प्रोत्साहन देने वाले वही समनी मंगोल थे। वह कहते थे अरबोंने हमारे विहारोंको बर्बाद किया, हमारे नगरोंको जलाया, हमारे बच्चोंको मारा; हमें उसका बदला लेना है। ख्याल कीजिये, यदि मंगोल कहीं हिंदी समनियों (बौद्धों)से मिलकर वह हिन्दुओंको अपनी ओर खींचनेमें सफल होते, तो इस्लाम की क्या हालत हुई होती!"

"बर्बादी होती, जहाँपनाह!"

"इसलिये हमें बालूकी रेत पर अपने राज्यकी नींव नहीं रखनी है, हम गुलामोंकी नकल नहीं कर सकते।"

वज़ीर अबतक चुप था, अब उसने मुँह खोला—"लेकिन सर्कार-आली! गाँवके अमलोंकी ताकत कमज़ोर होने पर सल्तनत कैसे वहाँ तक पहुँचेगी।"

जब रेशम पहिनने वाले, घोड़ों पर चलनेवाले अमले नहीं थे, तब कैसे काम चलता था—आपको मालूम है।"

"मैंने इसकी खोज नहीं की।"

"मैंने खोजकी है। जब शासकोंने अपनेको लुटेरों जैसा समझा, तब उन्होंने लूटने वाले अमले नियुक्त किये। ऐसा सब समय सब जगह होता है। उससे पहिले हर गाँवमें पंचायतें होती थी, जो गाँवकी सिंचाई, लड़ाई-झगड़ेसे लेकर सर्कारको लगान देने तकका सारा प्रबंध स्वयं करती थीं। राजाको गाँवके किसी एक व्यक्तिसे कोई काम न था। वह सिर्फ पंचायतसे वास्ता रखता था, वह समझता था कि लगान देनेवाले किसान और उसके बीच संबंध स्थापित करनेके लिये यही पंचायतें हैं।"

"तो जहाँपनाह ! सौ बरससे मरी इन पचायतोंको फिरसे हमें जिलाना होगा।"

"और दूसरा चारा नहीं। यदि इस्लामी सल्तनतको इस देशमें मजबूत करना चाहते हैं, तो प्रजाको सुखी और संतुष्ट रखनेकी हर प्रकारसे कोशिश करनी होगी। उसके लिए हमे अपनी हिंदू-प्रजाके रीति, रवाज, कानून-कायदे का ख्याल रखना होगा, दिल्लीकी सल्तनतमें इस्लामी शरीअत (कानून) नही, सुल्तानी शरीअत बर्ती जायगी। इस्लामका प्रचार मुल्लोका काम है, उन्हें हम वज़ीफे दे सकते हैं। सूफियोंका काम है और वह बहुत अच्छी तरह कर रहे हैं, उनकी खानकाहों (मठों) को हम नकद या सर्कारी लगान (माफी) दे सकते हैं।"

(२)

वर्षा बीत चुकी थी; किंतु अभी भी ताल-तलैयोंमें पानी भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी मेंड़ोंसे घिरे धानके खेतोंमे पानी भरा हुआ था, जिसमें धानके हरे-हरे पूँजे लहरा रहे थे। चारों ओर दूर तक फैली मगधकी हरी हरी क्यारियोंके बीच हिल्सा (पटना) का बड़ा गाँव था; जिसमे कुछ व्यापारियोंके ईंटेके पक्के मकान थे, बाकी किसानों और कारीगरोंके फूस या खपड़ैलके। इनके अतिरिक्त कुछ ब्राह्मणोंके घर थे, जो उनसे कुछ बेहतर अवस्थामें थे। हिल्साके मंदिरोंको सौ वर्ष पहिले (मुहम्मद बिन) बख्तियार खिलजीकी सेनाने ही ध्वस्त कर डाला था, और उसके बाद उनके खण्डहरोंमें ही हिन्दू जहाँ तहाँ पूजा कर लेते थे। गाँवके पश्चिमी छोर पर बौद्धोंका मठ था, जिसका प्रतिमागृह तो टूट फूट गया था, किन्तु घर अब भी आबाद थे। मठके भीतर घुस कर उसके निवासियोंको देखकर कोई नहीं कह सकता था, कि बौद्ध-भिक्षु उसे छोड़कर चले गये हैं।

उस दिन शामके वक्त मठके बाहरके पत्थरके छोटे चबूतरे पर एक अधेड़ पुरुष बैठा था। उसके शरीर पर पीला काषाय था। उसका

सिर और भौंहें घुटी हुई थीं। मूँछ दाढ़ी बहुत छोटी हफ्ते भरकी बनी हुई थी। उसके हाथमें काठकी माला थी। आश्विनकी पूर्णिमाका दिन था, गाँवके नरनारी खाना, कपड़ा तथा दूसरी चीजें लाकर काषायधारी पुरुषके सामने रख (चढ़ा)कर हाथ जोड़ रहे थे। पुरुष हाथ उठा स्मित मुखसे उन्हें आशीर्वाद दे रहा था।

यह क्या है ? हिल्साका पुराना बौद्ध मठ तो नष्ट हो गया ? हाँ, किन्तु श्रद्धा मठोंसे बाहर भक्तोंके दिलोंमे हुआ करती है। आज हिल्साके काषायधारीबाबाको देख क्या बौद्ध भिक्षु छोड़ और कुछ कह सकते हैं ? वह अविवाहित है, यही नहीं उसके चार पहिलेके गुरु भी अविवाहित काषायधारी थे। हिन्दू—या बौद्ध—से मुसल्मान बने दस पाँच कारीगर-घरोंमे इसे खानकाह कहकर पुकारा जाता है, ब्राह्मण और कुछ बनिये भी इसे मठ नहीं कहते ; किन्तु बाकी गाँवके लिये यह अब भी विहार—मठ—है। उनके बाबाकी पहिले भी जात-पाँत न होती थी और इन नये बाबोंकी भी जात नहीं है। उन्हींकी भाँति यह भी काषाय पहनते, अविवाहित रहते हैं, और बीमार होने पर अब यही लोगोंके भूतोंको झाड़ते हैं, मरण और शोकके समय यही अलख-निरंजन-निर्वाणका उपदेश दे सान्त्वना प्रदान करते हैं। इसीलिये आज शरत्पूनोकी प्रावारणाके दिन लोग पहिलेकी भाँति इन मुस्लिम भिक्षुओंको भी पूजा चढ़ा रहे हैं। और कारीगर मुसल्मान जैसे पहिले उन बौद्ध भिक्षुओंको अपना पूज्य गुरु मानते थे, उसी तरह अब अपने बाबा और उनके काषायधारी चेलोंको मानते हैं।

खानकाहके पुराने महन्तों (पीरों)की समाधियों (क़ब्रों)की बन्दना कर गाँव वाले धीरे-धीरे चले गये। रातके बीतनेके साथ दूधसी चाँदनी चारो ओर छिटक गई। उसी वक्त कारीगर घरोंकी ओरसे दो आदमियोंके साथ कोई आदमी आँगनकी ओर आता दिखाई पड़ा। नज़दीक आनेपर बाबाने मौलवी अबुल्-अलाईको पहिचाना। उनके सिरपर सफ़ेद अमामा, शरीरपर लम्बा चोग़ा, पैरोंमें जूतोंसे ऊपर

पायजामा था। उनकी काली दाढ़ी हवाके हलके झोंकेसे हिल रही थी। बाबाने खड़े हो दोनों हाथोंको बढ़ाते हुए मधुर स्वरमें कहा—

"आइये, मौलाना अब्दुल् अलाई। असूसलाम-अलैक।"

बाबा मौलानाके सिकुड़ते हाथोंको अपने हाथोंमें ले उनसे बग़ल-गीर हुए। मौलानानेभी बेमनसे 'वालेकुम-स्सलाम' किया।

बाबाने नंगे चबूतरेके पास ले जाकर कहा—

"हमारा तख्त यही नंगा पत्थर है, तशरीफ रखिये।"

मौलानाके बैठ जानेपर बाबा भी बैठ गये। बात पहले मौलाना ने ही शुरू की।

"शाह साहेब! जब यहाँ काफिरोंकी भीड़ लगी थी, तो मैंने ठहर कर देखा था, इस तमाशेको।"

"तमाशा भले ही कहें मौलाना! किन्तु, काफ़िर न कहें, नूरके कलेजेमे इससे तीर लगता है।"

"यह हिन्दू काफ़िर नहीं तो और कौन हैं।"

"सभीमे वही नूर समाया हुआ है, नूर और कुफ्र रोशनी और अँधेरेकी तरह एक जगह नहीं रह सकते।"

"तुम्हारा यह सारा तसव्वुफ (वेदान्त) इस्लाम नहीं गुम-राहियत है।"

"हम आपके ख़यालोंको गुमराहियत नहीं कहते, हम 'नदिया एक घाट बहुतेरे'के माननेवाले हैं। अच्छा आप सभी इन्सानोंको खुदाके बच्चे मानते हैं या नहीं?"

"हाँ मानता हूँ।"

"और यह भी कि वह मालिक सर्व-शक्तिमान् है।"

"हाँ।"

"मौलाना! मेरे उस सर्व-शक्तिमान् मालिक के हुक्मके बिना जब पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो हम और आप अल्लाहके इन सारे बच्चोंको काफिर कहनेवाले कौन? अल्लाह चाहता तो सबको एक

रास्ते पर चलाता। नहीं चाहता है, इसका मतलब है, सभी रास्ते उसे पसन्द हैं।"

"शाह साहेब! मुझे न सुनाइये तसव्वुफकी झूठोंको।"

"लेकिन मौलाना! यह तो मैंने इस्लामके ही दृष्टिकोणसे कहा। हम सूफी तो अल्लाह और बंदेमें फर्क नहीं मानते। हमारा कल्मा (महामंत्र) तो है 'अन-ल-हक्' (मैं सत्यदेव हूँ), 'हम-ओ स्त' (सब वही ब्रह्म हैं)।"

"यह कुफ्र है।"

"आप ऐसा ख्याल करते हैं, पहिले भी कितने ही लोगोंने ऐसा ख्याल किया था; किन्तु सूफियोंने अपनी 'शहादत—खून—से इस सत्य पर मुहर लगायी और आगे भी ज़रूरत पड़नेपर हम मुहर लगायेंगे।"

"आप लोगोंकी वजहसे इस्लाम यहाँ फैलने नहीं पाता।"

"हमने तुम्हारी आग और तलवारको दिलसे बुरा ज़रूर समझा; किन्तु, हाथसे नहीं रोका, फिर आपने कितनी सफलता पायी?"

' आप लोग उनके धर्मको सत्य बतलाते हैं।"

"हाँ, क्योंकि महान् सत्यको कुल्हियामें बंद करनेकी ताकत हम अपनेमें नहीं पाते। यदि इस्लाम अपने शहीदोंके कारण सच्चा है, यदि तसव्वुफ अपने शम्सों-मसूरोंकी शहादतसे सच्चा है, तो हिंदुओंने भी तुम्हारी तलवारोंके नीचे हँसते-हँसते गर्दन रख हिंदू मार्गको सच्चा साबित किया है।"

"हिंदू-मार्ग और सच्चा! हिंदूका मार्ग पूरबका, हमारा पच्छिमका, बिल्कुल उलटा।"

"इतना उलटा होता तो क्यों आज शामको गाँवके इन किसानोंने मुसल्मान मठकी पूजाकी? क्या आप मुसलमानोंमें हिंदूपनकी गंध मात्र नहीं देखना चाहते मौलाना?"

"हाँ, नहीं रखना होगा।"

"तो हमारी सधवा मुसल्मानिनोंका सिंदूर तो जाकर धुलवाइये।"

'धुलवायेंगे।'

बाबाने हँसकर कहा—"सिंदूर धुलवायेंगे जीतेजी। जुम्मन! बताओ बेटा! क्या तुम्हारी सलीमा मान लेगी इसे।'

"नहीं बाबा! मौलवी साहेबको मालूम नही है। सिंदूर विधवाका धोया जाता है।" पास ही खड़े जुम्मनने कहा—

बाबाने अपनी बातको जारी रखते हुए कहा—क्षमा करना मौलवी अबुल-अलाई। हम सूफी न किसी सुल्तानके टुकड़ों पर यहाँ आकर बसे, न किसी अमीरके दान पर। हम कफनी और लंगोटी पहनकर आये। किसी हिंदूने हमारे ऊपर तलवार नहीं उठाई। इसी खानकाहको ले लीजिये, यह पहले समनियोंका विहार था। मेरे पाँचवें दादा गुरु समनी (बौद्ध) फकीरोंके चेले थे। बनावटी नहीं, वह बुखारासे आये थे और उनके तसव्वुफसे खिचकर चेला बने थे। तसव्वुफ सब जगह एक है, बाहरी चोलेसे उसका झगड़ा नहीं, वह चोला समनीका भी हो सकता है, हिंदूका भी, मुसलमानका भी। हमारे उन गुरुके बाद यह खानकाह मुसल्मान नाम रखनेवाले फकीरोंकी है। हमने चोला बदलने पर जोर नही दिया, हमने प्रेम सिखलाया, जिसका फल देख रहे हैं, गाँव-गाँवमे हमसे घृणा रखनेवालोंकी कमी। पंडितोंने जड़ता दिखाई, वह प्रेमके पथको नही पहिचान सके, जैसे आप लोग नही पहचान सके, उसीसे जुम्मनके बाप-दादोंको हिंदू नहीं, मुसलमान नाम रखना पड़ा, और अब उनके यहाँ आपकी भी खातिर होती है।

(३)

चैतका मास बीत चुका था। जिन वृक्षोंमें नये-नये पत्ते लगने वाले थे, लग चुके थे। आम अबकी साल अच्छा आया था; इसलिये उसके पुराने ही पत्ते रह गये थे। उनके नीचे खलिहान लगे हुए थे, जहाँ दो पहरकी गर्मी और हवामें भी किसान दँवरी कर रहे थे। उसी वक्त कोई मुसाफिर थका और धूपसे पसीने-पसीने आकर उन्ही खलिहानोंमें एक

वृक्षके नीचे आ बैठा। मगल चौधरीने उसकी शकल-सूरतसे परदेशी मुसाफिर समझ, पास आकर कहा—"राम-राम भाई! इस धूपमें चलना बड़ी हिम्मतका काम है।"

"राम-राम भाई! लेकिन, जिसको चलना होता है, उसे धूप-ठंढा थोड़े ही देखना पड़ता है।"

"पानी पियो भाई! मुँह सूखा मालूम होता है। घड़ेमे ठंढा पानी रखा है।"

"कौन बिरादरी हो?"

'अहीर, मगल चौधरी मेरा नाम है।'

"चौधरी! लोटा-डोरी मेरे पास है। मै ब्राह्मण हूँ। कुआँ बता दो।"

"कहो तो अपने लौंडेसे मँगवा दूँ, पडितजी।"

"थका हुआ हूँ, मँगवा दो चौधरी।"

"बेटा घीसा! इधर आइयो तो।" बुला, मंगल चौधरीने दँवरी रुकवा बेटेको गुड़की डलीके साथ कुएँसे ताजा पानी भर लानेके लिए कहा।

मुसाफिरने पूछकर मालूम किया—दिल्ली अभी बीस कोस है इस लिए आज नहीं पहुँच सकता।

मगल चौधरी हँसने-हँसानेवाले जीव थे। चुप रहना उनके लिए सबसे मुश्किल काम था।

चौधरीने कहा—"हमारे यहाँ इस साल तो भगवान्की कृपासे फसल बहुत अच्छी हुई है। बैसाखमें खलियान उठना मुश्किल होगा। पडितजी! तुम्हारे यहाँ फसलका कैसा डौल है?"

"फसल बुरी नहीं है चौधरी!"

"राजा अच्छा होता है, तो देवता भी खुश होते हैं, पंडतजी! जबसे नया सुल्तान तख्त पर बैठा है तबसे प्रजा बड़ी खुशहाल है।"

"क्या, ऐसी बात देखते हो, चौधरी?"

"अरे ! एक तो यही खलियानके गज देख रहो हो। दो वर्ष पहले आते तो देखते इनके चौथाई भी नहीं होते।"

"सुतर गया है, चौधरी !"

"सुतर गया है; किंतु सुल्तानकी नियतकी बरक्कत है, पंडतजी। पहले हम किसान नंगे-भूखे डोलते थे और धीके रेशम तानजेब पहन घोड़े पर चलते थे। गेहूँ बित्ते भरका भी नहीं होने पाता था कि उनके घोड़े हमारे खेतोंमें आ जमते थे। कौन बोलता ? हमारे गामडोंके तो यही यही सुल्तान थे।"

इसी समय मंगल चौधरीकी भाँति ही घुटनों तककी धोती, बदन पर एक मैली चौबंदी, सिर पर चिपकी सफेद टोपी पहने दूसरा चौधरी आ गया और बीच हीमें बोल उठा— 'और चौधरी ! अब देखते नहीं सारी शान कहाँ चली गई ? अब बेटे दानों-दानोंके मुहताज फिर रहे हैं। मुझसे कह रहा था वह बामनका—क्या, नाम है, चौधरी ?"

"सिब्बा।"

"अब न शिब्बा कहते हो, उस वक्त तो पंडित शिवराम था। कह रहा था—चौधरी छेदाराम ! दो मन गेहूँ देना पैसा हाथमें आते ही दाम दे दूँगा। मुँह पर नहीं करना तो मुश्किल है; लेकिन मुझे याद है, जब वह बाभनका सीधी बात भी नहीं करता था। 'अबे छिद्दे' छोड़, कोई दूसरी बात उसके मुखसे नहीं सुनी।"

"और अब तुम हो चौधरी छेदाराम और मैं चौधरी मंगलराम। मंगे और छिद्देसे ढाई वर्षोंमें हम कहाँसे कहाँ पहुँच गये।"

"मैं कहूँगा चौधरी ! यह सब सुल्तानकी दया है, नहीं तो हम सब छिद्दे और मंगे ही बने रहते।"

"यही तो मैं कह रहा था, इन पंडतजीसे।"

"न हमारी यह पंचायत लौटकर मिली होती, न हमारे दिन लौटते।"

"चौधरी मंगलराम ! तुम हाथसे कलम नहीं पकड़ सकते; किंतु

तुम गाँवके सरपंच हो, कैसे सब काम चला लेते हो ! अमला तो अमला, ये बनिये एक रुपयेमें दो रुपयेके नाज उठा ले जाते थे। जेठ भी नहीं बीतता था और घरोंमें चूहे डंड पेलने लगते थे।"

"हम तो यही कहते हैं, हमारा सुल्तान लाख बरस जीता रहे।"

यात्री ब्राह्मण इन उजड्ड अहीरोंकी तारीफ़ सुन-सुनकर कुढ रहा था और कुछ बोलनेका मौका ढूँढ़ रहा था। गुड़ खा, पानी पी लेनेके बाद वह और उतावला हो गया था। वह चौधरियोंकी बात न खतम होते देख बीच हीमें बोल उठा—"सुल्तान अलाउद्दीनने पचायत आप लोगोंको दी—"

"हाँ पंडत ! तेरे मुँहमें घी-शक्कर; लेकिन पंडत ! न जाने किसने हमारे सुल्तानका नाम अलाभदीन रख दिया। हम तो अपने गाँवमें अब उसे लाभदीन कहते हैं।"

"चौधरी ! तुम कोई नाम रक्खो। लेकिन, जानते हो, सुल्तानने हिंदुओं पर कितना ज़ुल्म ढाया है ?"

"हमारी अहीरियाँ तो चादर भी नहीं लेतीं ऐसे ही छाती उतान-कर खेत-हारमें रात-दिन घूमती फिरती हैं। उन्हें तो कोई उठा नहीं ले जाता ?"

"इज्ज़तवाले घरोंकी इज्ज़त बिगाड़ते हैं।"

"तो पडत ! हम बे-इज्ज़तवाले हैं, और कौन है सौरा इज्ज़तवाला ?"

"तुम तो गाली देते हो चौधरी मगलराम !"

"लेकिन पडत ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि जबसे हमारी पंचायत लौटी, तबसे हमारी इज्ज़त भी लौट आयी। अब हम जानते हैं, आमिल-अमले कैसे इज्ज़तदार बने थे। हिन्दू-हिन्दू, मुसल्मान-मुसल्मान कहते हैं। जो भी आमिल-अमले हुए, सब एक ही रंगमें रँगे थे, और फिर वह होते थे ज्यादातर हिन्दू।"

"चौधरी छेदारामने कोई बात छुटती देखकर कहा—और हम-लोगोंसे कहते हैं, हिन्दू-मुसलमान—दोनों दो। देखा नहीं चौधरी !

अपनेको हिन्दू ब्राह्मण कहनेवाले यह अपनी स्त्रियोंको सात पर्देकी बेगमें बनाने जा रहे हैं।”

“हाँ, चौधरी! मेरे दादा कहते थे, उन्होंने कन्नौज और दिल्लीकी रानियोंको नंगे मुँह घोड़े पर चढ़े देखा था।”

ब्राह्मणने कहा—“लेकिन चौधरी! उस वक्त कोई मुसल्मान हमारी इज्ज़त लूटनेवाला न था।”

“आज भी हमारी इज्ज़त हार-खेतमें डोलती फिरती है, कोई उसे नहीं लूटता।”

“और लुटती भी यदि थी, तो चौधरी मंगलराम! जब इस ब्राह्मण-का—सिब्बेकी चली थी।”

“मुफ्तकी खानेवाले—एक दूसरेकी इज्ज़त लूटना छोड़ और क्या करेंगे! यह हिन्दू-मुसल्मानोंका सवाल नहीं पंडत, यह मुफ्तखोरोंका काम है। पक्के हिंदू हम हैं, पडत! हमारी औरतें कभी सात पर्देमें नहीं रहेंगी।”

ब्राह्मणने फिर एक बार साहस करके कहा—“अरे चौधरी! तुम्हें पता तो नही है, सुल्तानके सेनापति मलिक काफूरने दक्खिनमे जा हमारे मन्दिर तोड़, देव-मूर्तियोंको पाँवों तले रौंदा।”

“हमने बहुत सुना है, पडत! एक बार नहीं, हजार बार! मुसल्मानी राजमे हिन्दूका धर्म नही। लेकिन, हम दिल्लीके बहुत नजदीक रहते हैं, पडत! नहीं तो हम भी विश्वासकर लेते। हमारे बीस कोसमें न तो कोई मंदर तोड़ा गया, न देवताओंको पाँवके नीचे दबाया गया।”

“चौधरी मगलराम! यह बिल्कुल झूठ है तो तुम मुझसे भी ज्यादा दिल्ली जाते-आते रहते हो। मैं कितनी ही बार दशहरा देखने दिल्ली गया हूँ। कितना भारी मेला होता है—आधीसे ज्यादा औरतें होती हैं। हिन्दूका मेला, मेलेवाले भी ज्यादातर हिन्दू। देवताओंको सजाकर सुल्तानके झरोखेके नीचेसे ले जाते हैं, सब शख, नगाड़ा, नरसिंगा बजाते हैं।”

- "हाँ, झूठ है चौधरी छेदाराम ! सेठ निक्कामल महलके सौ गज पर ही एक बड़ा मदर बना रहे हैं। न जाने कितने लाख लगेंगे, मैंने पिछली बार पत्थर गिरा देखा, अबकी बार देखा तो दीवार कमर भर उठ आई है। यदि सुल्तानको तोड़ना होता, तो अपनी आँखोंके सामने क्यों मदर खड़ा होने देता ?"

'हाँ चौधरी ! राजाओं-राजाओंमें लड़ाई होती है। लड़ाईमे कौन किसको पूछता है। कुछ हो गया होगा उसीको लेकर हल्ला करते हैं। सौ वर्ष पहिले हमारे और-पासमें ऐसी बातें हुई थीं; लेकिन अब कहीं कुछ सुननेमे आता है ?"

"याद है, हम कई गाँवोंके आदमी जब मनसबदारके पड़ावपर गये थे, उसने कहा था—पहलेके सुल्तान चिड़िया-रैन-बसेरावाले थे, हमारा सुल्तान लामदीन हमारे घरमे, दुःख-सुखमे साथ रहनेवाला सुल्तान है; इसलिये वह प्रजाको लूटता नहीं, खुशहाल देखना चाहता है।"

"और, अब चाहनेकी बात नहीं, लोग-बाग चारों ओर खुशहाल दीखते हैं।"

(४)

दिल्लीके बाहर सुनसान कब्रस्तान था, जिसके पास कुछ नीम और इमलीके दरख्त थे। अगहनकी रातें सर्द थीं। लकड़ीकी आगके पास दो फकीर बैठे थे, जिनमे एक हमारे परिचित बाबा नूरदीन थे। दूसरे फकीरने अपनी सफेद दाढ़ी और मूछों पर दोनों हाथोंको फेरते हुए कहा—"बाबा ! पाँच बरसमें फिर हरियानेमे दूधकी नदियाँ बहने लगी हैं।"

'ठीक कहा बाबा ज्ञानदीन ! अब किसानोंके चेहरे हरे-भरे दिखलाई पड़ते हैं।"

"बाबा, जब खेत हरे-भरे होते हैं तभी चेहरे भी हरे होते हैं।"

"आमिल-अमले तो गये, ये बनिया-महाजन और मर जाते तो चैनकी बंशी बजती।"

"बहुत लूटते हैं। और, इनके ये बड़े-बड़े मठ, बड़े बड़े मंदर—सदाव्रत तो इसी लूटसे चल रहे हैं।"

"कहते हैं, धनी नहीं रहनेसे धर्म नहीं चलेगा। मैं कहता हूं जब तक धनी रहेंगे तब तक अधर्मका पलड़ा भारी रहेगा।"

"ज्ञानी-ध्यानी, पीर-पैग़ंबर, ऋषि-मुनिसे बढ़कर धर्मपर चलने वाला कौन होगा? लेकिन, उनके पास एक कमली, एक कफ़नीसे बेशी क्या था?"

"इंसान भाई-भाई नहीं बन सकते जब तक गरीबोंकी कमाईसे पलनेवाले अमीर हैं। और सुल्तान भी मित्र ज्ञानदीन आदमी-आदमी मे फूट डालनेवाले यही इकट्ठा सिमटी माया है; किन्तु, उसकी शान-शौक़त भी तो नहीं चले, अगर कमेरोंकी कमाई न नोचे?"

"उन दिनोंकी उम्मीद रखें, मित्र! जब सभी गोरखधंधे मिट जायेंगे और पृथ्वी पर प्रेमका राज्य क़ायम होगा।"

१६–सुरैय्या

काल—१६०० ई०

(१)

वर्षाके मटमैले पानीकी धार चारों ओर फैली दिखलाई पड़ रही थी। पानी समतल भूमि पर धीरे-धीरे फैलता, ढालुआँ जमीन पर दौड़ता, और नालों-नदियोंमें खेलती पहाड़ी नदियोंके विस्तृत जलका रूप धारण कर रहा था। वृक्षोंने मानों वर्षाको अब भी रोक रक्खा था, उनसे बड़ी बड़ी बूँदे अब भी टपाटप गिर रही थीं। वैसे वर्षा अब फुहारोंकी शकल में परिणत हो गई थी।

अकेले छेकुरे (शमी) के दरख्तसे कुछ हटकर एक श्वेतवसना तरुणी खड़ी थी। उसके शिरकी सफेद चादर खिसक गई थी, जिससे भ्रमरसे काले द्विधा विभक्त केशोंके बीच हिमालयकी अरण्यानीमें बहती गंगाकी रुपहली धार खिंची हुई थी। उसके कानोंके पास काले कुंचित काकुलोंसे अब भी एकाध बूँद गिर पड़ती थी। उसके हिम श्वेत गंभीर मुख पर बड़ी-बड़ी काली आँखें किसी दूरकी चीजका मानस प्रत्यक्ष कर रही थीं। उसके घुटनों तक लटकता रेशमी कुर्ता भीग कर वक्षस्थलसे सट गया था, जिसके नीचे लाल अंगियामें बँधे उसके नारंगीसे दोनों स्तनोंका उभार बहुत सुंदर मालूम होता था। कुर्तेके घिरावेमें भूली कमरके नीचे पायजामा था, जिसके पतले सटे निम्न भागमें तरुणीकी पेंडुली की चढ़ाव उतार आकृति साफ मालूम पड़ रही थी। मिट्टीसे रंगे सफेद मोजेके ऊपर लाल जूतियाँ थीं, जो भीग कर और नरम, और शायद चलनेके अयोग्य हो गई थीं।

तरुणीके पास एक तरुण आता दिखाई पड़ा। उसकी छज्जेदार पगड़ी, अचकन, पायजामा—जो सभी सफेद थे—भी भीगे हुए थे।

नजदीक आ जाने पर भी उसने देखा, तरुणी उसकी ओर देख नहीं रही है। पैरोंकी आहटको रोककर वह तरुणीकी बगलमें दो हाथ पर जा खड़ा हो गया। तरुणी एकटक थोड़ी दूर पर बहते नालेके मटमैले पानीको देख रही थी। तरुण सोच रहा था, उसकी सहचरी अब उसकी ओर देखेगी, किन्तु युगोंके बराबरके कितने ही मिनट बीत गये, तरुणीके अंग—नेत्र अब भी निश्चल थे। फुहारोंसे झरते जलकणको भी भौंहोंसे पोंछने का उसे ख्याल न था। तरुणने और प्रतीक्षा करनेमें अपनेको असमर्थ देख तरुणीके कंधे पर धीरेसे हाथ रख दिया, तरुणीने मुँह फेरा। उसकी दूर गई दृष्टि लौट आई, और उन बड़ी बड़ी काली आँखोंसे किरणें फूट निकलीं। उसके प्रकृत लाल ओठों पर मुस्कान थी, और भीतरसे दिख- लाती पतली दन्त रेखा चमक रही थी। उसने तरुणके हाथको अपने हाथमे लेकर कहा—

"कमल! तुम देरसे खड़े थे?"

"जान पड़ता है युगोंसे, तबसे जब कि स्रष्टाने अभी अभी पानीसे पृथिवीको बनाना शुरू किया था, अभी वह गीली थी, और इतनी दृढ़ न थी कि पर्वत, और वृक्षों और प्राणियोंके भारको सहन कर सकती।"

"जाने दो कमल! तुमतो हमेशा कविता करते हो!"

"काश, सुरैय्या! तुम्हारी बात सच निकलती, लेकिन जान पड़ता है, कविता मेरे भाग्यमे नही बदी है।"

"सुरैय्या किसी दूसरी नारीको अपने साथ रखना पसद नही करेगी।"

"यह हृदय भी यही कहता है। किन्तु, ध्यान-मग्न हो तुम क्या सोच रही थी, मेरी सुरैय्या।"

"सोच रही थी, बहुत दूर,—बहुत दूर—समुद्र कितना दूर है कमल!"

"सबसे नजदीक है सूरतमें, और वह एक मासके रास्ते पर है।"

'और यह जल कहाँ जाता है?"

"बंगालकी ओर वह तो और दूर है, शायद दो महीनेके रास्ते पर।"

"इस वेचारे मटमैले जलको इतना बड़ा सफर करना पड़ेगा। तुमने समुद्रको देखा है कमल ?"

"पिताजीके साथ उड़ीसा गया था प्यारी ! उसी वक्त देखा था।"

"कैसा होता है ?"

"सामने आकाश तक छाई काली तरंगित घटा।"

"इस जलके भाग्यमे वह समुद्र है। क्या वहाँ इसका मटमैला रंग रहेगा ?"

"नहीं प्यारी ! वहाँ सिर्फ एक रंग है घननील या काला।"

"किसी वक्त मैं भी समुद्र देखूँगी, यदि तुम दिखाना चाहोगे।"

"इस जलके साथ चलनेको तैयार हूँ प्यारी सुरैय्या ! तुम्हारी आज्ञा चाहिये।"

सुरैय्याने कमलके गलेमे हाथ डाल दोनों भीगे कपोलोंको मिला दिया, फिर कमलके उत्फुल्ल नेत्रोंकी ओर देखते हुए कहा—

"हमें समुद्रमे चलना होगा, किन्तु इस जलके साथ नही।"

"मटमैले जलके साथ नहीं, प्यारी ?"

"मटमैला न कहो कमल ! मटमैला यह यहीं है। जब यह आकाश से गिरा, तब क्या मटमैला था ?"

"नहीं, उस वक्त इसकी निर्मलता सूर्य और चाँदसे भी बढ़कर थी। देखो, इन तुम्हारी सुदर अलकोंको इसने कितना चमका दिया ! तुम्हारे चन्द्रश्वेत कपोलोंको इसने कितना मनोरम बना दिया ! आकाश से सीधे जहाँ जहाँ पड़ा, प्यारी सुरैय्या ! वहाँ इसने तुम्हारे सौन्दर्यको निखार दिया।"

"हाँ तो इसका मटमैलापन अपना नहीं है, यह इसे उनके संघर्षसे बनना पड़ा है, जो कि इसे सागर-संगमसे रोकते हैं। क्या सागरमे सीधी गिरती बूँदे ऐसी मटमैली होती हैं, कमल ?"

"नहीं, प्यारी !"

"इसीलिए मैं इसके मटमैलेपनको दूषण नहीं भूषण समझती हूँ। तुम्हारी राय क्या है कमल ?"

"सुरैय्या! तुम्हारे ओठ मेरे ही हृदयके अक्षरोंको प्रकट कर रहे हैं।"

(२)

आसमानकी नीलिमाकी छाया, अतल पुष्करिणीके जलको और नील बना रही है। उस नीलिमाके गिर्द। अमल श्वेत संगमर्मरके घाट और भी श्वेत मालूम होते हैं। पुष्करिणीकी ओर हरी दूबके फ़र्शके बीच शिखरदार हरित सरों देखनेमें बड़े सुंदर मालूम होते हैं, ख़ासकर इस वसन्तके मध्याह्न समयमें। दूर-दूर तक वृक्षोंकी पाँती, लता मंडप तथा चलते फौवारोंसे उद्यान सजाया हुआ है। आज शाही बाग़ तरुण तरुणियोंके वसन्तोत्सवके लिए खुला हुआ है और इस उन्मुक्त संसारमें स्वर्गीय प्राणियोंकी भाँति वह घूम रहे हैं।

बाग़के किनारे किन्तु, पुष्करिणीसे दूर एक लाल पत्थरकी बारादरी के बाहर चार आदमी खड़े हैं। सभीके सिर पर एक-सी आगेकी ओर ज़रासी निकली पगड़ी, एकसे घुट्टी तक लटकते चुने घिरावेदार बगल-बंदी जामे, एकसे सफ़ेद कमरबंद हैं। सभीके मुखपर एकसी मूछें हैं; जिनके अधिकाश बाल सफ़ेद हो गए हैं। वह कुछ देरसे बाग़की ओर देख रहे थे, फिर जाकर चारों ओरसे खुली बारादरीमें बिछे गद्देपर बैठ गए। चारों ओर नीरवता थी, इन वृद्धोंके सिवा वहाँ और कोई न था। नीरवताको भंग करते हुए किसीने कहा—

"बादशाह सलामत !—"

"क्या फ़ज़ल! इस वक्त भी हम दर्बारमें बैठे हुए हैं ? क्या मनुष्य कहीं भी मनुष्यके तौरपर रहने लायक़ नहीं हैं ?"

"भूल जाता हूँ—नूँ—नूँ—"

"जलाल कहो या अकबर कहो—अथवा दोस्त कहो।"

"कितनी मुश्किल है, मित्र जलाल! हम लोगोंको दोहरी ज़िन्दगी रखनी पड़ती है।"

-"दोहरी नहीं चौहरी भाई फजलू!"

"भाई बीरू! मै तो तेरी तारीफ करूँगा, तू तो मालूम होता है, हर बातके लिये हर वक्त तैयार रहता है, हम तो एक दुनियासे जब दूसरी दुनियामे आते हैं, तो कितनी देर तो स्मृति ठीक करनेमें लग जाती है। क्यों टोडू भाई! ठीक कह रहा हूँ न?"

"हाँ, मुझे भी तअज्जुब होता है फज़लू। यह बीरू क्या करता है। इसका कितना बड़ा दिमाग़ है—"

"बीरबल ही को न सब लोग हिन्दुस्तानके एक एक खेतोंपर लग्गी चलाने वाला मानते हैं?"

"लेकिन टोडरमलने भी तो बीरू भाई! हर जगह लग्गी नहीं घुमाई।"

बीरबल—"घुमाई हो या न घुमाई हो, दुनिया यही जानती है। और इस दिमाग़की दाद तो हमारा जल्लू भी देगा।"

अकबर—"ज़रूर, और यह उन क़िस्सोंमे नही है, जो बादशाह जलालुद्दीन अकबरके भेस बदलकर गाँव-गाँवमें घूमनेके बारेमे मशहूर हैं।

बीरबल—"यह अच्छी याद दिलाई जलुआ भाईने। और मैं भी इसके साथ मारा जा रहा हूँ। बीरबल और अकबरके नामसे कोई भी क़िस्सा गढ़कर कह डालना आम बात हो गई है। मैंने ऐसे बहुतसे क़िस्से जमा किये हैं। एक क़िस्सेके लिए एक अशर्फी मुकर्रर कर रखी है।"

अकबर—"कहीं, ऐसा न हो कि तुम्हारी अशरफ़ीके लिये क़िस्से दिमाग़से सीधे तुम्हारे पास पहुँचते हों।"

बीरबल—"हो सकता है, किन्तु, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, तब भी तो यह पता लगेगा कि क्या क्या खुराफ़ाते हम दोनोके नामसे रची जा रही हैं।"

बीरबल—"अबे फ़ज़ला ! जाने दे, मैं सेठ छदामीमलक तरहका मक्खीचूस नहीं हूँ।"

अबुल् फ़ज़ल—"नहीं, यदि बीरू ! मुझपर नाहक़ नाराज़ न हो। और भाई ! तेरे क़िस्सोंसे मैं बहुत डरता हूँ।"

बीरबल—"हाँ, मैंने ही न आईने-अकबरी जैसा पोथा लिखकर रख दिया है।"

अबुल् फ़ज़ल—"आईने-अकबरीके पढ़ने वाले कितने मिलेंगे, भई टोडू ! तू ही ईमान धरमसे कह; और कितने होंगे बीरबलके क़िस्सोंको दुहराने वाले ?"

टोडरमल—"यह बीरू भी जानता है।"

अबुल् फ़ज़ल—"अच्छा, बीरू ! अपने अशर्फ़ी वाले किसी क़िस्से को भी तो सुना।"

बीरबल—"लेकिन, तुम सबने तो पहिले ही तै कर लिया है, कि यह क़िस्सा मेरी अशर्फ़ी का नहीं बल्कि मेरे दिमाग़ का होगा।"

अकबर—"लेकिन, बिना बतलाये भी हम परख सकते हैं, कौन असली सिक्का है, कौन खोटा।"

बीरबल—"गोया मेरे हर क़िस्सेपर ठप्पा लगा रहता है। अच्छा भाई ! तुम्हारी मौज, क़िस्सा तो सुना ही देता हूँ, किन्तु, संक्षेपमें सिर्फ़ मतलबकी बात। अकबरको एक बार बहुत शौक़ हुआ हिन्दू बनने का। उसने बीरबलसे कहा। बीरबल बड़े संकटमें पड़ा। बादशाहसे नहीं भी नहीं कर सकता था, और हिन्दू बनानेका उसे क्या अधिकार था ? कई दिन ग़ायब रहा। एक दिन शामको बादशाह महलकी खिड़कीके पास 'हिछू—छो—ो' 'हिछू—छो—ो' की आवाज़ ज़ोर ज़ोर से सुनाई दी। बादशाहको यहाँ और इस वक्त कभी कपड़ा धोनेकी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी थी। उसका कौतूहल बढ़ा। वह एक मज़दूर का कपड़ा पहिन जमुनाके किनारे गया। कितना ही रूप क्यों न बदला हो, बादशाह बीरूको पहिचाननेमें ग़लती नहीं कर सकता। और वहाँ

कपड़ा पाटेपर नहीं पटका जाता था, बल्कि एक मोटे ताजे गदहेको रेह और रीठेसे मलमलकर धोया जा रहा था। बादशाहने अपनी मुस्कुराहटको दबा, स्वर बदलकर पूछा—

'क्या कर रहे हो चौधरी!'

'अपना कामकर भाई! तुझे क्या पड़ी है?'

'बड़े बेवक्त जाड़े-पालेमें ठर रहे हो चौधरी!'

'मरना ही होगा, कल ही इसे घोड़ा बना बादशाहको देना है।'

'गदहेको घोड़ा बना!'

'क्या करना है, बादशाहका यही हुक्म है।'

"बादशाहने हंसकर अपनी आवाज़में कहा—'चलो, बीरबल! मैं समझ गया मुसल्मानका हिन्दू होना गदहेसे घोड़ा होनेके बराबर है।"

"भाई फ़ज़ल! इस कहानीको सुनकर जान पड़ा, शरीरमें साँप डँस गया।"

अकबर—"और यह कहानी हमें अपने जीवनकी सध्यामें सुननेको मिल रही है! क्या हमारे सारे जीवनके प्रयत्नका यही परिणाम होगा।"

अबुल-फ़ज़ल—"जलाल! हम अपनी एक ही पीढ़ीका जिम्मा ले सकते हैं। हमारे प्रयत्नको सफल-असफल बनाना बागमें बसन्तोत्सव मनाना इन सूरतोंके हाथोंमें है।"

टोडरमल—"लेकिन, भाई! हमने मुसल्मानको हिन्दू या हिन्दूको मुसल्मान बनाना नहीं चाहा!"

अबुल-फ़ज़ल—"हमने तो दोनोंको एक देखना चाहा, एक जात, एक बिरादरी बनाना चाहा।"

बीरबल—"लेकिन, मुल्ले और पंडित हमारी तरह नहीं सोचते। हम चाहते हैं, हिन्दुस्तानको मज़बूत देखना। हिन्दुस्तानकी तलवारमें ताक़त है, हिन्दुस्तानके मस्तिष्कमें प्रतिभा है, हिन्दुस्तानके जवानोंमें हिम्मत है। किन्तु, हिन्दुस्तानका दोष, कमजोरी है, उसका बिखराव,

टुकड़े टुकड़े में बँटा होना। यदि केवल हिन्दुस्तानकी तलवारें इकट्ठा हो जातीं!"

अकबर—"बस मेरी एक मात्र यही इच्छा थी मेरे प्यारे साथियो! हमने इसके लिये इतने समय तक संघर्ष किया। जिस वक्त हमने काम शुरू किया था, उस वक्त चारों ओर अँधेरा था, किन्तु, अब वही बात नहीं कह सकते। एक पीढ़ी जितना कर सकती थी, उतना हमने किया, किन्तु यह गदहे घोड़ेकी बात मेरे दिलपर पत्थरकी तरह बैठ रही है।"

अबुल-फ़ज़ल—'भाई जलाल! हमें निराश नहीं होना चाहिये। मिलाओ, इसे खानखानाके समयसे। उस वक्त क्या जोधाबाई तुम्हारी स्त्री बनकर महलेसरामें विष्णुकी मूर्ति पूज सकतीं?"

अकबर—"फ़र्क है फ़ज़्ल! किन्तु हमें मंजिल कितनी दूर चलनी है। मैंने फिरंगी पादरियोंसे एक बार सुना, कि उनके मुल्कमें बड़ेसे बड़ा बादशाह भी एकसे अधिक औरतसे ब्याह नहीं कर सकता। मुझे यह रवाज कितना पसद आया, इसे टोडर! तुमने उस वक्त मेरी बातोंमे सुना होगा। यदि यह कहीं मैं कह सकता! किन्तु बादशाह बुराइयोंके करनेकी जितनी स्वतंत्रता रखते हैं, उतनी भलाइयोंकी नहीं, यह कैसी विडम्बना है। यदि हो सकता तो मैं रनिवासमें सलीमकी माँको छोड़ किसीको न रखता। आज यदि सलीमके लिये भी ऐसा कर पाया होता!"

बीरबल—"प्रेम तो जलाल! सिर्फ एकसे ही हो सकता है। जब मैं हंसोंके मनोहर जोड़ोंको देखता हूँ, तो मुझे मालूम होता है, कि उनका जीवन कितना सुन्दर है। वह जिस तरह आनन्दके साथी होते हैं, उसी तरह विपताके भी साथी।"

अकबर—"मेरी आँखोंने एक बार आँसू निकल आये थे भाई बीरू! मैं शेरके शिकारमें गया था, गुजरातमें। हाथीपर चढ़कर तुफंग (पलीतेवाली बंदूक)से शेरको मारना कोई बहादुरी नहीं है, इसे मैं मानता हूँ। तुम्हारे पास शेर जैसे पंजे और जबड़े नहीं हैं, तुम भी ढाल तलवार लेकर उसके बराबर हो सकते हो, किन्तु इससे ज्यादा रखना

वीरताके खिलाफ है। मैंने शेरको तुफंगसे मारा। गोली उसके शिरमे लगी। शेर कूदकर वहीं गिर गया। उसी वक्त मैंने देखा झाड़ीमेंसे छलाग मारती शेरनीने एक बार मेरी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखा, फिर मेरी तरफ पीठकर वह शेरके गालोंको चाटने लगी। मैंने तुरन्त शिकारियोंको गोली रोकनेका हुकम दिया और हाथी वहाँसे लौटा लाया। उस वक्त मेरे मनपर ऐसी चोट लगी थी, कि यदि शेरनी मुझपर हमला भी करती, तो मैं हाथ न छोड़ता। मैं कितने ही दिनों तक ग़मगीन रहा। उस वक्त मैंने समझा, यदि शेरकी भी हजार पाँचसौ शेरनियाँ होतीं तो क्या वह उस वक्त शेरके गालको इस प्रकार चाटतीं।"

अबुल-फ़ज़ल—"हमारे देशको कहाँ तक चलना है, और हमारी गति कितनी मद रही है। फिर हमे यह भी मालूम नहीं कि जब चलनेके लिये हमारे पैर नहीं रहेंगे, तो कोई हमारे भारको वहन करनेवाला होगा भी।"

अकबर—"मैंने चाहा, तलवार चलानेवाली दोनों हिन्दू-मुसलिम जातियोंके खूनका समागम हो; इसी समागमकी ओर ध्यानकर मैंने प्रयाग की त्रिवेणी पर किला बनाया। गगा यमुनाकी धाराओंका वह संगम जिसने मेरे दिलमें एक विराट् सगमका विचार पैदा किया। लेकिन, देखता हूँ, कि मैं उसमे कितना कम कामयाब रहा। वस्तुतः जो बात पीढ़ियोंके प्रयत्नसे हो सकती है, उसे एक पीढ़ी नहीं कर सकती। किन्तु मुझे इसका सदा अभिमान रहेगा, कि जैसे साथी मुझे मिले, वैसे साथी बहुत कमके भाग्यमे बदे होंगे। मैं देखना चाहता था घर-घरमें अकबर और जोधाबाई, मेहरुन्निसा और कौन जिसे मैं पा नहीं सका।"

टोडरमल—"हिन्दू इसमे ज़्यादा नालायक साबित हुए।"

बीरबल—"और अब गदहेको धोकर घोड़ा बनानेकी कथा गढ़ रहे हैं। लेकिन, यदि हिन्दू मुसलमानोंमे इतना फर्क है, तो घोड़ा गदहा कैसे हो जाता है? क्या हज़ारों हिन्दू मुसलमान हुए नहीं देखे जाते?"

अकबर—"मेरी आँखें तरसती ही रह गईं, कि हिन्दू तरुण भी मुसलमान तरुणियोंसे ब्याह करें, बिना अपने नाम और धर्मको छोड़े।"

अबुल्-फ़ज़ल—"यहाँ मैं एक खुशखबरी सुनाऊँ भाई जलाल! मेरी सुरैय्याने वह काम किया जो हम नहीं कर सके।"

सब उत्सुक हो अबुल्-फ़ज़लकी ओर देखने लगे।

"तुम लोग उत्सुक हो आगे सुननेको। ज़रासा मुझे बाहर हो आने दो,—" कह अबुल्-फ़ज़लने बाहर कठघरेके किनारे खड़ा हो देखा, फिर आकर कहा—

"सुनाना, नहीं दिखाना अच्छा होगा, मेरे साथ चलो।"

सब उसी कठघरेके पास पहुँचे। अबुल्-फ़ज़लने हरे अशोकके नीचे पत्थरकी चौकीपर बैठी दो तरुण मूर्तियोंकी ओर अँगुली करके कहा—"वह, देखो! मेरी सुरैय्या।"

टोडरमल—"और मेरा कमल! दुनिया हमारे लिए अँधेरी नहीं है, भाई फ़ज़्लू!" कह टोडरमलने अबुल् फ़ज़लको दोनों हाथोंमें बाँध, गले लगा लिया।

दोनों मिलकर जब अलग हुए तो देखा चारोंकी आँखें गीली हैं। अकबरने मौनको भंग करते हुए कहा—

"मैंने तरुणोंका यह वसन्तोत्सव कितने वर्षोंसे कराया, किन्तु असली वसन्तोत्सव आज इतने दिनोंके बाद हुआ। मेरा दिल करता है, बुलाकर उन दोनोंकी पेशानीको चूमूँ। कितना अच्छा होता, यदि वह जानते कि हम उनके इस गंगा-यमुना-संगमको हृदयसे पसन्द करते हैं।"

अबुल्फ़ज़ल—"सुरैय्याको यह मालूम नहीं है कि उसके माँ-बाप इस प्रणयको कितनी खुशीकी बात समझते हैं।"

टोडरमल—"कमलको भी नहीं मालूम; मगर तुम बड़े खुशकिस्मत हो फ़ज़्लू! जो कि सुरैय्याकी माँ भी तुम्हारे साथ है। कमलकी माँ और सुरैय्याकी माँ दोनों पक्की सखियाँ हैं, तो भी कमलकी माँ कुछ पुराने ढरेंकी है। कोई हर्ज नहीं, मैं कमल और सुरैय्याको आशीर्वाद दूँगा।"

अकबर—"सबसे पहिले आशीर्वाद देनेका हक़ मुझे मिलना चाहिये।"

बीरबल—"और मुझे जल्लू! अपने साथ नहीं रखोगे?"

अकबर—"ज़रूर ऐसा धोबी कहाँ मिलेगा।"

बीरबल—"और ऐसा घोड़ा बननेवाला गदहा भी कहाँ।"

अकबर—"और आजकी हमारी गोष्ठी कितनी आनन्दकी रही। कहीं इस तरहका आनन्द महीनेमें एक दिनके लिए भी मिला करता!"

(३)

छतपर चारों ओर किवाड़ लगा एक सजा हुआ कमरा है, जिसकी छतसे लाल, हरे, सफ़ेद झाड़ टँगे हुए हैं। दरवाज़ोंपर दुहरे पर्दे हैं, जिनमें भीतरी पर्दे बूटेदार गुलाबी रेशमके हैं। फ़र्शपर सुन्दर ईरानी कालीन बिछा हुआ है। कमरेके बीचमें सफ़ेद गद्दीपर कितनेही गाव-तकिये लगे हुए हैं। गद्दीपर तरुणियाँ बैठी शतरंज खेल रही हैं, जिनमें एक वही हमारी परिचिता सुरैया है, और दूसरी लाल घाँघरे, हरी चोली तथा पीली ओढ़नीवाली फूलमती—बीरबलकी १३ वर्षकी लड़की है। वह दोनों चाल सोचनेमें इतनी तल्लीन थीं, कि उन्हें गद्दीपर बढ़ते पैरों की आहट नहीं मालूम हुई। "सुरैया!" की आवाज़पर दोनोंने नज़र ऊपर उठाई और फिर खड़ी होगई। सुरैयाने "चाची!" कहा, और कमलकी माँ ने गलेसे लगा उसके गालोंको चूम लिया। सुरैयाकी माँ ने कहा—

"बेटी! जा, कमल तेरे लिए लाल मछलियाँ लाया है, हौज़में डालनेके लिए; तबतक मैं मुन्नीसे शतरंज खेलती हूँ।"

"मुन्नी बड़ी होशियार है अम्मा! मुझे दोबार मातकर चुकी है, इसे छोटी छोकरी न समझना"—कह सुरैया चादरको ठीक करती जल्दीसे कमरेसे बाहर निकल गई।

महलके पिछले बाग़में हौज़के पास कमल खड़ा था, उसके पास

एक नई मिट्टीकी हँडिया पड़ी हुई थी। सुरैयाने पास जाकर कमलके हाथको अपने हाथोमे लेकर कहा—

"लाल-पीली मछलियाँ लाये हो, कमल भाई!"

"हाँ, और सुनहरी भी।"

"देखे तो"—कह सुरैया झुककर हँडियामे झाँकने लगी।

"मै इन्हें हौज़मे डालता हूँ, उसमे देखनेमें ज़्यादा सुन्दर मालूम होंगी, बिल्लौरी हौज़की चमकती तहमें उन्हें देखो, सुरैया।"

सुरैया ओंठो और आँखोंमे हँसीको विकसित करते हुए हौज़के पास खड़ी होगई। कमलने हँडियाकी मछलियोंको हौज़में उँडेल दिया। सचमुच बिल्लौरी हौज़मे उनका लाल-गुलाबी-सुनहरा रग बहुत सुन्दर मालूम होता था। कमलने गम्भीरतासे समझाने हुए कहा—

"अभी छोटी हैं सुरैया! लेकिन बढ़नेपर भी छै अंगुलसे छोटी ही रहेंगी।"

"अभी भी सुदर हैं कमल!"

"यह देखो, सुरैया! इसका कैसा रंग है?"

"गुलाबी।"

"जैसे तुम्हारे गाल, सुरैया!"

"बचपनमें भी तुम ऐसेही कहा करते थे कमल भाई!"

"बचपनमें भी ऐसेही थे सुरैया!"

"बचपनमें भी तुम मीठे लगते थे कमल।"

"और अब?"

"अब बहुत मीठे।"

"बहुत औ कम क्यों?"

"न जाने क्यों, जबसे तुम्हारा स्वर बदला, जबसे तुम्हारे ओठों पर हल्की कालीसी रोयोंकी पाँती उठने लगी, तभी से, जान पड़ता है, प्रेम और भीतर तक प्रविष्ट कर गया।"

"और तभीसे, कमलको तुमने दूर दूर रखना शुरु किया।"

"दूर दूर रखना !"

"क्यों नहीं ? पहले कैसे उछलकर मेरे कन्धेसे लटकती हाथोंको तोड़ती—"

"सारी शिकायतोंका खसरा मत पेश करो कमल ! कहो, कोई नई खबर।"

"नई खबर है सुरैया ! हमारा प्रेम प्रकट हो गया।"

"कहाँ ?"

"हमारे दोनों घरोंमें और आला हज़रत बादशाह सलामत तक।"

"बादशाह सलामत तक !"

"क्यों डर तो नहीं गई सुरैया !"

"नहीं, प्रेम कभी न कभी प्रकट होने ही वाला था। लेकिन, अभी कैसे हुआ ?"

"इतना विवरण तो मैं भी नहीं जानता, किन्तु पता लगा कि चाचा चाचीने ही पहिले इसका स्वागत किया, फिर पिता और बादशाह सलामतने। और सबसे पीछे माँने।"

"माँ ने ?"

"माँसे लोगोंको डर था, जानती हो वह बड़े पुराने विचारोंकी स्त्री हैं !"

"लेकिन, अभी मेरे गालोंसे चाचीके चुंबनके दाग मिटे न होंगे।"

"हाँ, ख्याल गलत निकला, जब उनसे पिताजी ने कहा तो वह बहुत खुश हुई।"

"तो हमारे प्रेमका स्वागत हुआ है।"

"जो हमारे हैं, उन सभी घरोंमे। किन्तु बाहरी दुनिया इसके लिए तैय्यार नहीं है।"

"इस बाहरी दुनिया की तुम पर्वाह करते हो कमल ?"

"बिल्कुल नहीं सुरैया ! हाँ हम पर्वाह करते हैं आनेवाली दुनियाकी, जिसके लिये हम यह पथप्रदर्शन करने जा रहे हैं।"

"भाभी साहिबाको भी मालूम है, कमल ! मुझे अब साफ जान पड़ रहा है। रातमें उनके घर गई थीं, उन्होंने मज़ाक में कहा—'ननद ! मैं, नन्दोईके लिये तरस रही थी किंतु सुरैया मेरी ननद ! अब मेरी साध पूरी होने जा रही है।' उन्होंने तुम्हारा नाम नहीं लिया।"

"इसका मतलब है भाई साहेबने भाभीको बतलाया, और दोनोंको हमारा प्रेम पसंद है।"

"तो तुम्हारी सारी ससुराल तुम्हारे कदमों में है कमल !"

"और तुमने माँको अपने पक्षमे करके कमाल किया !"

"चाचीकी पूजा पाठका तुम लोग ख्याल करते हो कमल ! यदि तुम्हें पता होता कि वह मुझे कितना प्यार करती हैं, तो शायद उनपर सन्देह भी न होता।"

"इसीलिये उनपर चलानेके लिये पिताजीने अन्तिम हथियार तुम्हींको रखा था किन्तु, उस हथियारके पहिले ही क़िला फतेह हो गया। अब हमलोगोंका ब्याह होने जा रहा है।"

"कहाँ ?"

"न पंडितके पास न मुल्लाके पास।"

"हमारे अपने पैगंबरके पास, जो हिन्दमें नई त्रिवेणीका नया दुर्ग निर्माणकर रहा है।"

"जो गढ़े-गढ़हियों, नदी-नालोंको निर्मल समुद्र बनाना चाहता है।"

"परसों ऐतवारको, सुरैया !"

"परसों !"—कहते कहते सुरैयाकी आँखोंमें नर्गिस्में शबनमकी तरह आँसू भर आये। कमलने उसका अनुकरणकर उसकी आँखोंको चूम लिया। दोनोंको नहीं पता था, कि कहीं छिपी-चार आखे भी उन्हींकी भाँति आनन्दाश्रु बहा रही हैं।

(४)

वसन्तकी गुलाबी सर्दी, संध्याकी वेला, डूबते सूर्यकी गिरती लाल किरणोंसे आग लगा सागर—देखनेमें कितना सुंदर दृश्य था। समुद्रके

बालूपर बैठे दो तरुण-हृदय इसका आनन्द ले रहे थे। ललाईके चरम-सीमा पर पहुँच जाने पर एकने कहा—

"सागर! हमारा इष्टदेव, कितना सुंदर है!!"

"हम सागरकी सन्तानें हैं, अब इसमे कुछ सन्देह रहा प्रिये?"

"नहीं, मेरे कमल जैसे कमल! हमने क्या कभी ख्याल भी किया था, सागरने अपने गर्भमें ऐसे स्वर्गलोकको छिपा रखा है।"

"पूर्ण न हो, किन्तु वेनिस्‌को आदमियोंने स्वर्ग बनाया है प्रिये! इसमें सन्देह नहीं।"

"मैं माधुरी पर विश्वास नहीं करती थी, जब वह कहती थी, हमारे देशमें कुल-वधुयें, कुल-कन्यायें ऐसे ही स्वच्छन्द, अवगुंठन रहित घूमती हैं, जैसे पुरुष। और आज इस स्वर्गमें रहते हमें दो साल हो गये। मिलाओ, प्रिय! वेनिस्‌को दिल्ली से।"

"क्या हम कभी विश्वास करते, सुरैया! यदि कोई कहता, कि बिना राजाके भी फ्लोरेन्स जैसा समृद्ध राज्य चल सकता है"—

"और वेनिस्‌ जैसी नगरोंकी रानी हो सकती है?"

"क्या सुरैया! दिल्लीमें हम इस तरह स्वच्छन्द विहर सकते?"

"बुर्केके बिना? पालकीके भीतर मूँद-माँद कर जाना पड़ता, प्रिय कमल! और यहाँ हमें हाथमें हाथ मिलाये चलते देखकर कोई नज़र भी उठाकर नहीं देखता।"

"किन्तु गुजरातमें हमने देखा था अनावृतमुखी कुलांगनाओंको, सुना था, दक्षिणमें भी पर्दा नहीं होता।"

"इससे जान पड़ता है, किसी समय हिन्दकी ललनायें भी पर्देसे मुक्त थीं। क्या कभी हमारा देश फिर वैसा हो सकेगा कमल?"

"हमारे पिताओंने तो अपने जीवन भर कोशिशकी। यह छोटा-सा फ्लोरेन्स देश जिसे तीन दिनमें आर-पार किया जा सकता है। ज़रा देखो, इसकी ओर सुरैया! यहाँके लोग कितने अभिमानके साथ शिर उन्नत किये चलते हैं। यह किसीके सामने सिज्दा, कोर्निश करना जानते ही

नहीं। राजाका नाम सुनकर थूकते हैं, इनके लिये राजा शैतान या आग उगलनेवाला नाग है।"

"लेकिन, कमल! क्या इसमें कुछ सत्यता नहीं है? फ्लोरेन्सके किसानोंसे तुलना करो हिन्दके किसानोंकी। क्या यहाँ वह नंगे-सूखे हाड़ कहीं दिखलाई पड़ते हैं?"

"नहीं, प्रिये! और इसीलिये कि यहाँ शाही शान-शौकत पर करोड़ों खर्च नहीं करना पड़ता।"

"वेनिस् में धनकुबेर हैं, और कितने ही हमारे जगत् सेठोंको मात करते हैं।"

"हमारे जगत् सेठ लाख पर लाल झंडियाँ गाड़नेवाले। मैं तो सोचा करता था, यह चहबच्चेके रुपये और अशर्फियाँ अँधेरेमें पड़ी पड़ी क्या करती हैं? इन्हें हवा खाना चाहिये, एक हाथसे दूसरे हाथमें जाना चाहिये। इनके बिना मिठाई अपनी जगह पड़ी पड़ी सूखती है, फल अपनी जगह सड़ते हैं, कपड़ोंको गोदामोंमें कीड़े खाते हैं। और इन्हें गाड़कर हमारे सेठ लाल झंडियाँ गाड़ते हैं। लोग देखकर कहते हैं, सौ झंडियाँ हैं, सेठ करोड़ीमल हैं।"

सूर्यकी लाली कबकी खतम हो गई थी, अब चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। समुद्रकी लहरोंके किनारेके पत्थरों परसे टकरानेकी आवाज लगातार आ रही थी। तरुण-तरुणी अभी भी बालू परसे उठना नहीं चाहते थे। वह सागरको सचमुच अपना प्रिय संबंधी समझते थे। यद्यपि उन्हें स्वयं स्थलके रास्ते सफर करना पड़ा था, किन्तु, उन्हें मालूम था कि उनके सामनेके समुद्रका एक छोर हिन्दसे लगा हुआ है, इसीलिए उनके मनमे कभी कभी ख्याल आता था, क्या इस पारसे उस पारको मिलाया नही जा सकता।

कितनी ही रात गये दोनों लौट रहे थे। उस अंधियारी रात और अपने हृदयकी अवस्था देखकर सुरैयाने कहा—

"हमारे बादशाहने अपने राज्यमें शान्ति स्थापित करनेके लिये

भारी प्रयत्न किया, और उसमे उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई; किन्तु क्या वहाँ अँधेरी रातमे हम इस प्रकार निशंक घूम सकते। यह क्यों ?"

"यहाँ सब खुशहाल हैं। किसानोंके खेत अंगूर, सेब, गेहूँ पैदा करते हैं !"

"हमारे भी खेत सोना बरसाते हैं !"

"तो सोनेके लूटनेवाले हमारे यहाँ ज्यादा हैं, सुरैया !"

"और कमल! देखते हो, यहाँ किसीके घरमें जानेपर कैसी बेतकल्लुफीसे गिलास और बोतल मेजपर आ जाती हैं।"

"हिन्दमे पिता जी इसीलिये बदनाम थे कि वह बादशाहके साथ पानी पी लेते थे।"

"और मुझे मेरी दाइयाँ सिखलाया करती थीं कि राजपूतनियाँ बड़ी नज्स (गदी) होती हैं, उनके घरमें सूअर पकता है। काश कि, वहाँके अंधे यहाँ आकर देखते। इस दुनियामे छोटी-बड़ी जात नहीं।"

"इस दुनियामे खाने-पीनेकी छूत-छात नहीं।"

"फ्लोरेन्स एक है, कभी हिन्द भी इसी तरह एक होगा, कमल !"

"यह तभी होगा, जब हम सागरकी शरण लेंगे, सागर विजय प्राप्त करेंगे। यदि हम यहाँ नहीं आये होते, तो क्या कभी हमारी आँखे खुलतीं, सुरैया !"

"सागर-विजय !"

"वेनिस् सागर-विजयिनी नगरी है सुरैय्या ! वेनिस्की यह नहरोंकी सड़कें, ये ऊँचे ऊँचे प्रासाद उसी सागर-विजयके प्रसाद हैं। आज वेनिस् सागर-विजयमें अकेली नहीं है, उसके कितने ही और भी प्रतिद्वन्द्वी हैं, किन्तु मुझे यह साफ मालूम होता है, अब सागर-विजयियोंका ही संसार पर शासन होगा। मैं अपनेको सौभाग्यवान् समझता हूँ, जो मेरे हृदयमे इसकी ओर प्रेरणा हुई।"

"तुम क्या क्या किताबें लिये रात-रात पड़े रहते हो प्रिय ! और पुस्तकें यहाँ कितनी सुलभ हैं !"

"हमारे यहाँ भी सीसा है प्रिये ! हमारे यहाँ भी कागज है, हमारे यहाँ भी कुशल लोहार मिस्त्री है; किन्तु अभी तक पुस्तके छापना नहीं जानते। यदि छापाखाना हमारे यहाँ खुल जाये, तो ज्ञान कितना सुलभ हो जायगा। और यह जो पुस्तके मैं पढ़ रहा हूँ, हफ्तों मल्लाहोंके साथ गायब रहता हूँ, इसने मुझे निश्चयकरा दिया, कि सागर-विजयी देश विश्वविजयी होकर रहेगा। इन फिरंगियोंको हमारे देशवाले नहाने-धोनेकी बेपर्वाहीके कारण गदे जगली कहते हैं; किन्तु, इनकी जिज्ञासा को देखकर मन प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। इन्होंने भूगोलके किस्से नहीं गढ़े बल्कि जाकर हर जगहकी जानकारी प्राप्तकी। इनके नक्शे मैंने तुम्हें दिखाये थे, सुरैया !"

"सागर मुझे कितना अच्छा लगता है, कमल !"

"अच्छा ही नहीं सुरैया ! सागर हीके हाथोंमे देशोंका जीवन होगा।"

तुमने देखा है, इन लकड़ीके जहाजोंपर लगी, तोपोंको। ये चलते फिरते किले हैं। मंगोलोंको उनके घोड़ोंने जिताया था और बारूदने भी। अब दुनिया में जिसके पास वे युद्धपोत होंगे, वही जीतेगा। इसीलिये मैंने इस विद्याको सीखना तै किया, सुरैया।"

कमल और सुरैयाकी इच्छा पूरी नहीं हुई। वह भारतके लिये रवाना हुए किन्तु, समुद्री डाकुओंका युग था। सूरत पहुँचनेसे दो दिन पहिले उनके जहाज पर समुद्री डाकुओंने हमला किया। अपने दूसरे साथियोंके साथ मिलकर कमलने भी अपनी तोपों और बंदूकोंको डाकुओं-के ऊपर भिड़ा दिया। किन्तु डाकू संख्यामें अधिक थे। कमलका जहाज तोपके गोलेसे जर्जर हो जल-निमग्न होने लगा। सुरैय्या उसके पास थी, और उसके मुस्कुराते ओठोंपर अन्तिम शब्द थे—"सागर-विजय।"

१७—रेखा भगत

काल—१८०० ई०

(१)

कार्तिककी पूर्णिमा है। गंडक (नारायणी)-स्नान और हरिहर-नाथके दर्शनकी भीड़ है। दूर दूरसे ग्रामीण नर-नारी बड़े यत्नसे बचाये पैसे और सत्तू-चावल लेकर हरिहर क्षेत्र पहुँचे हैं। बगीचे में उस वक्तके कुछ बैल-घोड़ों, हाथियोंको बँधा देखकर किसे उम्मीद हो सकती थी, कि यही आगे बढ़कर संसारका सबसे बड़ा मेला बन जायेगा।

गाढ़ेके अँगोछेमें नमकीन सत्तूको हरी मिर्चों और मूलीके साथ बड़े स्वादके साथ खाकर रामरेखा भगत और उनके चार साथी एक आमके नीचे कंबल पर बैठे हुए हैं। रेखाकी भैंस बिक गई है, और अब भी वह अपनी टेंटमें उन बीस रुपयोंको जब तब देख लिया करता था। मेलेके लिये मशहूर था, कि जादूसे रुपये निकाल लेने वाले चोर आज-कल बहुत आये हुए हैं। रेखाका हाथ फिर एक बार टेंट पर गया, और इत्मीनानके साथ उसने बात शुरू की—

"हमारी तो भैंस बिक गई। तीन महीनेसे, मौलू भाई! खूब खिला पिलाकर तैयार किया था। बीस रुपये वैसी भैंसके लिये कम दाम नहीं हैं। किन्तु आजकल लच्छिमी आँखसे देखते देखते उड़ जाती हैं।"

मौला—"उड़ जाती हैं, और रुपये-पैसेका चारों ओर निठाला है रेखा भाई। इस कम्पनीके राजमें कोई चीजमें बरक्कत नहीं है। हम मिट्टी खोदते खोदते मर जाते हैं, और एक शाम भी बाल बच्चोंको पेटभर खानेको नहीं मिलता।"

रेखा—"अभीतक तो हम हाकिमकी नजर-बेगार, अमला-फैलाकी घूस-रिश्वतमें ही तबाह थे, किन्तु कमसे कम खेत तो हमारा था।"

मौला—"सात पुश्तसे जंगल काटकर हमने खेत आबाद किया था।"

सोबरन—"मौलू भाई!, बघियाका खेत है न? वहाँ भारी जगल था। हमारे मूरिस घिनावन बाबाको वहीं बाघ उठा ले गया, तभीसे उस जगहका नाम बघिया पड़ा। जान दे देकर हमने खेत आबाद किया था।"

इसी बीच पतली चीटकी अपनी सफेद पगड़ीको नगे काले बदन पर सँभालते हुए भोला पंडितकी ओर देखकर रेखाने कहा—

"भोला पंडित! तुम तो सतयुग तककी बात जानते हो, ऐसा तो गाढ़ प्रजा पर कभी नहीं पड़ा होगा।"

मौला—"खेत हमने बनाया, जोतते-बोते हम हैं पंडित! और अब हमारे गाँवके मालिक हैं रामपुरके मुशीजी।"

भोला पडित—"अधर्म है अधर्म रेखा भगत! कम्पनीने तो रावण और कंसके जुलुमको मात कर दिया। पुराने धर्मशास्त्र मे लिखा है, राजा किसानसे दशाश कर ले।"

मौला—"और पडित! मुझे तो अचरज है, यह रामपुरके मुंशीको हमारा मालिक जमींदार क्यों बना दिया?"

भोला पंडित—"सब उलटा है मौलू! पहिले परजाके ऊपर एक राजा था। किसान बस एक राजाको जानता था। वह दूर अपनी राजधानीमे रहता था, उसे सिर्फ दशाशसे मतलब था, सो भी जब फसल हुई तब। किन्तु, अब फसल हो चाहे न हो, जमींदारको अपना हाड़-चाम बेचकर, बेटी-बहिन बेंचकर मालगुजारी चुकानी होगी।"

रेखा—"और मालगुजारीका भी पता नही पडित! सालै साल बढ़ाती जाती है। कोई नहीं पूछनेवाला है, कि क्यों ऐसा अधेरखाता है।"

मुशी सदासुखलाल पटवारी आए थे हरिहर चेत्र स्नान करने, और सस्ता होने पर एक गाय खरीदने, किन्तु, अबके सालकी मँहगाईको देखकर उनकी टाँग थहरा गई। उनके बदन पर एक मैली कुचैली

मिर्जई, और सिर पर टोपी थी, कानों पर सरकंडेकी कलम अब भी टँगी थी, जान पड़ता था, यहाँ भी उन्हें सियाहा लिखना है। मसरखके जमींदारके पटवारी होनेसे वह सोच रहे थे, कि इस बातचीतमें भाग लें या न लें; किन्तु, जब गाँवकी राजनीति छिड़ गई हो, उस वक्त कान-मुँह रखने वाले आदमीके लिये चुप रहना मुश्किल हो जाता है। दूसरे दयालपुर, उनके मालिकका गाँव भी न था, इसलिये भी दयालपुरके किसानोंकी बातचीतमे हिस्सा लेनेमें उन्हें कोई हर्ज नहीं मालूम हुआ। मुंशीजीने कलमको अँगुलीमें दबाकर घुमाते हुए कहा—

"पंडित ! किसी पूछने वालेकी बात करते हो ? कौन पूछेगा ? यहाँ तो सब अपनी अपनी लूट है—'पर सम्पतिकी लूट है, लूट सकै सो लूट'। कोई राजा नहीं है। नाजिम साहेबके दर्बारमें मेरी मौसेरी बहिन-दामाद रहता है। उसको बहुत भेदभाव मालूम है। कोई राजा नहीं। सौ-दो-सौ फिरंगी डाकुओंने जमात बाँध ली है, इसी जमातको कम्पनी कहते हैं।"

रेखा—"मुंसी जी ! ठीक कहते हो, 'कम्पनी बहादुर' 'कम्पनी बहादुर' सुनते सुनते हम समझते थे, कम्पनी कोई राजा होगा, लेकिन असिल बात आज मालूम हुई।"

मौला—"तभी तो, जिधर देखो उधर लूट मची है, कोई न्याय-अन्यायकी खबर लेनेवाला है ? रामपुरके मुंसीजीकी सात पीढ़ीका भी दयालपुरसे कोई वास्ता न था ?"

सोबरन—"मुझे तो समझ हीमें नहीं आता मौलू भाई ! यह रामपुरका मुंसी कैसे हमारे गाँवका मालिक बन गया। दिल्लीके बाद-शाहसे कम्पनीने लोहा लिया—"

मुंशी—"दिल्ली नहीं सोबरन राउत ! मकसूदाबाद (मुर्शिदाबादके) नवाबसे लोहा लिया। दिल्लीके तखतसे मकसूदाबादने हमारे मुलुकको छीन लिया था, सोबरन राउत।"

सोबरन—"हम लोगोंको इतना याद नहीं रहता मंसीजी ! हम तो

दिल्ली ही जानते थे। अच्छा मकसूदाबादके हाथमे भी जब राज आया, तब भी तो एक ही राजा न था? इससे जो जुटता-बनता, मालगुजारी चुकाते थे। लेकिन अब इसको दो-दो राजा कहेंगे कि क्या कहेंगे?"

रेखा—"सोबरन भाई! दो दो राजा हुए ही कि? एक कम्पनीका राज दूसरे रामपुरके मंसीजीका राज। चक्कीके एक पाटमें पिसनेमें कुछ बचनेकी भी आशा रहती है, भोला पंडित! लेकिन दो दो पाटमें पड़कर बचना नहीं हो सकता। और इसे हम आखोंसे देख रहे हैं। मंसीजी! तुम्हीं बतलाओ, हम लोग तो गॅवार, मूरख, अनाड़ी हैं, तुम्ही हमारेमें सज्ञान हो—या भोला पडित।"

मुंशी—"रेखा भगत! कहते तुम ठीक हो। जमीदार चक्कीका दूसरा पाट है। और वह राजासे किस बातमें कम है?"

रेखा—"कम काहेको बढ़कर है, मसीजी! गाँवकी पचायतको अब कोई पूछता है? रवाज है, हम लोग पाँच पन्च चुनकर रख देते हैं, लेकिन वह किसी काममे हाथ लगाने पाते हैं? सब जमींदार और उसके अमला—फैला करते हैं। झगड़ा हो तो मुद्दई-मुद्दालेह दोनों ओरसे डाँड़ (जुर्माना) लेते हैं। पन्द्रह वर्ष भी तो नहीं बीता सोबरन राउत! कभी मर्द-औरतके झगड़ेमें भैंस नीलाम होते देखा?"

सोबरन—"अरे, उस वक्त तो सब कुछ पंचायतके हाथमें था। गाँवके पच किसी घरको उजड़ने देते, वह खून तकमें सुलह-सराकत करा देते थे, रेखा भगत! और बाँध-खाँड़ नहीं देख रहे हो? मालूम होता है, उनका कोई गर-गुसैयाँ नहीं है। जो पचायत चलती रहती, तो क्या कभी ऐसा होता?"

रेखा—"नहीं होता सोबरन राउत! अपने बाल बच्चेके मुँहमें ज़ाब कौन लगाता? पानी बेशी बरसे तो अब खाड साफ करके नहीं रखी है कि बेशी पानी निकल जाये, पानी कम बरसे तो बाँध नहीं है कि पानी रोककर रखे, जिसमे फसल सूखने न पाये।"

मुंशी—"पंचायतमें आग लगाकर कम्पनीने यह काम जमींदारको सौंप दिया।"

रेखा—"और जमींदार क्या करता है, हम उसे देख रहे हैं।"

मुंशी—"मैं भी जमींदारका नमक खाता हूँ, रेखा भगत! जानते हो मसरखके जमींदारका पटवारी हूँ। लेकिन यह अन्यायका धन है, अन्यायका जो खाता है, गल जाता है। मुझको देखो, सात बेटे थे, साँड़से होकर सब उफर पड़े", मुंशीजीकी आँखोंमें आँसू देखकर सबका दिल पसीज गया "उफर पड़े रेखा भगत! अब घरमें एक बाधी भी नहीं है पानी देनेके लिये, और मालिककी, जानते ही हो, छपराकी रंडीके पीछे क्या क्या गति हुई! इन्द्रिय कटकर गिर गई है, रेखा भगत! गिर गई है, यह जो दोनों बबुआको देख रहे हो, यह खवासके हैं।"

रेखा "मालिकोंमें अब यह बहुत चलने लगा है, मंसीजी!"

सोबरन—"खेत गया, गाँव गया, सात समुदर पारके डाकुओंने हमारे ऊपर घरके डकैतोंको ला बैठाया। पंचायत गई, और जो चार अच्छत उपजाते, वह भी आगम गया, और जो कभी ठीकसे बरसा-बुदी हुई चारदाना घर आया तो मालिक जमींदार, गोराहत—चौकी-दार, पटवारी-गुमाश्ता कितनेकी चोंथसे बचें।"

मुंशी—"पटवारीकी लूटको मैं मानता हूँ, सोबरन राउत! किन्तु, यह भी जानते हो न, पटवारीको जमींदार आठ आना महीना देता है। आठ आना महीनेमें बताओ, हमारे कायथोंकी जीभ भी नहीं भीग सकती है? क्या जमींदार यह बात जानते नहीं हैं?"

रेखा—"जानते हैं मंसी जी! सब देखते हैं, जमींदार अंधे नहीं हैं। राजा कम्पनी बहादुर डकैत है ही, उसने जमींदारको हमारे ऊपर नया बैठाया सो डकैत, और ज़मींदारने और छोटे-छोटे एक टोकरी डकैत हमारे शिर पर बैठा दिये। इसपर भी हम कैसे जीते हैं?"

सोबरन—"जीते हैं क्या देखा। अब पेट भर अन्न, तन पर कपड़ा रखनेवाला दयालपुरमें कोई दिखाई पड़ता है?"

मुंशी—"कम्पनीको क्या फिकर है सोबरन राउत! उसने माल-गुजारी बाध दी है, किस्तके दिन छपरा जा जमींदार तोड़ा डाल आते हैं। कम्पनीका दाम दाम चुकता हो जाता है, दयालपुरके किसान मरें चाहें जियें, जमींदार मार मारकर धुरें उड़ा देगा, यदि उसकी मालगुजारी न वेबाक करो—पाँच रुपया तुमसे लेता है एक रुपया कम्पनीको देता है, और चार रुपये अपने पेटमें डालता है, सोबरन राउत!"

रेखा—"हे भगवान्! तुम सो गये या उफर पड़े। तुम काहे नहीं नियाव करते ? हम तो हार गये।

सोबरन राउत—"हाँ, हार गये रेखा! सुना न है, बरई पर्गना वालोंने एका करके जमीदारको मालिक माननेसे इन्कार कर दिया था। उन्होंने छपरा जा कम्पनीके साहेबसे कहा—कि 'हमारी पचायत मालगुजारी चुकायेगी, हम जमींदारको नहीं मानेंगे। तो साहेबने जानते हो क्या जवाब दिया—'सूखा-बाढकी मालगुजारी भी दोगे? सूखा बाढ़में अपने ही बालबच्चोंका प्राण जिलाना मुश्किल है, उस फिरंगीको यह कहते दैव-राजाका भी डर नहीं मालूम हुआ। और वह भी उसने ऊपरी मनसे कहा था। रेखा! उसने पीछे कहा—' तुम लोग कंगले हो, जब तुम मालगुजारी नहीं दोगे, तो कम्पनी बहादुर तुम्हारा क्या लेगा? हम पैसेवाले इज्जतदार आदमीको जमींदार बनाते हैं, जिसे हमारी मालगुजारी बकाया रखनेमें उसे घरबार नीलाम होने, इज्जत जानेका डर हो।'

रेखा—"तभी तो चरक (कोढ़) फूटा रहता है, सारे देहमें इन फिरंगियोंके, बड़े निर्दयी होते हैं।"

सोबरन—"बरई वालोंको कोई चारा नहीं रहा, तो वह जान पर खेले। कम्पनी बहादुर होता, तो बहादुरकी तरह लड़ता, लड़नेवाले से लड़ता। बरईवालोंके पास पत्थरकला (बंदूक) था, कम्पनीवालोंके पास तोप थी। और कहाँ कहाँसे गोरी-काली पल्टन उतर आई थी। गाँवके गाँवको जला दिया, स्त्री बच्चोंको भी नहीं छोड़ा। बरईवाले क्या करते?"

मौला—"खेतीवारी तो इस तरह तबाह हुई, और जुलाहोंके मुँहमें भी जाब लगने लगा है, सोवरन राउत! अब कम्पनी बहादुर अपना कपड़ा विलाइतसे लाकर बेच रहा है।"

मुंशी—"हाँ, कल परका कता-बुना। देखो यह मेरी मिर्जई उसीकी है, सोवरन राउत! इतना सस्ता चर्खे-कर्घेका कपड़ा नहीं मिलता, इसीलिये इज़्ज़तके लिये लेना पड़ता है। इज़्ज़तका ख्याल है, रेखा भगत! मुस्कुराते क्यों हो सर्कार-दर्बारमे जाकर जाजिम पर बैठना हो, तब न मालूम हो।"

रेखा—"तुम्हारी इज़्ज़तके लिये नहीं हँस रहा था, मसी जी। हँस रहा था, कम्पनी बहादुर राज भी करता है, और व्यापार भी। ऐसा भी राज।"

भोला पडित—"सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके भी पाँच हजार वर्ष बीत गये। इतने कालमे ऐसा राज तो नहीं सुना था।"

मुशी—"नाजिमके दर्बारके एक मुंशीने कम्पनीको फिरंगी डकैत बतलाया था, भोला पडित! और दूसरेने कहा था कि कम्पनी फिरंगी सौदागरोंकी जमात है, अपने देशसे वह सिर्फ व्यापारके लिये आई है। पहिले यहाँका माल वहाँ बेचती थी, अब उसने विल्लाइतमें बड़े-बड़े कारखाने खोल दिये हैं, जिसमें खुद माल तैयार कराता है, और खुद ही बेंचता है।"

मौला—"तो मालूम हुआ, अब कारीगरोंकी भी खैरियत नहीं।"

(२)

जाड़ोंकी गगा हरी होती है, और उसकी स्वभाविक गंभीर गति और गभीर हो जाती है। इस वक्त नावोंके मारे जानेका बहुत कम डर रहता है। इस लिये व्यापारी इसे व्यापारके लिये सुन्दर मौसिम मानते हैं। इस समय गंगाके किनारे चार घंटे बैठ जानेसे सैकड़ों बड़ी बड़ी नावें वहाँसे पार होती देखी जायेंगी, इनमेंसे अधिकाश पर कम्पनीका माल है, जिनमेंसे कितना ही विलायतसे आकर ऊपरकी ओर जा रहा

है। और पटना, गाजीपुर, मिर्जापुर जैसे तिजारती शहरोंके घाटों पर देखते, तो गंगाकी सारी धार बड़ी बड़ी नावोंसे ढँकी दिखाई पड़ती।

पटनासे एक बजरा (बड़ी नाव) नीचेकी ओर जा रहा था, जो शोरा, कालीन आदि कितनी ही चीजें विलायत ले जा रहा था। पटनासे कलकत्ता पहुँचने मे हफ़्तेसे ज्यादा लगता है, इसलिये तिनकौड़ी दे और कोलमैनमे धीरे धीरे घनिष्ठता बढ़ गई। यद्यपि शुरूमें एक दूसरेसे मिलनेमे वह हिचकिचाते थे। तिनकौड़ी दे के लिए नकली जुल्फी-चोटी (विग्) पाँवमे सटे सुत्थन घुंडीके फीतोंमें टंके बटन काले कोटके साथ चरका (सफेद) मुँह बड़े रोब और भयकी चीज़ थी; किन्तु, बातका प्रारम्भ कोलमैन हीने किया, इसलिये धीरे-धीरे तिनकौड़ीकी हिम्मत बढ़ चली। वार्तालापमें तिनकौड़ीको मालूम हुआ कि कोलमैन कम्पनीके साहिबोंसे जला-भुना है, और गवर्नरसे लेकर कम्पनीके छोटे बड़े एजंट तक पर भी प्रहार करनेमें उसको कोई हिचकिचाहट नहीं है। तिनकौड़ी भी कम्पनीके नौकरोंसे खार खाए हुआ था। बीस साल तक उसने कम्पनीके बड़े बड़े दफ़्तरोंमें किरानी (क्लर्क) का काम किया। वह गरीब घरमें पैदा हुआ था; किन्तु, उन आदमियोंमे था जिनका लोभ परिमित और आत्मसम्मानके आधीन होता है। तिनकौड़ीने जिन्दगी भरके खानेके लिये कमा लिया था, किसी पुराने एजटकी कृपासे लूटके वक्त उसे चौबीस पर्गना जिलामे चार गाँवोंकी जमींदारी मिल गई थी, जिसकी आमदनीके देखनेसे मालगुजारी बहुत कम थी। यह साहेबकी मेहरबानी थी, किन्तु, उस मेहरबानीके प्राप्त करनेके लिये तिनकौड़ीने ऐसा काम किया था, जिसका पाप, तिनकौड़ी समझता था, जन्मजन्मान्तरमे भी नहीं छूटेगा। उसने साहेबको खुश करनेके लिये गाँवकी एक सुन्दर तरुण ब्राह्मणीको उसके पास पहुँचाया था। साहेब लोग उस वक्त बहुत कम अपनी मेमोंको लाते थे क्योंकि छै महीनेके खतरोंसे भरी समुद्र-यात्रा करना आसान न था। तिनकौड़ीकी उम्र पैंतालीस वर्षकी थी, उसका काला गठीला बदन बहुत स्वस्थ था, किन्तु

वह रोज सबेरे उठकर दर्पणमें मुख देखता, और हाथकी अँगुलियोंको निहारता। वह किसी दिन भी कोढ़ फूटनेकी प्रतीक्षाकर रहा था, ब्राह्मणीके सतीत्व भंगका दंड, उसके विचारमें, यही होनेवाला था। साहेबोंकी झिड़कियों, गालियों, ठोकरोंको सहते सहते वह तंग आगया था, इसलिये अभी नौकरी करनेकी उम्र होने पर भी घर भरके मर जानेसे नौकरीसे इस्तीफा दे गाँवको लौट रहा था। बीस वर्ष तक चुपचाप बर्दाश्त किये अपमानकी आग उसके दिलमें भभक रही थी। जब उसने कोलमैनको अपनेसे भी ज्यादा कम्पनी और उसके कर्मचारियोंका शत्रु देखा; तो धीरे धीरे दोनों खुलकर बातें करने लगे। कोलमैन एक दिन कह रहा था—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारके लिये बनाई गई थी, किन्तु पीछे इसने लोगोंको लूटना शुरू किया। देखते नहीं, जितने साहेब यहाँ आते हैं, जल्दीसे जल्दी लखपती बनकर देश लौट जाना चाहते हैं। छोटे बड़ेकी यही हालत है! क्लाइवने ऐसा ही किया, लेकिन उसको किसीने नहीं पकड़ा। वारन हेस्टिंग्सको अपने लोभमें चेतसिंहकी रानियोंके भूखे मरने तकका भी ख्याल नहीं आया, अवधकी बेगमोंको उसने कंगाल बनाया; किन्तु, उसको हमारे देशवालोंने नहीं छोड़ा। सजासे तो बँच गया, किन्तु कई वर्षोंके मुकदमेमें जो कुछ कमाया था, चला गया।"

"किसने मुकदमा चलाया, साहेब?"

"पार्लामेंटने। हमारे यहाँ राजा मनमाना नहीं कर सकता, मनमानी करनेके लिये एक राजाकी गर्दनको हम कुल्हाड़ेसे काट चुके हैं, और वह कुल्हाड़ा अब भी रखा हुआ है। पार्लामेंट पंचायत है दे! जिसके अधिकाश लोगोंको देशके धनीमानी लोग चुनते हैं, और कुछ बड़े बड़े जमींदार खान्दानके कारण उसमें लिये जाते हैं।"

"जमींदार कितने दिनोंसे होते आये हैं साहेब!"

"हमारे यहाँकी देखादेखी हिन्दुस्तानमें जमींदारी कायम हुई है दे!

हमारे यहाँ वह कई सौ सालसे चली आती है, किन्तु वहाँ भी जबर्दस्ती खेतसे किसानोंकी मिल्कियत छीनी गई थी। जमींदारी कायम करनेवाले गवर्नरका नाम जानते हो ?"

"हाँ, कार्नवालिस्।"

'हाँ, विलायतमे वह एक नंबरका कसाई जमींदार है। उसने यहाँ आकर देखा, जबतक किसान खेतोंके मालिक रहेंगे, तबतक सूखा-बाढ़के कारण, अथवा ज्यादा झड़ी होनेके कारण मालगुजारी ठीकसे वसूल नहीं हो सकेगी। उसने यह भी सोचा कि सात समुद्र पारके अँग्रेजोंको बेगाने मुल्कमें दोस्त भी पैदा करना चाहिये, और ऐसा दोस्त, जिसका स्वार्थ अँग्रेजोंके स्वार्थसे बँधा हो। जमींदार अँग्रेजोंकी सृष्टि हैं। किसानके विद्रोहसे अँग्रेजोंके राज्यका जिस तरहका खतरा है, उसी तरह जमींदारोंको अपनी जमींदारी, अपनी सम्पत्ति और अपनी इज्ज़त जानेका खतरा है। इसलिये यदि छोटे छोटे किसानोंको मालिक न मानकर बड़े बड़े पचीस पचास गाँवोंका एक मालिक—जमींदार—बना दिया जाये, तो वह हमारी बिपत सपत् दोनोंमे काम आयेंगे। इस तरह विलायतके इस कसाई जमींदारने हिन्दके किसानोंकी गर्दनको रेत दिया।"

"रेत दिया इसमे शक नहीं"—तिनकौड़ीको अपनी जमींदारीके किसान याद आ रहे थे।

"जागीरदारोंके ज़ुल्मके मारे सारी दुनियाके लोग तबाह हैं, लेकिन इनके दिन भी इने गिने हैं दे।"

"कैसे, साहेब ?"

"फ्रांसके राजा-रानीको कुछ ही वर्ष पहिले प्रजाने जानसे मार डाला, और उस क्रोधाग्निमें कितने ही जागीरदार—जमींदार भी जलकर खाक हो गये। जमींदारी प्रथा उठा दी गई। लोगोंने मनुष्य मात्रके लिये स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृभावका सिद्धान्त घोषित किया। मै इंग्लैंड में था, उस वक्त, दे, और फ्रांसके राजाके महलों पर फ्रांसीसी प्रजातंत्रका तिरंगा झंडा फहराते मैंने खुद देखा है। इंग्लैंडके राजा,

जमींदार—जागीरदार आजकल थरथर काँप रहे हैं। और इग्लैंडमें भी फ्राँसवाली बात हुई होती, किन्तु एक और बातने उन्हें बचा दिया, मुझे इसका अफसोस है, दे!"

"किस बातने, साहेब?"

"देखते नहीं हो, विलायती कारखानोंका कितना माल हिन्दुस्तानकी बाजारोंमे पट रहा है? तुम्हारे यहाँके जुलाहे, सुतकत्तिनें बेकार हो रही हैं, और हमारे यहाँके सेठोंने अपने कारखाने खोलकर उनमे जमींदारोंके अत्याचारसे भूखों मरते लोगोंको काम दिया, जिनका बनाया माल यहाँ पहुँच रहा है। अभीतक हमारे यहाँ कल हाथसे चलती थी, किन्तु अब भापसे इंजन बन रहे हैं, जिनसे चलनेवाले कर्घो के कपड़े और सस्ते होते हैं। अपने यहाँके कारीगरोंको चौपट समझो चौपट। हमारे यहाँके कारीगर भी चौपट हो गये हैं, किन्तु अब उन्हें इन कारखानोंमे मजूरी करके पेट पालने भरको कुछ मिल जाता है। यदि यह कारखाने न खुले होते, तो फ्राँसकी दशा ही हमारे यहाँ भी हुई होती। आदमीको आदमीकी तरह रहना चाहिये दे! दूसरे आदमीको जो पशु मानता है, उसे स्वय भी और उसके बाल बच्चेको पशु बनना पड़ता है।"

'यह ठीक कहा साहेब! मै अपने दास, और नौकरका आदमी नहीं समझता रहा, किन्तु, जब वैसा ही बर्ताव साहेब लोग मुझसे करते, तो मुझे पता लगता कि आदमीके लिये अपमान कितनी कड़वी चीज है।"

"दासताके रवाजको उठानेके लिये विलायतमें बड़ा जोर दिया जा रहा है।"

"विलायतमे भी दासता मानी जाती है?"

'सारी दुनियामें अभागे नरनारियोंकी खरीद-बेच चल ;रही है, किन्तु, मुझे आशा है, विलायतमें जल्दी ही उनके खिलाफ कानून बन जायेगा।"

"फिर दासोंके मालिक धनी लोग क्या करेंगे?"

"धनी लोग तो नहीं चाहते थे, और हमारी पार्लामेंट पर धनिकोंका ही प्रभुत्व है, किन्तु अब उनमें भी कुछ इसे बुरा मानते हैं, आखिर आदमीकी खरीद-बेच कितनी बुरी चीज है दे! तुम खुद ही समझ सकते हो। किन्तु, कितने ही आदमी पाप-पुण्यके ख्यालसे दासता उठानेके पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि आजकल कारखानोंमें लोहेकी कलें काम करती हैं उनका दाम ज्यादा होता है, दास उनकी पर्वाह नहीं करेंगे। देखते न हो, बारीक काम दासोंको नहीं दिया जाता। जिसकी जिन्दगी-मौतसे तुम रातदिन खेल किया करते हो, वह तो मौका मिलते ही तुम्हारा भारी नुकसान करके बदला लेना चाहेगा।"

"माँ और बछियाको अलगकर बेचनेकी तरह जब मैं किसी दासीको अपने बच्चोंसे अलगकर बिकते देखता हूँ, तो मुझे यह बहुत असह्य मालूम होता है।"

"जिसे असह्य न मालूम हो वह आदमी नहीं है दे!"

"मैं सोच रहा था, फ्रांसमें बिना राजाका राज, क्या कहते हैं उसे साहेब?"

"प्रजातंत्र।"

"प्रजातंत्र क्या राजतंत्रसे अच्छा होता है?"

"प्रजातंत्र सबसे अच्छा राज्य है, दे! शाहों शाहजादों, बेगमों और शाहजादियोंके ऊपर देशकी कमाईका भारी भाग खर्च हो जाता है। पंचायती राज्यको उससे ज्यादा न्याय, ज्यादा पक्षपातहीनता, और सहानुभूति रहेगी।"

"हाँ, मैंने पहिले अपने गाँवके पचायती कारोबारको देखा था, उसमे सचमुच ज्यादा न्याय होता था, और खर्चमे आदमी उजड़ भी नहीं जाता था; किन्तु जबसे कार्नवालिसके जमींदारोंने आकर पंचायतको दबा दिया, तबसे लोग तबाह हैं।"

"यह ठीक है दे! किन्तु फ्रांसकी जनताका उद्देश्य प्रजातंत्रसे भी

ऊपर था, वह मनुष्यमात्रकी समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृभावका राज्य स्थापित करना चाहती थी।"

"हमारे देशके लिये भी!"

"तुम मनुष्य हो कि नहीं?"

"साहबोंकी नज़रमें तो हम मनुष्य नहीं जँचते।"

'जब तक समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृभावका शासन सारी पृथिवी पर, वह गोरे-काले सारे मनुष्यों में नहीं कायम होता, तब तक मनुष्य मनुष्य नहीं हो सकता है! कसाई कार्नवालिस् अपने गोरे किसानों को मनुष्य नहीं मानता। फ्रांसमें राजा, जमींदार तो गये, किन्तु, फिर बनियोंने—ईष्टइण्डिया कम्पनीके भाई बंदोंने—राज्य संभाल लिया, जिससे समानता, स्वतंत्रता-भ्रातृ भावका असली तिरंगा झंडा वहाँ नहीं फहरा सका।"

"तो फ्रांसमें राजा-बाबुओंकी जगह सेठोंका राज्य हो गया?"

"हाँ और इंग्लैंडके सेठ भी हल्ला कर रहे हैं, कि जब हम सात समुंदर पार हिन्दुस्तानका राज्य चला सकते हैं, तो इंग्लैंडमें क्यों नहीं कर सकते? इसलिये वह राज्य-शक्तिको अपने हाथमें लेना चाहते हैं, यद्यपि राजाको हटाकर नहीं।"

"राजाके हाथमें, आपने कहा, इंग्लैंडमें शासनकी बागडोर है ही नहीं।"

"हाँ, और मैने इन गोरे बनियोंकी करतूतें यहाँ देखीं। मुझे देश देखनेकी इच्छा थी, सुभीता देख मैंने कम्पनीकी नौकरी कर ली, नौकरी न करता, तो बनिये मुझ पर सन्देह करते, और फिर मेरा पर्यटन मुश्किल हो जाता, इसीलिये दो साल तक मै कम्पनीकी नौकरी रूपी नर्कमें रहा।"

"भलेमानुषके लिये नर्क है साहेब! यहाँ वही निर्वाह कर सकते हैं, जो सब पाप कमा, सारा अपमान सह धन जमा करनेके लिये तुले हुए हैं। कार्नवालिस्के किसी अनुचरकी कृपासे पापकी कमाई मुझे चार

गाँवोंकी जमींदारी मिली है, किन्तु, मुझे फल मिल चुका बीबी बच्चे सब हैजेमें मर गये। उस जमींदारीके नामसे दिल काँपता है। मैं भी आपकी रायसे सहमत हूँ, समानता-स्वतंत्रता-भ्रातृभावके राज्यसे ही पृथिवी स्वर्ग हो सकती है, मनुष्य अपमानसे बच सकता है।"

"लेकिन यह सहमत होने या चाहनेसे नहीं होगा दे! इसके लिये फ्रांसकी भाँति हजारोंको बलिदान होना होगा, और चुपचाप बलिदान होनेसे भी काम नहीं चलेगा। बलिदान तो हिन्दुस्तानी सिपाही लाखों की संख्यामें अंग्रेजोंके लिये भी होते रहे हैं; अब बलिदान अपने लिये होना होगा, और जानते सुनते।"

"जानते सुनते!"

"जानते सुनतेका मतलब है, हिन्दुस्तानियोंको दुनियाका ज्ञान होना चाहिये! साइंस मनुष्यके हाथमें भारी शक्ति दे रहा है। इसी साइंसके ज्ञानसे आदमीने बारूद और बन्दूक बना, अपनेको सबल किया। यही साइंस तुम्हारे नगरोंको बर्बाद कर इंग्लैंडमें नये कल-कारखानों और नये शहरोंको आबाद कर रहा है। उसी साइंसकी शरणमें तुम्हें भी जाना होगा।"

"और?"

"और हिन्दुस्तानकी छूआछूत, जात-पात, हिन्दू-मुस्लिमका अन्तर मिटाना होगा। देखते हो, हम किसीके हाथका खानेमें छूतछातकी ख्याल रखते हैं?"

"नहीं।"

"अंग्रेजके भीतर धनी गरीबके सिवा और छोटी बड़ी जात-पातका कुछ ख्याल है?"

"नहीं, और।"

"सती बन्द करना होगा, लाखों औरतोंको हर साल आगमें जलाना, इसे क्या तुम समझते हो भगवान् क्षमा कर देंगे?"

"कोलमैन और तिनकौड़ी दे जब कलकत्तामें अलग होने लगे, तो

उन्हें एक दूसरेसे बिछुड़नेका अफसोस हो रहा था। कोलमैनने आखिरमें कहा था—

"मित्र! हम उन्नीसवीं सदीमे दाखिल हो गये हैं। दुनियामें उथल पुथल हो रही है। हमे उस उथल-पुथलमे भाग लेना चाहिये, और इसके लिये पहिला काम है, छापाखाना और समाचारपत्र कायम कर जनताको विस्तृत दुनियाके हलचलका ज्ञान कराना।'

(३)

अबकी साल वर्षा नहीं हुई। जेठके सूखे ताल वैसे ही सूखे रह गये। भदई धान, रबी एक छटाँक भी नहीं हुई। घरके घर मर गये, या उजड़ कर भाग गये। धुरदेहका लंबा झील जब सूखा तो पचीसों कोसके लोग उसके सूखे पेटमे पड़े दिखाई पड़ते थे। वह लोग कमलकी जड़—भसींड-खोदनेके लिये आये थे, और कितनी ही बार उसके लिये आपसमे झगड़ा हो जाता था।

दूसरे साल जब वर्षा हुई, और मॅडुआ (रागी) की पहिली फसलमें रेखा हॅसुआ लगा रहा था, तो मंगरीको पास देखकर उसको अचरज होता था। इस साल भरके भीतर धरती उलटपुलट गई मालूम होती थी। घर घर में अधिकाश लोग मर गये थे, घर घरके लोग तितर-बितर हो गये थे। रेखाको अचरज इसलिये हो रहा था, कि कैसे वे दोनों प्राणियोंने प्राण शरीरको इकट्ठा रखते, अपने भी इकट्ठा रहें। रेखा इसके लिये धुरदेहका वहुत कृतज्ञ था।

और भी कभी वर्षाके अभावके कारण अकाल पड़ा होगा। किन्तु इतना कष्ट शायद कभी रेखाके पहिलेके किसानोंको भुगतना न पड़ा होगा। उस वक्त एक सरकार थी, जिसको भी लगान कम देना पड़ता था, अब कम्पनी सरकारके नीचे जमींदारोंकी जबर्दस्त सरकार थी, जिसके गोराइत-प्यादोंके मारे छान पर लौका भी नहीं बचने पाता था। हर फसलकी कमाई डेढ़ महीने भी खानेके लिये नहीं बचती थी, फिर अकालके लिये किसान क्या बचा रखते?

अगहनमें जब मंगरीने एक बेटा जना तो रेखाको और आश्चर्य हुआ। अपने पचास साल पर नहीं क्योंकि तीसरेकी स्त्री मंगरी तीस ही सालकी थी, और कई मरे बच्चोंकी मा रह चुकी थी बल्कि अकालमें जब पहिलेके हाड़-चामको बचाये रखना मुश्किल था, तब मंगरीने एक जीवको कैसे जिलाया। सूखा (अकाल) में पैदा होनेके कारण रेखाने लड़केका नाम सुखारी रखा।

माघके महीनेमें रामपुरके मालिक अपने हाथी घोड़े, सिपाही-प्यादे के साथ दयालपुर आये। रेखाने सुना था, कि मालिकके घर एक भी बबुआ-बबुई नहीं छीजे, अकालमें भी उनके यहाँ सात वर्षका पुराना चावल चल रहा था। दयालपुरमें मालिककी कचहरी गाँवके एक ओर पर थी। उसके सामने पचीस एकड़का आमोंका एक बाग लगाया जाता था, जिसके सींचने-खोदनेका काम दयालपुरवालोंको मुफ्त करना पड़ता था। मालिकने पचास-पचास अमोला एक एक घरके जिम्मे लगा दिया था, अमोला सूखने पर सवा रुपया डंड देना पड़ता। रेखाके आगे आने वाली पीढ़ी जमींदारी शानको सनातन चीज मानने जा रही थी, उसके लिये सोबरन राउत और रेखा भगतका बतलाया जमींदारीके पहिलेका जमाना तथा गाँवमें पंचायतोंका राज, कहानी होता जा रहा था। मालिक के प्यादे अकालके बाद और शोख हो गये थे। वह समझते थे, अकाल किसानोंके मनको तोड़ने तथा मालिकके दबदबेको बढ़ानेके लिये आया था। अगहनमें रेखाकी छान पर जब लौकीकी बेलमें बतिया लग रही थी, तभीसे मालिकके प्यादे मँडराने लगे थे। लोग कह रहे थे, अकालके बाद रेखा चिड़चिड़ा गये हैं, किन्तु, रेखाको ऐसी कोई बात नई मालूम होती थी। पर बात सच भी थी; वस्तुतः अकालके बाद गाँवके दूसरे लोग जितने परिमाणमें नीचे उतर गये थे, रेखा उनकी तुलनामें बहुत ऊपर थे, इसीलिये उनका व्यवहार चिड़चिड़ा जान पड़ता था। रेखा गोराइत-प्यादोंको छानके गिर्द मंडराते देख बहुत कुढ़ते थे, यद्यपि उन्होंने उसे वचनसे नहीं प्रकट किया। एक दिन

गोराइत दीवान जी (पटवारी) के लिये लौका तोड़नेके लिये उन पर चढ़ गया। उस वक्त रेखा भगत घरके भीतर सुखारीको गोदमें ले पुचकार रहे थे। छानके दबने और चरचरानेकी आवाज सुनाई देते ही रेखा सुखारीको चटाई पर रख बाहर चले गये। देखा गोराइत छत पर चढ़ा लौका तोड़ रहा है, तीन तोड़ चुका है, चौथे पर हाथ डालने जा रहा है। रेखाके शरीरमें आग लग गई। उन्होंने आधे गाँव तक सुनाई देती आवाजमें डाँटकर कहा—

"कौन है, हो!"

"दीवान जीके लिये लौका तोड़ रहे हैं, देख नहीं रहे हो।"—गोराइतने बिना शिर उठाये कहा।

रेखाने डपटकर कहा—"हाथ गोड़ बचाये चुपकेसे उतर आओ, सुनते हो कि नहीं?"

"मालिकके गोराइत (गाँवके चपरासी) का ख्याल है न?"

"खूब ख्याल है। भलमनसी इसीमें है, कि लौकाको वहीं छोड़कर उतर आओ।"

गोराइत चुपकेसे उतर आया। दीवानजी सब सुन खूनकी घूँट उस वक्त पी गये। उन्होंने माघ महीनेमें मालिकके आनेके वक्तके लिये इसे छोड़ रखा।

मालिकके आने पर वही गोराइत शामको रेखा भगतके घर पर आकर बोला—"कलसे सवेरे ही मालिकके लिये दो सेर दूध पहुँचाना होगा।"

"हमारे पास भैंस गाय नहीं है, दूध कहाँसे पहुँचायेंगे?"

"जहाँसे हो, मालिकका हुक्म है।"

दीवान तो जानता ही था, कि रेखा भगतके पास गाय भैंस नहीं है, किन्तु, उसे तो अब रेखाको ठीक करना था। शामको ही मालिकसे उसने रेखाकी सरकशीका खसरा खोल दिया, और यह भी कहा कि सारा गाँव बिगड़ता जा रहा है। मालिकने रातही को तैकर लिया।

सवेरे रेखाका दूध नहीं आया। प्यादाके जाने पर रेखाने गाय-भैंसके न होनेकी बातकी। मालिकने पाँच मुसंडे प्यादोंको हुक्म दिया—

"जाओ, हरामजादेकी औरतका दूध दुहकर लाओ।"

गाँवके कई आदमी वहाँ मौजूद थे, किन्तु उन्होंने यही समझा, कि प्यादा रेखाको पकड़कर लायेंगे। रेखाको बिना कुछ कहने सुननेका मौका दिये प्यादोंने पकड़कर मुश्कें बाँध ली। फिर दो घरमें घुस मँगरीको पकड़ लाये। बेबस रेखा खूनभरी आँखोंसे देख रहा था, जब कि उन्होंने चिल्लाती हुई मँगरीके स्तनको पकड़कर गिलासमें सचमुच कई धार दूधकी मारी प्यादे रेखाको वैसे ही बँधा छोड़ चले गये।

मँगरी शर्मके मारे नहीं मुँह छिपाये बैठी रही। रेखाने भूली हुई जबानको कुछ देरमें पाकर कहा—

"मंगरी मत लजा। आज हमारे गाँवकी पंचायत जिंदा रही होती, तो बादशाह भी ऐसा नहीं कर सकता था। किन्तु इस बेइज्जतीका मज़ा चखाऊँगा। यदि असल अहीरके बूँदका हुआ तो दीवान और रामपुरके मुर्गोंके कुलमें कोई रोनेवाला भी नहीं रहेगा। इस अपमान का न्याय यही मेरे हाथ करेंगे, मंगरी, आ मेरे हाथोंको छुड़ा।"

मंगराने सावन-भादों बनी आँखोंके साथ ही रेखाकी मुश्कोंको खोल दिया। उसने भीतर जा सुखारीको गोदमें लेकर उसके मुँहको चूमा, फिर मंगरीसे कहा—

"इस घरसे जो निकालना हो निकालकर तुरन्त नैहर चली जा, मैं इस घरमें आग लगा रहा हूँ।"

मंगरा रेखाकी आवाज पहिचानती थी। उसने बच्चे और दो तीन कपड़ोंको लिया फिर रेखाके पैरोंपर पड़ गई। रेखाने स्वरको अत्यन्त कोमल करके कहा—

"तेरी इज्जत, नहीं गाँवभरकी इज्जतका बदला लेना होगा। जा और सुखारीको बतलाना कि उसका बाप कैसा था। देर न कर, मैं चला बोरसीसे आग निकालने।"

भगरी दूर जा तब तक घरको देखती रही, जब तक कि उसकी छानसे ज्वाला नहीं निकलने लगी। लोग गाँवके छोर पर अवस्थित रेखाके घरकी ओर दौड़े और रेखा नंगी तलवार लिये जमींदारकी कचहरी की ओर। कालको देख प्यादे-गोराइत भाग चले। रेखाने मालिक और दीवानको मारते वक्त कहा—"तुम्हारे पीछे रोने वाला नहीं छोड़ूँगा पापियो!"

रेखाने अपने वचन को सच किया; और प्रतिज्ञासे और भी बड़े पैमाने पर, लम्बी उम्र तक जीता रहा।

कसाई कार्नवालिस्ने कितने रेखा पैदा किये!

१८—मंगल सिंह

काल—१८५७ ई०

(१)

वह दोनों आज टावर देखने गये थे। वहाँ उन्होंने उन कोठरियों-को देखा, जिनमें राजाके विरोधी जिन्दगी भर सड़ा करते थे। उन सिकंजो, कुल्हाड़ों तथा दूसरे हथियारोको देखा, जिनसे राजा साबित करते थे, कि जीवन-मरण उनके हाथमें है, और सही मानेमें वह पृथिवी पर ईश्वरके युवराज या यमराज हैं। लेकिन सबसे ज्यादा जिस चीजने उन्हें अकर्षित किया, वह था वह स्थान जहाँ इग्लैंडके राजा-रानियोंके शिर कटकर भूमि पर लुण्ठित हुए थे।

एनी रसलने आज भी उसके हाथमें अपने कोमल हाथोंको दे रखा था, किन्तु आज उनकी कोमलताका कुछ दूसरा ही असर उसके ऊपर पड़ रहा था। जान पड़ता था, फाराडेकी बिजली—जिसे ग्यारह साल ही पहिले (१८४५ ई०) उस वैज्ञानिकने आविष्कृत किया था—की भाँति एक शक्ति निकलकर एनीके हाथसे उसके शरीरमें दौड़ रही है। मंगल सिंहने कहा—

"एनी ! तुम बिजली उद्गम (बैटरी) हो, क्या ?"

"ऐसा क्यों कहा मंगी ?"

"मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ। सोलह साल पहिले जब इंग्लैंडकी भूमि पर मैने कदम रखा, तो जान पड़ा अंधेरेसे उजालेमें चला आया, मुझे यहाँ एक विशाल दुनिया—लंबाई चौड़ाई हीमें नहीं, बल्कि भविष्यके गर्भमें दूर तक बढ़ती दुनिया—दिखाई पड़ी। चुकंदरकी चीनी (१८०८ ई०), भापका जहाज स्टीमर (१८१६ ई०), रेलवे (१८२५ ई०), तार (१८३३ ई०), दियासलाई (१८३८ ई०), फोटो

(१८३९ ई०), बिजलीकी रोशनी (१८४४ ई०), देखनेके लिये नई और आश्चर्यजनक चीजे ही थीं, किन्तु, जब केम्ब्रिजमें मुझे उनके बारेमे पढने तथा रसायनशालामें प्रयोग कर देखनेका मौका मिला, तो मुझे समझमें आने लगा कि दुनियाके भविष्यमे क्या लिखा है।"

"सचमुच, तुम्हें इंग्लैंडमें आना अंधेरेसे उजालेमे आनासा मालूम हुआ?"

"उन्हीं अर्थोंमे, जिन्हें अभी मैंने बतलाया, नहीं तो भारत छोड़ते वक्त मेरे मनमें सिर्फ दो ख्याल थे—एक तो अपने प्रिय इष्ट देवता प्रभु मसीहके भक्तोंके देशको देखूँगा, दूसरे अपने कुलकी खोई राजलक्ष्मी-को लौटानेकी कोशिश करूँगा।"

"कितनी ही बार मैंने चाहा, तुमसे तुम्हारे बारेमे पूछूँ, लेकिन बातें ऐसे ही भूल गईं, आज मगी! उसे कहो।"

"जिसने मेरे जीवनकी दिशा बदल दी, उससे कहनेमे मुझे क्या उज्र होगा। चलो प्यारी एनी! टेम्सके इस शान्त सैत पर। टेम्स उतनी बड़ी, उतनी सुन्दर नहीं है; जितनी हमारी गंगा, तो भी कितनी ही बार जब मैं टेम्सको देखता हूँ, तो गंगाकी मधुर स्मृति आजाती है। एनी! तुम जानती हो, ईसाई ईश्वर ईसामसीहको छोड़ बाकी सारी पूजाओंको कुफ्र समझते हैं, और घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, किन्तु टेम्सने ईसाईसे एक बार फिर मुझे काफिर बनाया। मैंने अपनी हिन्दू काफिर माँ को बड़ी भक्तिसे फूल चढ़ा गंगाको प्रणाम करते देखा।"

अब दोनों टेम्सके किनारे पहुँच गये थे। उन्होंने पत्थरके एक चबूतरे पर आसीन हो टेम्सकी ओर मुँहकर लिया। कनटोप जैसी सफेद टोपीसे निकलकर गालोंपर लटकती ऐनीकी सुनहली जुल्फे हवाके झोंकेसे लहरा उठीं। मंगलने उन्हे चूमलिया, फिर अपनी बात प्रारम्भ की—

"इस टेम्सके किनारेसे कितनी ही बार मैंने मानस फूल अपनी गंगाको अर्पित किये।"

"गंगाको फूल चढ़ाती थी तुम्हारी माँ ?"

"बड़े भक्तिभावसे, जैसे ईसाई प्रभुमसीहके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। मैं उस वक्त पहिले-पहिल ईसाई हुआ था, मुझे यह घृणित प्रथा मालूम होती थी, किन्तु अब न जाने कितनी बार मै गंगाके प्रति अपने मानस अपमानके लिये पश्चात्ताप कर चुका हूँ।"

"ईसाइयतने जिस भावनाको नष्ट करना चाहा, हमारे कवियोंने उसे फिरसे उज्जीवित किया। जानते हो न हम लोग इसे पिता टेम्स कहते हैं।"

"और हम गंगा माई।"

"तुम्हारी कल्पना और मधुर है मंगी ? अच्छा सुनाओ अपने बारेमें।"

"बनारस और रामनगर गंगाके इस पार उस पार थोड़ी दूरपर बसे हैं। मैंने सोलहवर्ष तक गंगाको देखा। मेरा मकान बनारसमे गगाके बिल्कुल किनारे था, उसके नीचे साठ पौड़ियोंकी सीढ़ी गंगा तक चली गई थी। शायद जब मैंने आँख खोली, तभी माँने गोदमे ले गगाको मुझे दिखलाया। क्या जाने क्यों, जान पड़ता है, गगा मेरे खूनमें है। रामनगरमे मेरे दादाका किला है, किन्तु उसे मैंने एक-दो बार ही गंगा पर नावसे चलते वक्त देखा है। भीतर जाकर या अधिक बार देखनेकी इच्छा नहीं होती थी। माँ, तो और भी उधर नहीं जाना चाहती थीं। और जानती हो, एनी जो कभी उस किलेकी युवराज्ञी बनती, और आज अंग्रेजोंके डरके मारे बनारसके एक घरमे नाम बदलकर जिन्दगी काट रही हो, वह कैसे उस किलेको आँख खोलकर देखनेका साहस करती। मेरे दादा महाराज चेतसिंहको लुटेरे वारन् हेस्टिंग्जने नाहक पामाल किया—हेस्टिंग्ज्को इंगलैंडमें अपने कियेका कुछ फल मिला, किन्तु मेरे दादाके साथ कभी न्याय नहीं किया गया। छीने राजको लौटाना सस्ता न्याय नहीं था, एनी !"

"तुम्हारी माँ अब भी जिन्दा हैं !"

"हमारे पादरीकी चिट्ठी बनारससे जब तब आती रहती है और उसके जरिये मैं भी माँको पत्र लिखा करता हूँ। पाँच महीने पहिले तक तो वह जीवित थी एनी !"

"तो तुम पहिले ईसाई न थे ?"

"नहीं मेरी माँ अब भी हिन्दू हैं। मैंने पहिले चाहा था, उसे भी ईसाई बनाना, किन्तु अब—"

"अब तो तुम भी माँके साथ गंगामाईको फूल चढ़ा प्रणाम करोगे ?"

"और पादरी साहेब कहेंगे इसने ईसाई धर्म छोड़ दिया।"

"तुम ईसाई कैसे हुए ?"

"कोई खास अन्तःप्रेरणाका सवाल न था, बनारसमें भी अंग्रेज पादरी और पादरिनें ईसाई धर्मका प्रचार करती हैं, किन्तु बनारस स्वयं हिन्दुओंका रोम है, इसलिये उन्हें उतनी सफलता नहीं होती। एक-बार एक डाक्टर पादरीने मेरी माँका इलाज किया था, जिसके बाद उनकी स्त्री मेरे घरमें आने-जाने लगीं। मेरी माँ और उनमें परिचय ज्यादा बढ़ गया। मैं छोटा था, और मुझे वह अक्सर गोद लिया करती—"

"तुम लड़कपनमें भी बड़े सुन्दर रहे होगे, मंगी! कौन तुम्हें गोदमे लेना न चाहता ?"

"फिर उसी पादरिनने माँको समझाया, कि बच्चेको अंग्रेजी पढ़ाओ। पाँच छै ही वर्षसे पादरीने मुझे अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। माँ अपने परिवारके अतीतके वैभवके बारेमें सोच रही थीं, और वह मनही मन आशा रखती थीं, कि शायद अंग्रेजी पढ़ कर मेरा बेटा वंशकी लक्ष्मी लौटानेके लिये कुछ कर सके। मैं तीन वर्षका था, तभी मेरे पिता मर गये थे, इसलिये माता हीको सब कुछ करना था। हमारी सम्पत्ति तो राज्यके साथ चली गई थी, किन्तु माँके पास अपनी सासके दिये काफी जेवर थे, और मेरे मामा भी अपनी बहिनका ख्याल रखते थे। आठ वर्षका होनेके बाद मैं ज्यादा पादरी और पादरिनके घरपर

रहता। मुझे हिन्दू धर्मके बारेमें बहुत कम सुननेका मौका मिला, यदि कुछ मिला, तो पादरिनके मुखसे। वह कहा करती थीं, कि तुम्हाराही भाग्य है बेटा! जो तुम्हारी माँ बच गई, नहीं तो तुम्हारे बापके मरनेके बाद उन्हें लोग जिन्दा जलाकर सतीकर डालना चाहते थे। मेरी माँका जिन्दा जलाया जाना—सती—और हिन्दू धर्मको एक समझकर तुम्हीं समझ सकती हो एनी! ऐसे धर्मके लिये अपार घृणाके सिवा मेरे दिलमें और क्या हो सकती थी! उस वक्त सती प्रथा बन्द होने (१८२९ ई०) में दो सालकी देर थी। मेरी भलाईका ख्याल कर माँने पादरिनकी बात मान ली, और मुझे पढ़नेके लिये कलकत्ता भेज दिया। कलकत्तामें जब मै पढ़ रहा था, तब माँको सन्देह हुआ कि पादरिनने मुझे ईसाई बनानेके लिये, यह सब कुछ किया है। अच्छा हुआ, जो माँको पहिले न मालूम हुआ, नहीं तो मुझे अपनी आँखे खोलनेका मौका न मिला होता।"

"बच्चोंकी पढ़ाईका क्या भारतमें ख्याल नहीं किया जाता?"

"मुझे पढ़ाया जाता, किन्तु तेरह सौ वर्ष पहिलेके लिये जो विद्या लाभदायक होती, वही।"

"फिर इंगलैंड आनेके लिये माँकी आज्ञा कैसे मिली?"

"आज्ञा मिलती? मैं बिना पूछे चला आया। पादरीने मददकी। केम्ब्रिजमें पढ़नेका इन्तिजाम कर दिया। यहाँसे मैंने जब कुशल आनन्दका सामाचार माँको लिखा तो उसने आशीर्वाद भेजा। वह पचपनसे ऊपर हो गई मालूम होती है, किन्तु हर चिट्ठीमें चले आनेके लिये लिखती है।"

"और तुम क्या जवाब देते हो?"

"जवाब क्या बहाना। वह समझती है, मैं राजधानीमें हूँ, इग्लैंडकी रानीसे मेरी मुलाकात है, और किसी वक्त मैं चेतसिंहकी गद्दीका मालिक होकर लौटूंगा।"

"उस बेचारी गंगाकी पुजारिनको क्या मालूम कि तुम्हारी मुलाकात

रानी विक्टोरियासे नहीं बल्कि सारी दुनियाके मुकुटधारी शिरोंके भयंकर शत्रुओं कार्लमार्क्स और फ्रेड्रिख् एन्जेल्ससे है।"

"अभी जब भारत पूंजीवादी दुनिया, और उसकी शक्तिका ही ज्ञान नहीं रखता, तो वह मार्क्सके साम्यवादको कैसे समझ पायेगा?"

"मार्क्ससे कभी भारतके बारेमें भी तुमसे बात-चीत हुई?"

"कितनी ही बार और मुझे आश्चर्य होता है, यहाँ बैठे बैठे कैसे उसको भारतके जीवन-प्रवाहका इतना ज्ञान है! लेकिन यह कोई जादूका चमत्कार नहीं है। यहीं लंदनमें पिछले तीन सौ वर्षोंमें भिन्न-भिन्न अंग्रेजोंने भारतके बारेमें जितना ज्ञान अर्जनकर लिपिबद्ध किया, वह सब मौजूद है। मार्क्सने उन गर्द-पड़ी पोथियोंको बड़े ध्यानसे उलटा है, और जो कोई भी भारतीय यहाँ मिल जाता है, उससे पूछ पूछकर वह अपने निर्णयकी परीक्षा करता है।"

"मार्क्सके भारतके भविष्यके बारेमें क्या विचार हैं?

'वह भारतके योद्धाओंकी वीरताकी बड़ी प्रशंसा करता, वह हमारे दिमागकी दाद देता है; किन्तु हमारी पुराणपंथिताको भारतका सबसे बड़ा शत्रु समझता है, हमारे गाँव स्वयंधारी छोटे-छोटे प्रजातंत्र हैं।"

"प्रजातंत्र?"

"सारा देश नहीं। उसका एक जिला क्या दो गाँव मिलकर भी नहीं, सिर्फ एक अकेला गाँव। किन्तु, सभी जगह नहीं, जहाँ लार्ड कार्नवालिसने अंग्रेजी नकल पर जमींदारी कायम कर दी, वहाँका ग्रामप्रजातंत्र पहिले खतम हो गया। इस ग्रामप्रजातंत्रका संचालन जन-सम्मत पाँच या उससे अधिक पंच करते हैं। पुलीस, न्याय, आबपाशी, शिक्षा, धर्म आदि सभी विभागोंका वह संचालन करते हैं, और बहुत ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, न्याय और निर्भयताके साथ गाँवकी एक-एक अंगुली जमीन या छोटेसे छोटे आदमी इज्जतकी रक्षाके लिये अपनी पंचायतके हुक्म पर गाँवका बड़ा या बच्चा हर वक्त जानेके लिये तैयार रहता है। मुसलमान शासकोंने पहिले पहिल—जब कि उनका राज दिल्लीके आस-

पास थोड़ी दूर ही तक था, और वह अपनेको मुसाफिर समझते थे,—पंचायतोंको नुकसान पहुँचाना चाहा था, किन्तु पीछे उन्होंने पंचायतोंके स्वायत्तशासनको मंजूर किया। यह अंग्रेज शासक, और उसमें भी खास कर इंग्लैंडका जमींदार कार्नवालिस् ही था, जिसने ग्राम-प्रजातंत्रको बर्बाद करनेका बीड़ा उठाया, और कितने ही अंश तक सफलता पाई, किन्तु उतनेसे शायद वह जल्दी न टूटती। ग्रामके प्रजातंत्र और उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता पर सबसे घातक प्रहार पड़ा है, मानचेस्टर लंकाशायर के कपड़े, शेफील्डकी लोहेकी चीजों, तथा इसी तरहके और कितने ही यहाँसे जानेवाले मालका! १० जुलाई १८२२ को कलकत्तामें पहिला भापसे चलनेवाला जहाज (स्टीमर) पानी पर उतारा गया। उसने साथ ही गाँवके आर्थिक प्रजातंत्रकी रही सही नींवको भी खतम कर दिया। हिन्दुस्तानके बारीक मलमलकी खान ढाका अब दो तिहाई वीरान है एनी! और गाँवोंके जुलाहोंकी हालत मत पूछो। जो भारतीय गाँव अपने लोहार, कुम्हार, जुलाहे, कतिनोंके कारण अपनेको स्वतंत्र समझता था, अब उसके ये कारीगर हाथ पर हाथ धरे बैठे भूखे मर रहे हैं, और उनके लिए लंकाशायर मानचेस्टर, बर्मिंघम, शेफील्ड माल भेज रहे हैं। सिर्फ कपड़ेको लेलो, १८१४ ई० में बृटेनको भारतसे १८, ६६, ६०८ थान कपड़ा आया था, और १८३५ ई० में ३, ७ ६, ०८६ थान। इन्हीं दोनों सालोंमें हमारे यहाँ ८,१८,२०८५,१७,७७, २७७ गज बिलायती कपड़ेका जाना बढ़ गया। अब ढाकाके मलमलको तैयार करनेवाला भारत अपनी रुईको बिलायत भेज कपड़ा बनवा रहा है। और कितना?—हालहीका आँकड़ा लेलो ई० १८४६६ में १०, ७५, ३०६ पौंडकी रुई यहाँ आई।

"कितनी क्रूरता, कितना अत्याचार!"

"किन्तु, मेरे गुरु कहते हैं, हमारा दिल रोता है, विदेशियोंके इस अत्याचारके लिये, किन्तु हमारी बुद्धि खुश होती है, इस पुराणपंथी गढ़के पतनसे।"

"तब दोनोंका दो रास्ता होगा ?"

"दोनोंका दो रास्ता होता ही है एनी ! माँ कितनी पीड़ा अनुभव करती है प्रसवके वक्त, किन्तु साथ ही वह सन्तानकी प्राप्तिका आनंद भी अनुभव करती है—बिना ध्वसके रचना नहीं हो सकती। इन छोटे-छोटे प्रजातंत्रोंको तोड़े बिना एक शक्तिशाली बड़े प्रजातंत्रकी नींव नहीं रखी जा सकती। जब तक भारतीयोंकी भक्ति केवल उनके ग्राम-प्रजातंत्र तक सीमित है, तबतक बड़ी देश-भक्ति—सारे भारतके लिये आत्म-त्याग—को वह नहीं प्राप्त कर सकते। अभी अंग्रेज सिर्फ जहाज, रेल, तार जैसे अपने व्यापारके सुभीतेवाले यंत्रोंको ही भारतमें फैला रहे हैं;-किन्तु मार्क्सका कहना ठीक है—जब रेलोंके बनाने और मरम्मतके लिये अंग्रेज पूंजीपति भारतीय कोयले लोहेका इस्तेमाल करनेके लिये मजबूर हैं, तो कितने दिनों तक वहीं सस्तेमें इन सामानोंको तैयार करने से वह परहेज करेंगे ? भारतीय दिमाग़ भी साइसके इन चमत्कारोंको अपने सामने देखते हुए कबतक सोया रहेगा ?'

"अर्थात्—भारतमें भी उद्योगधंदा और पूंजीवादका फैलना लाजिमी है।"

"जरूर। अब इंगलैंडमे सामन्तवादी जमींदारोंकी प्रभुता नही है, एनी।"

"हाँ, सुधार कानून (१८३२) ने इंगलैंडके शासनकी बागडोर पूंजीपतियोंके हाथमे दे दी है !"

"या पूंजीपतियोंके शासनारूढ़ होनेकी सूचना है, वह कानून।"

"तुम्हीं ठीक कह रही हो। चार्टिस्टोंकी सभाओं और पत्रोंने तुम पर असर किया है, एनी ?"

"सभाओंके वक्त तो मुझे उतना होश न था, कुछ धूमिल सी स्मृति है। हाँ, चाचा रसल—जानते हो मंत्रिमडलमें वह चार्टिस्टोंके जबर्दस्त दुश्मन थे—के मुँहसे मैने कितनी ही बार इस खतरनाक आन्दोलनकी बात सुनी है।"

"एनी ! क्या पह बात करते वक्त वैसेही बहादुर वक्ताके रूपमें दिखलाई पड़ते थे, जितना कि वह बारह-बारह लाख जनताके हस्ताक्षरों से पेशकी गई कमकरोंकी साधारण मांगोंको पार्लामेंटमें ठुकराते वक्त मालूम पड़ते थे।"

"नहीं, प्रिय ! यह सब भी डरते हैं यद्यपि प्रभुमसीहके इस १८५६ वे सालमें चार्टरवाद सुनाई नहीं दे रहा।"

"क्यों नही डरेंगे, एनी सामन्तोंके राज्यको पूंजीपति ही बनियोंने जैसे खतमकर अपना शासन शुरू किया, वैसेही मजदूर भी इस थैलीका राज्य-खत्म करके ही छोड़ेंगे, और मानवताका राज्य कायम ही करेंगे, जिसमें धनी-गरीब, बड़े-छोटे, काले-गोरेका भेदभाव उठ जायगा—"

"और स्त्री-पुरुषका भी मंगी ?"

"हां, स्त्रियां भी पुरुषोंकी जुल्मोंकी मारी हैं। हमारे यहांका सामन्तवाद तो अभी हाल तक सतीके नाम पर लाखों औरतोंको हर साल जलाता रहा है, और अब भी जिस तरह पर्देमे जकड़बंद जायदादके अधिकारसे वंचित हो वह पुरुषोंके जुल्मको सह रही हैं, वह मानवता के लिये कलंक है।"

"हमारे यहांकी स्त्रियोंको तुम स्वतंत्र समझते होगे, क्योंकि हमें पर्देमें बंद नहीं किया जाता ?—"

"स्वतंत्र नहीं कहता एनी ! सिर्फ यही कहता हूं, कि तुम अपनी भारतीय बहिनोंसे बेहतर अवस्थामें हो।"

"गुलामीमें बेहतर और बदतर क्या होता है मंगी ! हमारे लिये पार्लामेंटमे वोटका भी अधिकार नहीं। बड़े-बड़े शिक्षालयोंकी देहली के भीतर हम पैर नहीं रख सकतीं। हम कमरको कसकर मुट्ठी भरकी बना, साठ गजके घांघरेको जमीनमें सोहराते सिर्फ पुरुषोंके वास्ते तितली बननेके लिये हैं। अच्छा तो मार्क्सने यह आशा दिलाई कि भारतमें उद्योग-धंधे और पूजीवादका प्रसार होगा जिसके कारण एक ओर लोगों में साहसका अधिकाधिक प्रचार और प्रयोग होगा, दूसरी ओर वहाँ

भी गाँवोंमें बिखरे, बेकार किसानों और कारीगरोंको कारखानेमें इकट्ठा किया जायेगा। फिर वह अपनी मजदूर सभायें कायम कर लड़ना सीखेंगे, और फिर साम्यवादका झंडा ले इंगलैंडके मजदूरोंके साथ कंधे-से-कंधा मिला मानवस्वतन्त्रताकी अपनी लड़ाई लड़ेंगे, और दुनियाको पूंजीपतियोंकी गुलामीसे मुक्त कर समानता स्वतन्त्रता, और भ्रातृभावका राज्य स्थापित करेंगे। किन्तु यह तो सैकड़ों सालकी बात है मंगी!"

"साथ ही मार्क्सका कहना है, कि यद्यपि अंग्रेजोंने साइंसकी देन—कल कारखानोंसे भारतको वंचित रखा है, किन्तु साथ ही साइंसकी दूसरी देन युद्धके हथियारोंसे भारतीय सैनिकोंको हथियारबंद किया है। यही भारतीय सैनिक भारतकी स्वतंत्रताको लौटानेमें भारी सहायक साबित होंगे।

"क्या यह नजदीकका समय हो सकता है।"

"नज़दीक नहीं एनी! वह समय आ गया है। अखबारोंमे पढ़ा न, सात फर्वरी (१८५६ ई०) अवधको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया!"

"हाँ, और बेईमानीसे"

"बेईमानी और ईमानदारी पर हमें बहस नही करनी है। अंग्रेज व्यापारियोंने सब कुछ अपने स्वार्थके लिये किया किन्तु अनजाने भी उन्होंने हमारी भलाईके कितने ही ठोस काम किये हैं। उन्होंने ग्राम-प्रजातंत्रोंको तोड़ विस्तृत देशको हमारे सामने रखा, उन्होंने अपने रेलों, तारों, जहाजोंसे हमारी कूपमंडूकताको तोड़ विशाल जगत्के साथ हमारा नाता स्थापित किया। अवधका दखल करना कुछ रंग लायेगा, और मैं इसीकी प्रतीक्षा करता था, एनी!"

"मार्क्सके शिष्यसे और क्या आशाकी जा सकती है!"

(२)

गंगाका प्रशान्त तट फिर अशान्त होना चाहता है। विठूरके विशाल महलमें पेशवाका उत्तराधिकारी तख्त ही नहीं पेंशनसे वंचित

नाना (छोटा) अवधके अंग्रेजोंके ताजा शिकार होनेके वक्तसे ही ज्यादा सक्रिय हो गया है। उसके आदमी अपने जैसे दूसरे पदच्युत सामन्तोंके पास रातदिन दौड़ लगा रहे हैं। उसके सौभाग्यसे अंग्रेज एक और गलती कर बैठे और वह गलती नहीं बल्कि नित नये होनेवाले जगत्‌मे जीनेका काम था—उन्होंने पहिलेकी टोपी-गोलीवाली बन्दूकोंकी जगह उनसे ज्यादा जोरदार कार्तूसी बंदूकोंको अपनी फौजोंमे बाँटा। इन कार्तूसोंको भरतें वक्त दाँतसे काटना पड़ता है। अंग्रेजोंके दूरदर्शी दुश्मनोंने इसमे फायदा उठाया। उन्होंने हल्ला किया कि कार्तूसोंमें गाय-सूअरकी चर्बी है, जान-बूझकर अंग्रेज इन कार्तूसोंको सिपाहियोंको दाँतसे काटनेके लिये दे रहे हैं, जिसमे कि हिन्दुस्तानसे हिन्दू-मुसल्मानका धर्म उठ जाये, और सब कृस्तान बन जाये।

काशिराज चेतसिंहके पौत्र मंगलसिंहका नाम बिजलीकी भाँति सैनिकोंमें काम करता, यह मंगलसिंह जानता था; किन्तु उसने कभी इस रहस्यको खुलने नहीं दिया। नाना और दूसरे विद्रोही नेता उसके बारेमें इतनाही जानते थे, कि वह अंग्रेजी शासनका जबर्दस्त दुश्मन है, उसने विलायतमें जाकर अंग्रेजोंकी विद्या खूब पढ़ी हैं, उनकी राजनीतिका अच्छा जानकार है। विलायतमें रहनेके कारण उसका धर्म चला गया है, यद्यपि वह कृस्तानी धर्मको नहीं मानता।

मंगलसिंहको विद्रोही नेताओंके हार्दिक भावोंको समझनेमें देर नहीं हुई। उसने देखा कि पदच्युत सामन्त अपने अपने अधिकारको फिरसे प्राप्त करना चाहते हैं, और इसके लिये सबके अकेले शत्रु-अंग्रेजोंको एक होकर देशसे निकाल बाहर करना चाहते हैं। उनके लिये जान देनेवाले सिपाही उनकी नजरमें शतरंजके मुहरोंसे बढकर कोई हैसियत नहीं रखते थे। सिपाही धर्म जानेके डरसे उत्तेजित हुए हैं, और शायद कार्तूसकी चर्बीको मुँहसे काटनेसे बचा दिये गये होते, तो कम्पनी बहादुरकी जयजयकार वह अनन्तकाल तक मनाते, उसके लिये अपनी गर्दनोंको कटाते रहते। और हिन्दू-मुसलमानके बीचकी

खाई ? वह तो बिल्कुल नहीं कम हुई, बल्कि, यदि विद्रोह सफल हुआ, तो धर्मके नाम पर उभाड़े निरक्षर सिपाही अल्लाह और भगवान्के कृपापात्र बननेके लिये अपनेको और भी ज्यादा कट्टर धार्मिक साबित करनेकी कोशिश करते। इसके अतिरिक्त यदि दूसरा कोई ख्याल उनके दिलोंमे काम कर रहा था, तो वह था, गाँवों नगरोंको लूटना। यद्यपि इस दोषके भागी सिपाहियोंकी थोड़ी सख्या थी, और शायद कम ही जगहोंमें उन्होंने इसे किया भी; किन्तु हल्ला इतना हो गया था, कि ग्रामीण जनताके ऊपर उनका डाकुओं जैसा आतंक छाया हुआ था। देशकी मुक्तिदात्री सेनाके प्रति यह ख्याल अच्छा नहीं था। पहिले इन बातोंको जानकर मगलसिंहको निराशा हुई। वह चेतसिंहके सिंहासनको पानेके लिये नहीं लड़ने आया था, वह आया था समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभावके शासनको स्थापित करने, जिसमें जात-पाँत, हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव भी वैसा ही अवाञ्छनीय था, जैसा कि अँग्रेज पूँजीपतियोंका शासन। वह कूपमण्डूकताकी रक्षाके लिये नहीं आया था, बल्कि आया था, भारतकी सदियोंकी दीवारोंको तोड़कर उसे विश्वका अभिन्न अंग बनाने। वह आया था, अंग्रेज पूँजीपतियोंके शोषण और शासनको उठा, भारतकी जनताको स्वतन्त्र हो दुनियाके दूसरे देशोंकी जनताके साथ भ्रातृभाव स्थापितकर एक बेहतर दुनियाके निर्माणमे नियुक्त कराने। वह कारतूसकी चर्बीके झूठे प्रचारको कभी पसद नहीं कर सकता था, और न यही कि उसके द्वारा भारतमे मजहब अपनी जड़ोंको फिर मजबूत करे। नाना और दूसरे विद्रोही नेता स्वयं बढ़ियासे बढ़िया विलायती शराबे उड़ाते थे, और मौका मिलने पर मद्य और शूकर-मास भक्षण करके आई गौराग सुन्दरियोंके जूठे ओठोंको चूसनेके लिये तैयार थे, किन्तु इस वक्त वह धर्मरक्षाके लिये सिपाहियोंका नेतृत्व करना चाहते थे।

किन्तु, इन सब दोषोंके साथ जब एक बातपर मंगलसिंहने ख्याल किया, तो उसे अपने कर्त्तव्यके निश्चयमें देर न लगी—भारत अँग्रेज

पूँजीपति शासकों तथा हिन्दुस्तानी सामन्तोंकी दुहरी गुलामीमें पिस रहा है, जिनमें सबसे मजबूत और सबसे चतुर है, अंग्रेजोंका शासन। उसके हटा देने पर सिर्फ स्वदेशी सामन्तोंसे भुगतना पड़ेगा जो कि भारतीय जनताके लिये अधिक आसान होगा।

जनवरीका महीना था। रातको काफी सर्दी पड़ती थी, यद्यपि वह लंदनके मुकाबिलेमें कुछ न थी। बिठूरमें चारों ओर सुनसान था, किन्तु पेशवाके महलके दरवान अपनी-अपनी जगहों पर मुस्तैद थे। उन्होंने अपने स्वामीके एक विश्वसनीय आदमीके साथ किसी अजनबीको महलके भीतर घुसते देखा, किन्तु, वह आजकल ऐसे अजनबियोंको हर रात महलके भीतर घुसते देखा करते थे।

मगलसिंहकी नानासे यह पहिली मुलाकात न थी, इसलिये वह एक दूसरेको भली प्रकार जानते थे। मगलसिंहने वहाँ अपने अतिरिक्त दिल्लीके पेंशनखोर बादशाह, अवधके नवाब, जगदीशपुरके कुँअरसिंह तथा दूसरे भी कितने ही सामन्तोंके दूतोंको उपस्थित पाया। लोगोंने बतलाया, कि बजबज (कलकत्ता) दानापुर, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मेरठ, आदि छावनियोंके सिपाहियोंमें विद्रोहकी भावना कहाँ तक फैल चुकी है। यह आश्चर्यकी बात थी, कि इतनी बड़ी शक्तिके मुकाबिलेके लिये अपनी कुछ भी फौज न रखते हुए वह सामन्त सिर्फ बागी पल्टनों पर सारी आशा लगाये हुए थे। और जहाँतक सैनिक विद्याका संबंध था, प्रायः सारे ही नेता उससे कोरे थे; तो भी वह जेनरलका पद स्वयं लेनेके लिये तैयार थे। नानाने बहुत आशाजनक स्वरमें कहा—

"भारतमें अंग्रेजोंका राज्य निर्भर है हिंदुस्तानी पलटनोंपर, और आज वह हमारे पास आ रही हैं।"

"लेकिन सभी हिन्दुस्तानी पल्टनें हमारे पास नहीं आरही हैं नाना साहेब! पंजाबी सिक्खोंके बिगड़नेकी अभी तक कोई खबर नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तानकी बाकी पल्टनोंने अंग्रेजोंकी ओरसे लड़कर जिस तरह

उनके पंजाबको पराजित किया, उसे स्मरण रखते हुए वह बदला लेना चाहेंगे। अँग्रेज बड़े होशियार हैं नाना साहेब! नहीं तो पेशवा और नवाब अवधकी भाँति यदि उन्होंने दलीपसिंहको भी भारतमें कहीं नजरबंद कर रखा होता, तो आज हमें सारी सिख पल्टनको अपनी ओर मिलानेमें बड़ी आसानी होती। खैर, हमें याद रखना चाहिये कि सिख, नेपाल और रियासतोंकी पल्टनें हमारे साथ नहीं हैं, और जो देशके युद्धमें हमारे साथ नहीं है, उन्हें हमें अपने विरुद्ध समझना चाहिये।"

"आपका कहना ठीक है। ठाकुर साहेब!" नानाने कहा "लेकिन यदि आरंभिक अवस्थामें हमने सफलता प्राप्तकी तो फिर किसी देश-द्रोहीको हमारे खिलाफ आनेकी हिम्मत न होगी।"

"एक बातका हमें और इन्तिजाम करना चाहिये। यह काम युद्ध छिड़ने पर करना होगा, किन्तु इसके लिये आदमियोंको अभीसे तैयार करना होगा। लोगोंको समझाना है, कि हम देशको स्वतंत्र करनेवाले सैनिक हैं।"

पूरबके प्रतिनिधिने कहा—"क्या इसके लिये हमारा अँग्रेजोंसे लोहा लेना काफी नहीं है?"

मंगलसिंह—"हर जगह चौबीसों घंटे लोहा नहीं बजता रहेगा। हमारे देशमें बहुतसे डरपोक या स्वार्थी लोग हैं, जिनको अँग्रेजोंकी अजयेता पर विश्वास है। वह तरह-तरहकी खबरें फैलायेंगे। मैं तो समझता हूँ पूरब, पच्छिम और मध्य तीन भागोंमें बाँटकर हमें हिंदी, उर्दूमें तीन अखबार छापने चाहिये।"

नाना साहब—"आपको अँग्रेजोंका ढंग ज्यादा पसन्द है ठाकुर साहब! किन्तु आपने देखा न कि बिना अखबारके हमने कार्तूसकी बातको फैलाकर कितना लोगोंको तैयार कर लिया।"

मंगलसिंह—"लेकिन लड़ाईके बीचमें हमारे खिलाफ अँग्रेजोंके नौकर-चाकर जो बातें फैलायेंगे, उसके लिए कुछ करना होगा नाना साहब! यह संभव नहीं है कि हम अँग्रेजोंके सारे शासन-यन्त्रको एक

ही दिन अपने अधिकारमें कर लें। मान लीजिये उन्होंने अफवाह फैलाई कि बागी फौज—स्मरण रखिये हमें इसी नामसे याद किया जायेगा—गाँव-शहरको लूटती, बाल-बच्चोंको काटती चली आ रही है।"

नाना साहब—"तो क्या लोग विश्वास कर लेंगे?"

मंगलसिंह—"जो बात बार-बार कही जायेगी, और जिसके खिलाफ दूसरी आवाज नहीं निकलेगी, उसपर लोग विश्वास करने लगेंगे।"

नाना साहब—"मैं समझता हूँ, हमने कारतूसको ले धर्म-द्रोही कहकर अँग्रेजोंको इतना बदनाम कर दिया है कि उनकी कोई बात नहीं चलेगी।"

मंगलसिंह—"मैं तो इसे सदाके लिये काफी नहीं समझता, खैर। एक बात और। हमारी इस लड़ाईको अँग्रेज सिर्फ बगावत कहकर दुनियामें प्रचार करेंगे, किन्तु दुनियामें हमारे दोस्त और अँग्रेजोंके बहुतसे दुश्मन भी हैं, जो हमारी स्वतन्त्रताकी कामना करेंगे—खासकर यूरोपियन जातियोंमें ऐसे कितने ही हैं। इसलिये हमें अपने युद्धको सारे यूरोपियन लोगोंके खिलाफ जहाद नहीं बनाना चाहिये, और न लड़नेवाले अँग्रेज बाल-वृद्ध-स्त्रियोंके ऊपर हाथ छोड़ना चाहिये। इससे युद्धमें हमें कोई लाभ न होगा, उलटे खामख्वाहके लिये हिन्दुस्तानी दुनियामें हमेशाके लिये बदनाम हो जायेंगे।"

नाना साहब—"यह तो सेनापतियोंके ख्याल करनेकी बात है, और मैं समझता हूँ किस वक्त क्या करना चाहिये, इसे वह खुद निश्चय कर सकते हैं।"

मंगलसिंह—"आखिरी बात यह कहनी है कि जिस युद्धके लड़नेमें सिपाही अपने प्राणोंकी बाजी लगा रहे हैं, और हम साधारण जनतासे भी सहायताकी आशा रखते हैं, उसे सिर्फ चर्बीवाले कारतूसोंके झगड़े पर आधारित नहीं होना चाहिये। हमें बतलाना चाहिये कि अँग्रेजोंको निकालकर हम किस तरहका राज्य चलाना चाहते हैं, उस राज्यमें

लड़नेवाले सिपाहियों, और जिन किसानोंमेंसे वह आये हैं, उन्हें क्या लाभ होगा।"

नाना साहब—"क्या धर्म-द्रोहियोंके शासनको उठा देना उनके सन्तोषके लिये पर्याप्त न होगा?"

"यह प्रश्न आपसे ही यदि पूछा जाये तो आप क्या जवाब देंगे? क्या आपके दिल में पेशवाकी राजधानी पूनामें लौटनेकी इच्छा नहीं है? क्या नवाबजादाके दिलमें लखनऊके तख्तका आकर्षण नहीं है? जब आप लोग कार्तूस और अँग्रेजोंके राज्यके निकालनेसे अधिककी इच्छा रखते हैं, जिसके लिये आप जानकी बाजी लगाने जा रहे हैं, तो मैं समझता हूँ, बेहतर होगा हम भी साधारण जनताके सामने उसके लाभकी भी कुछ बातें रखें।"

'जैसे?"

"हम गाँव-गाँवमें पंचायतोंको कायम करेंगे, जिसमें कम खर्चमें लोगोंको न्याय प्राप्त हो। हम सारे मुल्ककी एक पंचायत बनायेंगे जिसको गाँव-गाँवकी प्रजा चुनेगी, और जिसका हुक्म बादशाह पर भी चलेगा। हम जमींदारी-प्रथाको उठा देंगे, और किसान और सर्कारके बीच कोई दूसरा मालिक न रहेगा—जागीर जिसको मिलेगी, उसे सिर्फ सर्कारको मिलनेवाली मालगुजारीके पानेका हक होगा। हम कल-कारखानोंको बढ़ाकर अपने यहाँके सभी कारीगरोंको काम देंगे, और कोई बेकार नहीं रहने पायेगा। हम सिंचाईके लिये नहरें, तालाब और बाँध बनायेंगे, जिससे करोड़ों मजदूरोंको काम मिलेगा, देशमें कई गुना बेशी अनाज पैदा होगा और किसानोंके लिये बहुतसे नये खेत मिलेंगे।"

मंगलसिंहकी बातों पर किसीने गंभीरतापूर्वक विचार नहीं करना चाहा। सबने यह कहकर टाल दिया कि यह तख्तके हाथमें आनेके बादकी बात है।

चारपाईपर लेटनेपर बड़ी देर तक मंगलसिंहको नींद नहीं आई। वह सोच रहा था—यह साइंसका युग है। रेल, तार, स्टीमरके जादूको

यह खुद देख रहे हैं। दियासलाई, फोटोग्राफी और बिजलीके प्रकाशके युगमें हम घुस रहे हैं, किन्तु यह लोग पुराने युगके सपने देख रहे हैं। तो भी इस घोर अन्धकारमें एक बात उसे स्पष्ट मालूम होती थी। इस लड़ाईको सिर्फ जनताके बल पर ही जीता जायेगा, जिसके कारण जनता अपने बलको समझेगी। विलायती पूँजीपतियोंने जिस तरह विलायतके मजदूरोंकी शक्तिसे मदद ले अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको हटा उन्हें अँगूठा दिखा दिया, उसी तरह ये भारतीय सामन्त भी चाहे भारतीय जनता—सिपाहियों, किसानों—के साथ काम निकल जाने पर भले ही गद्दारी करें; किन्तु वह जनतासे उनके आत्मविश्वासको नहीं छीन सकते, और न बाहरी शत्रुओंसे बचनेके लिये साइंसके नये-नये आविष्कारोंको अपनानेसे इन्कार कर सकते। रेलोंकी पटरियाँ, तारके खम्भे, कलकत्ता में बनते भापके स्टीमर अब भारतसे विदा नहीं हो सकते। मंगलसिंहका विश्वास इन दकियानूसी सामन्तों पर नहीं, बल्कि पृथिवी पर मानवकी परिवर्तनकारिणी शक्ति, जनता पर था।

(३)

१० मई (१८५७ ई०) को मंगलसिंह मेरठके पास थे, जब सिपाहियोंने वहाँ विद्रोहका झंडा उठाया। बहादुरशाहके प्रतिनिधिके तौर पर उन्हें सिपाहियोंकी एक टुकड़ीको अपने प्रभावमें लानेका मौका मिला। सामन्त नेता मंगलसिंहकी योग्यताके कायल थे, किन्तु साथ ही यह भी समझते थे कि उसका उद्देश्य उनसे बिलकुल दूसरा है, इसीलिये मंगलसिंहको दिल्लीकी ओर न भेजकर उन्होंने पूरबकी ओर रवाना किया। कौन कह सकता है, मेरठसे पूरब और पश्चिमकी ओर फूटनेवाले इन रास्तोंने भारतके उस स्वातन्त्र्य युद्धके भाग्यमें पूरब-पश्चिमका अन्तर नहीं डाल दिया। दिल्लीकी ओर जानेवाली सेनाको मंगलसिंह जैसा नेता चाहिये था, जो कि दिल्लीकी प्रतिष्ठाको पूरी तौरसे विजयके लिये इस्तेमाल कर सकता।

मंगल सिंहकी टुकड़ीमें एक हजार सिपाही थे, जो विद्रोहके दिनसे

ही समझने लगे कि हम सभी जेनरल हैं। मंगलसिंहको एक हफ्ता लग गया इसे समझानेमें कि सिर्फ जेनरलोंकी फौज कभी जीत नहीं सकती। सेनामें मंगलसिंहको छोड़ उच्च सैनिक विद्याका जानकार दूसरा आदमी न था और यही बात सभी विद्रोही सेनाओंके बारेमें थी। मगलसिंहको एक जगह ठहरकर शिक्षा देनेका मौका न था, उस वक्त जरूरत थी, अधिकसे अधिक जिलोंमें अँगरेजोंकी शक्तिको तुरत खतम करनेकी।

गगापार हो रुहेलखंडमे दाखिल होते ही हर रातको मंगलसिंहने सिपाहियोंको नियमसे अपने राजनीतिक ध्येयको बतलाना शुरू किया। सिपाहियोंको समझनेमे कुछ देर लगी, उनके मनमें कितने ही सन्देह उठते थे, मगलसिंहने उनका समाधान किया। फिर मंगलसिंहने फ्रासकी दो क्रान्तियों (१७९२, १८४८) के इतिहासको सुनाया; यह भी बतलाया कि कैसे वेल्सके अँग्रेज मजदूरोंने हिन्दुस्तानमे शासन करनेवाले इन्हीं अँग्रेज बनियोंके खिलाफ तलवार उठाई, और बड़ी बहादुरीसे लड़े; उन्हें अपने संख्याबलसे बनिये दबा सके, किन्तु उनके जीते अधिकारोंको बनिये छीन नहीं सके।

समझकर लड़नेवाले इन सिपाहियोंका बर्ताव ही बिल्कुल बदल गया था। उनमेंसे हर एक आजादीकी लड़ाईका मिश्नरी था, जो गाँवों, कस्बों, शहरोंके लोगोंमें अपनी बात, अपने व्यवहारसे लोगोंके दिलोंमें विश्वास और सम्मान पैदा करता था। अँग्रेजी खजानोंके एक एक पैसेको ठीकसे खर्च करना, जरूरत होनेपर लोगोंसे कर उगाहना—किन्तु स्थानीय पंचायत कायमकर उसे तथा लोगोंको समझा उनकी मर्जी और क्षमताके अनुसार—,किसीभी चीजको बिना दामके न लेना, और मंगलसिंहका हर जगह हजारोंकी भीड़में लोगोंका समझाना—यह ऐसी बातें थी जिनका प्रभाव बहुत जल्द मालूम होने लगा। झुण्डके झुण्ड तरुण आजादीकी सेनामें भरती होनेके लिये आने लगे। मंगलसिंहने सैनिक कवायद-परेड ही नही गुप्तचर, रसदप्रबन्ध आदिकी शिक्षाका प्रबन्ध किया। हकीमों और वैद्योंकी टुकड़ी अपने साथ शामिल की।

सामन्तशाही लूट रिश्वतकी गन्दगीको दूर करनेके लिये शिक्षितोंमें देशभक्तिके भारी डोजकी जरूरत थी, और इस वक्त उसका देना आसान न था, तो भी जो दो दिन भी मंगलसिंहके साथ रह गया, वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। सिपाहियोंके बीच उनसे हँसकर बातचीत करते मंगलसिंहको देखकर कोई कह नहीं सकता था कि वह इतनी बड़ी पल्टन—आखिरी वक्त उसकी सेना दो हजार तक पहुँची थी—का जेनरल होगा। साथ ही उसके इशारे पर जान देनेके लिये पल्टनका एक एक जवान तैयार था। मंगलसिंहने सदा सिपाहियोंके चौकेकी रोटी खाई, सदा उनकी ही तरह कम्बल पर वह सोया, और खतरेके मुकाम पर सबसे आगे रहा। उसने बंदी अँग्रेज स्त्री-पुरुषोंको बहुत आरामसे रखा। उन्हें भी सेना-पतिकी भद्रताको देखकर आश्चर्य होता था, क्योंकि उस समयके युरोपमे भी कैदियोंके साथ इस तरहका बर्ताव नहीं देखा जाता था। मंगलसिंह रुहेलखंडके चार जिलोंमें गया, और उसने चारोंका बहुत सुन्दर प्रबंध किया।

नाना साहेबने ५ जून (१८५७ ई०) को अँग्रेजोंके खिलाफ तलवार उठाई, और डेढ़ महीना भी नहीं बीतने पाया कि १८ जुलाईको उसे अंग्रेजोंके सामने हार खानी पड़ी। हवाका रुख मालूम होते, मंगलसिंहको देर न हुई, तो भी उसने आजादीके झंडेको जीतेजी गिरने नहीं दिया। अंग्रेजी पल्टनोंने अवधकी निहत्थी जनताका कत्ले-आम शुरू किया, औरतोंके प्राण और इज्जतको पैरों तले रौंदा, यह सब सुनकर भी मंगलसिंह और उसके साथियोंने किसी बंदी अंग्रेज पर हाथ नहीं उठाया।

वर्षाके समाप्त होते-होते सभी जगह विद्रोहियोंकी तलवार हाथसे छूट गई थी, किन्तु रुहेलखंड और पश्चिमी अवधमें मंगलसिंह डटा हुआ था। चारों ओरसे अंग्रेज, गोर्खा और सिख फौजें उसपर आक्रमण कर रही थीं। स्वतंत्रताके सैनिकोंकी संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही थी। मंगलसिंहने भविष्यको समझकर बहुतोंको घर भेज दिया,

किन्तु मेरठसे उसके साथ निकले, उन हजार सिपाहियोंमें एक भी उसका साथ छोड़नेके लिये राजी न हुआ, और आखिरमें उसने वह नजारा देखा, जिसने मृत्युको मंगलसिंहके लिये आनन्दकी चीज बना दिया—मरनेके लिये उसकी इस छोटी टुकड़ीमें ब्राह्मण-राजपूत, जाट-गूजर, हिन्दू-मुसलमानका भेद जाता रहा। सब एक साथ रोटी पकाते, एक साथ खाते, इस प्रकार उसने हिन्दुस्तानकी एक जातीयताका नमूना उपस्थित किया।

बिन्दासिंह, देवराम, सदाफलपाँड़े, रहीमखाँ, गुलामहुसैन, मेरठके यह पाच सिपाही मंगलसिंहके साथ रह गये थे, जब कि आखिरीबार गंगामें नावपर दोनों ओरसे वह घिर गये। बंदी अंग्रेज नरनारियोंकी प्रार्थना पर अंग्रेज जेनरलने माफीकी घोषणा करके बहुत चाहा, कि मगलसिंह आत्मसमर्पण कर दे, किन्तु, मगलसिंहने इसे कभी नहीं माना। आज भी उससे कहा गया, किन्तु उसने गोलियोंसे इसका जवाब दिया। आखिरमें गगामें पाँच छै लाशको लेकर नाव जब वह चली, तो उसे पकड़ा गया। अंग्रेजोंने उस समय भारतकी वीरताकी पूजाकी—

१९—सफ़दर

काल—सन् १९२२ ई०

एक छोटा, किन्तु सुन्दर बँगला है, जिसके बड़े अहातेमें एक ओर गुलाबोंकी क्यारीमें बड़े बड़े, लाल-लाल और गुलाबी गुलाब फूले हुए हैं। एक ओर बेडमिंटन खेलनेका छोटा-सा क्षेत्र है, जिसकी हरी घासों पर घूमना भी स्वयं आनन्दकी चीज़ है। तीसरी ओर एक लता-मण्डप है। चौथी ओर बँगलेके पीछे एक खुला चबूतरा है, जिस पर शामके वक्त अक्सर बैरिस्टर सफदर जङ्ग बैठा करते।

बँगलेकी बाहरी दीवारों पर हरी लता चिपकी है। सफदर साहबने आक्सफ़र्डमें ऐसी लता-चढ़े मकान देखे थे, और उन्होंने ख़ास तौर पर इसको लगवाया था। बँगलेके अहातेमें दो मोटरोंके लिये 'गैरिज' था। सफ़दर जंगकी रहन-सहन, उनके बँगलेकी आबोहवा—सभीमें अँगरेज़ियत कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनके आधे दर्जन नौकर बिलकुल उसी अदब-क़ायदेसे रहते थे, जैसे कि किसी अँगरेज़ अफसरके। उनकी कमरमें लाल पटका, उनकी पक्की बँधी हुई पगड़ीमें अपने साहबका नाम-चित्र (मोनोग्राम) रहता था। सफदर साहबको विलायती खाना सबसे ज़्यादा पसन्द था और इसके लिये तीन ख़ानसामे रखे हुए थे।

सफ़दर तो साहब थे ही, वैसे ही सकीनाको सभी नौकर मेमसाहब कह कर पुकारते थे। सकीनाकी कमानीदार भौंहोंके अतिरिक्त रोमोंको निकाल कर उन्हें पतला और रंगसे रंगकर अधिक काला बनाया गया था। हर पन्द्रह मिनट पर ओठों पर अधर-राग लगानेकी उसे आदत थी। किन्तु सकीनाने विलायती स्त्रियोंकी पोशाक पहिननी कभी पसंद न की।

पिछले साल (सन् १९२० ई० में) जब सफदर साहब अपनी बीबीको लेकर पहले-पहल विलायत गये, तो उन्होंने चाहा कि सकीना 'स्कर्ट

पेटी-कोट' पहिने; किन्तु वह इसके लिये राज़ी न हुई, और विलायतमे उनके मिलने वाले अँगरेज़ नर-नारियोंने सकीनाके सौन्दर्यके साथ उसकी साड़ीकी जैसी तारीफकी, उससे सफ़दरको सकीनाके इनकार पर अफसोस नहीं हुआ। वैसे दोनों दम्पत्तिका रंग इतना साफ था कि उन्हें योरुपमें सभी इटालियन कहते।

सन् १६२१ के जाड़ोंका मौसम था। उत्तरी भारतके और शहरोंकी भाँति लखनऊके लिए भी जाड़ा सबसे सुन्दर मौसम है। सफ़दर साहब कचहरीसे आते ही आज बँगलेके पीछेके चबूतरे पर वेतकी कुरसी पर बैठे थे। आज उनका चेहरा ज़्यादा गम्भीर था। उनके सामने एक छोटी सी मेज़ थी, जिसपर नोटबुक और दो-तीन क़िताबें थीं। पासमें तीन और खाली कुरसियाँ पड़ी थीं। उनके शरीर पर कलफ़ किया प्रथम श्रेणीका अँगरेज़ी सूट था। उनके मूँछ-दाढ़ी-शून्य चेहरेकी अवस्थाको देखने हीसे पता लग सकता था, आज साहब किसी भारी चिन्तामें हैं। ऐसे वक्त साहबके नौकर-चाकर मालिकके पास बहुत कम जाया करते थे। यद्यपि सफ़दरको ग़ुस्सा शायद ही कभी आता हो, किन्तु नौकरोंको उन्होंने समझा रक्खा था कि ऐसे समय वह अकेला रहना ज़्यादा पसंद करते हैं।

शाम होनेको आई, किन्तु सफ़दर उसी आसनसे बैठे हुए हैं। नौकरने तार जोड़ कर टेबिल-लैम्प लाकर रख दिया। सफ़दरने बँगले की ओरसे आती किसीकी आवाज़को सुन लिया था। उनके पूछने पर नौकरने बतलाया, मास्टर शंकरसिंह लौटे जा रहे हैं। सफदरने तुरन्त नौकरको दौड़ा कर मास्टर जीको बुलवाया।

मास्टर शंकरसिंहकी उम्र तीस-बत्तीस ही सालकी होगी, किन्तु अभी से उनके चेहरे पर बुढ़ापा झलकता है। बन्द गलेका काला कोट, वैसा ही पायजामा, सिर पर गोल 'फैल्ट टोपी, ओठों पर घनी काली मूँछें नीचेके ओर लटकी हुई वहाँ तरुणाईके वसन्तका कहीं पता न था, यद्यपि उनकी आँखोंको देखने पर उनसे फूट निकलती किरणें बतलाती थीं कि उनके भीतर प्रतिभा है।

मास्टर जीके पहुँचते ही सफ़दरने उठकर हाथ मिलाया और उन्हें कुरसी पर बैठते देख कहा—"शंकर, आज तुम मुझसे बिना मिले ही लौटे जा रहे थे ?"

"भाई साहब ! क्षमा करें, मैंने सोचा कि आप अकेले किसी काममें मशगूल हैं।"

"मुकदमेकी फ़ाइलोंमे लगे रहते हुए भी मेरे पास तुम्हारे लिए दो मिनट रहते ही हैं। और आज तो मेरे सामने फाइलें भी नहीं हैं।"

शकरसिंह पर सफदरका सबसे ज़्यादा स्नेह था। वह उनसे बढ़कर अपना दोस्त किसीको नही समझते थे। सैदपुरके स्कूलमे चौथी श्रेणीसे भरती होनेसे लखनऊमें बी० ए० पास होने तक दोनों एक साथ पढ़े। दोनों मेधावी छात्र थे। परीक्षामें कभी कोई दो चार नम्बर ज़्यादा पा जाता, कभी कोई कम। किन्तु योग्यताकी इस समकक्षताके कारण उनमें कभी झगड़ा या मनमुटाव नहीं हुआ। दोनोंकी दोस्तीमें एक ख्यालने और मदद की थी। दोनों ही गौतम राजपूत थे। यद्यपि आज एकका घर हिन्दू था, दूसरेका मुसलमान; किन्तु दस पीढ़ीके पहले दोनों ही हिन्दू ही नहीं, बल्कि दोनोंके वंश एक पूर्वजमें जाकर मिल जाते थे। ख़ास-ख़ास मौक़ों पर बिरादरीकी सभाओंमें अब भी उनके घर वाले मिला करते थे।

सफदर अपने बापके अकेले पुत्र थे। किसी भाईके अभावका वह अनुभव करते थे, जिसे दूर करनेमे शंकरने मददकी थी। शङ्कर सफ़दरसे छः महीने छोटे थे। ये तो बाहिरी बातें थीं; किन्तु उनके अतिरिक्त शंकरमे कई ऐसे गुण थे, जिनके कारण पक्के साहब सफ़दर सीधे-सादे शकर पर इतना स्नेह और सम्मान-भाव रखते थे। शकर नम्र थे, किन्तु खुशामद करना वह जानते ही नही थे। इसीका फल है कि प्रथम श्रेणीमे एम० ए० पास करने पर भी आज वह एक सरकारी स्कूलके सहायक शिक्षक ही बने हुए हैं। उन्होंने यदि ज़रा-सा संकेत भी किया होता, तो दूसरे उनकी सिफ़ारिशकर देते और आज वह किसी हाई-

स्कूलके हेडमास्टर होते। किन्तु जान पड़ता है, वह ज़िन्दगी भर सहायक शिक्षक ही बने रहना चाहते हैं। हाँ, उन्होंने एक बार दोस्तोंकी मदद ली थी, जब लखनऊसे बाहर उनका तबादिला हो रहा था। नम्रताके साथ आत्म-सम्मानका भाव भी शंकरसिंहमें बहुत था, जिसके कि सफ़दर जबर्दस्त कद्रदाँ थे। बारह सालकी उम्रसे स्थापित मैत्री आज बीस साल बाद भी वैसी ही बनी हुई थी।

अभी दो-चार ऊपरी बातें हुई थीं कि धानी रंगकी साड़ी और लाल ब्लाऊज़ पहिने सकीना आ पहुँची। शंकरने खड़े होकर कहा—"भाभी सलाम!"

भाभीने मुस्कराकर 'सलाम' कहकर जवाब दिया। एक वक्त था, जब कि एक धनी 'सर'की ग्रेजुएट पुत्री सकीनाको, इस गँवारसे लगते शिक्षकके साथ सफ़दर की दोस्ती बुरी लगती थी। सकीना बापके घरसे ही पर्देमें नहीं रही, इसलिये शंकरसिंहके सामने होने, न होनेका कोई सवाल ही नहीं था। तो भी छः महीने तक उसकी भौंहें तन जाती थीं, जब वह सफदरके साथ बेतकल्लुफ़ीसे शंकरको काम करते देखती; किन्तु अन्तमें उसे सफ़दरके सामने कबूल करना पड़ा कि शंकर वस्तुतः हमारे स्नेह-सम्मानके पात्र हैं।

और अब तो सकीनाने शंकरके साथ पक्का देवर-भाभीका नाता कायमकर लिया था। अपनी इच्छासे अभी अपनेको सकीनाने सन्तान-हीन बना लिया है; किन्तु कभी-कभी वह शंकरके बच्चेको उठा लाती है। इधर छः वर्षोंसे शंकर समझते हैं कि शंकरकी उन पर कृपा है। उनके घरमें कोई न कोई दो सालसे नीचेका बच्चा तैयार रहता है।

सकीनाको साहबकी पिछले एक हफ़्तेकी गम्भीरता कुछ चिन्तितकर रही थी। उसे आज शंकरको देखकर बड़ा संतोष हुआ। क्योंकि वह जानती थी कि शंकर ही हैं जो साहबके दिलके बोझको हलका करनेमें सहायता दे सकते हैं। सकीनाने शंकरकी ओर नज़र करके कहा—

"देवर, आज तुम्हें जल्दी तो नहीं है। भाभीके हाथकी चाकलेटकी पुडिङ्ग कैसी रहेगी?"

सफ़दर—"नेकी और पूछ-पूछ!"

सकीना—"मैं पहले जान लेना चाहती हूँ, देवर साहबका कहीं ठिकाना नहीं, कब लोप हो जायें।"

शंकर—"मेरे साथ इंसाफ नहीं कर रही हो, भाभी! एक भी मिसाल तो दो, जब कि मैंने तुम्हारे हुक्मको माननेसे इंकार किया हो?"

सकीना—"हुक्मअदूलीकी बात नहींकर रही हूँ, देवर! लेकिन हुक्म सुननेसे बच निकलना भी तो क़सूर है।"

शंकर—"मैं अपनी जनरल भाभीका हुक्म सुननेके लिये तैयार हूँ!"

सकीना—"अच्छा, तो जा रही हूँ। खानेके साथ 'पुडिङ्ग' खानी होगी।"

सकीना जल्दीसे निकल गई। सफ़दर और शंकरके वार्त्तालापने गम्भीर रूप धारण किया।

सफ़दरने कहा—"शङ्कर, हम बिलकुल एक नये क्रान्ति-युगमें दाख़िल हो रहे हैं। मैं समझता हूँ, सन् १८५७ ई०के बाद यह पहला वक्त है जब कि हिन्दुस्तानकी सर ज़मीन जड़से डगमग होने लगी है।"

"तुम्हारा मतलब राजनीतिक आन्दोलनसे है न, सफ्फू भाई?"

"राजनीतिक आन्दोलन बहुत साधारण शब्द है, शंकर! सन् १८८५ ई० में कांग्रेस क़ायम हुई, जब कि वह अँग्रेज आई० सी० एस० पेंशनरोंकी कृपा-पात्र थी। तब भी उसके क्रिसमसके मनबहलाव वाले व्याख्यानों और बोतलोंको आन्दोलनका नाम दिया जाता था। यदि तुम उसे ही आन्दोलनका नाम देना चाहते हो, तो मैं समझता हूँ, हम आन्दोलनसे अब क्रान्तिके युगमें प्रविष्ट हो रहे हैं।"

"क्योंकि गाँधीजीने तिलक-स्वराज्य-फण्डके लिये एक करोड़ रुपया जमाकर लिया, और स्वराज्यका हल्ला ज़ोर-शोरसे सुनाई देने लगा?"

"क्रान्ति या क्रान्तिकारी आन्दोलनका आधार कोई एक व्यक्ति

नहीं होता शंकर ! क्रान्ति जिस भारी परिवर्त्तनको लाती है, वह किसी एक या आधे दर्जन महान् व्यक्तियोंके सामर्थ्यसे भी बाहरकी चीज़ है। मैं आजके इस आन्दोलनकी बुनियाद पर जब विचार करता हूँ, तो इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ। तुम्हें मालूम है, सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-युद्ध (जिसका एक केन्द्र यह लखनऊ भी था, बल्कि यह भी कह सकते हैं कि लखनऊका अँग्रेजों द्वारा हड़पा जाना उस युद्धके नज़दीकके कारणोंमेसे एक था) के नेता पद-भ्रष्ट सामन्त थे; किन्तु वह लड़ा गया था साधारण लोगोंके प्राणोंकी बाजी लगाकर। हमारी कई कमजोरियोंके कारण हम सफल नहीं हुए। अँग्रेजोंने पराजितों पर ख़ूनी गुस्सा उतारा। ख़ैर, मैं कहना यह चाहता हूँ कि सन् १८५७ ई०के बाद यह पहला समय है, जब कि जनताको देशकी स्वतन्त्रताके युद्धमे शामिल किया जा रहा है। तुम्हीं बोलो, इतिहासके एक अच्छे विद्यार्थी होनेके नाते, क्या तुम बतला सकते हो किसी और ऐसे आन्दोलनको, जब कि जनताने इस तरह भाग लिया ?"

"सफ़्फ़ू भाई, नागपुर कांग्रेस (१९२०) और कलकत्ता कांग्रेस भी बीत गई। गाँव-गाँवकी जिस उथल-पुथलका तुम ज़िक्र करते हो, उसे मैने भी अपनी आँखों देखा है, और मैं मानता हूँ, वह अनहोनी चीज हुई; लेकिन इतनी बाढ़के पार हो जाने पर भी, इसी लखनऊमें कितनी बार विदेशी कपड़ोंकी होली जल जाने पर भी तुम्हारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगी, और आज तुम क्रान्तिके भँवरमें पड़े जैसे आदमीकी तरह बात करते हो ?"

"तुम्हारा कहना ठीक है. शङ्कर ! मेरे छोटे भैया, सचमुच यह भँवर मेरे पैरोंको उखाड़ना चाहती है। लेकिन इस भँवरको मैं एक छोटी-सी स्थानीय भँवर नहीं समझता; यह एक बड़ी भँवरसे सम्बद्ध होकर प्रकट हुई है। हर युगकी सबसे जबर्दस्त क्रान्तिकारी शक्ति जनता लेकर प्रकट होती है।"

"तुम सन् १८५७से शुरूकर रहे हो, सफ़दू भाई! बहुत भारी घिरावा मार रहे हो!"

"तो मैं कहूँ शंकर क्यों?"

"मैं सुनना चाहता हूँ। भाभीकी पुडिङ्ग बन ही रही है, और कल है इतवार। बस, आदमी घर ख़बर दे आयगा कि शकर इसी लखनऊमें जिन्दा है, अपनी भाभी सकीनाकी पुडिङ्ग खाकर खर्राटे ले रहा है, और फिर मै रात भर सुननेके लिये निश्चिन्त हूँ।"

"शंकर! ऑक्सफर्डके मेरे जीवनका आधा मज़ा किरकिरा हो गया, सिर्फ़ तुम्हारे न रहनेसे। ख़ैर, मैं ही नही, भारतसे बाहर सभी जगह राजनीतिके विद्यार्थी मानते हैं कि पिछली सदीमें और इस सदीमें भी इंग्लैंएडकी राजनीतिमें जो भी परिवर्त्तन हुए हैं, वे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति—संसारकी दूसरी राज-शक्तियोंकी गति-विधिसे मजबूर होकर ही, और इस परिस्थितिके कारणों पर भी विचार करें, तो वह मुख्यतः आर्थिक ही मिलेंगे। सन् १८५७ ई०की चोटके बाद हमारा मुल्क तो सो गया, या यह कहिये कि हमारे परिवर्त्तनकी गति इतनी धीमी हो गई कि उसे हम सोना ही कह सकते हैं। किन्तु दूसरे मुल्कोंमें भारी परिवर्त्तन हुए। हज़ार वर्ष पहले रोमन साम्राज्यके वक्तसे टुकड़े-टुकड़े हुआ इटली सन् १८६० (ता० २ अप्रैल)मे एक राष्ट्र बननेमें सफल हुआ, और उसने हमारे नौजवानोंके लिये मेज़िनी और गेरीवाल्डी जैसे आदर्श प्रदान किये। रोमन साम्राज्यको विध्वंस करनेमें समर्थ होकर जो जर्मन अपनेको एकत्रित न कर सके, वह सन् १८६६ ई०में अधूरे तौरसे और फ्रान्स-विजयके बाद सन् १८७१ (ता० १८ जनवरी)-में क़रीब-क़रीब पूरे तौरसे, प्रुसियाके नेतृत्वमें अपना एक राष्ट्र बनानेमें समर्थ हुए। सन् १८६६ ई०के इस परिवर्त्तनको संसारका एक भारी परिवर्त्तन समझिए। इसीके करने पर जर्मनी, फ्रान्सकी महान् शक्तिको सन् १८७० ई०में परास्त कर पेरिस और वर्साई पर अपनी विजयध्वजा गाड़नेमें समर्थ हुआ, और जिसकी वजहसे इंग्लैंएड, रूसकी आँखें

भयभीत हो बर्लिनकी ओर देखने लगीं। यह तो हुआ शहरके भयके बारेमें, लेकिन इससे भी बड़ा भय हुआ पेरिसके मज़दूरोंके उस राज्य—पेरिस-कम्यून—से जो तारीख़ दो अप्रैलसे डेढ़ महीनेसे कुछ ही ज़्यादा (२ अप्रैल—२१ मई सन् १८७१ ई०) रहा और जिसने बतला दिया कि सामन्त और बनिये ही नहीं, बल्कि मज़दूर भी राज्य कर सकते हैं।"

'आप समझते हैं, इन सबके साथ ही भारतकी राजनीतिक घटनाएँ सम्बद्ध हैं?"

"राजनीतिक घटनाएँ नहीं, बल्कि हमारे शासक अंग्रेज भारतके बारेमें जो भी नीति अख़्तियार करते हैं, उसकी तहमें उनका भारी हाथ होता है। यूरोपमें जर्मनी-जैसी दुर्जेय शक्तिके पैदा होते ही, फ्रान्स इंग्लैण्ड का प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। अब उसे ख़तरा हो गया जर्मनीसे। मृत पेरिस-कम्यून और सन् १८७१ में आस्ट्रीया जोड़ सारी जर्मन रियासतोंके एक जीवित जर्मन राष्ट्रने हमारे पूँजीपति शासकोंकी नींद हरामकर दी होती—इसे कहनेकी ज़रूरत नहीं। साथ ही इसी वक्त और परिवर्तन हांता है। सन् १८७० ई० में अंग्रेज़ व्यापारीसे पूँजीपति बने और कच्चे मालकी ख़रीदसे लेकर, उसे तैयार करके बेचने तक हर अवस्थामें नफ़ा उठानेके रस्ते पूँजीवादको उन्होंने अपनाया। व्यापारवादमें सिर्फ कारीगरोंके मालको इधरसे उधर ले जाकर बेचने भरका नफा है, किन्तु पूँजीवादमे नफा पग-पग पर है। रुईको ख़रीदने में नफा, बिनौले निकालने और गाँठ बाँधनेमें नफा, रेल पर ढोनेमे नफ़ा, जहाज़ पर ले जानेमे नफा (किरायेमें) मैञ्चेस्टरकी मिलमे सूत कताई और कपड़ा बुनाईमें नफा, फिर जहाज़से कपड़ेके लौटानेमे जहाज़-कम्पनीका नफा, रेलका नफा—इन सब नफोंकी तुलना कीजिए कारीगरके हाथके बने मालको बेचनेवाले व्यापारीके नफेसे।"

"व्यापारवादसे पूँजीवादका नफ़ा अधिक है, यह इष्ट है।"

"और सन् १८७१ ई० मे वर्साईसे जब विजयी जर्मनीने प्रुसियाके राजा विलियम प्रथमको सारी जर्मनीका क़ैसर (सम्राट्) घोषित किया,

उसके दूसरे साल (सन् १८७२ ई० में) कट्टर अँग्रेज पूँजीपतियों—टोरियोंने इग्लैंडके प्रधान मंत्री यहूदी डिस्राइली द्वारा साम्राज्यवादकी घोषणा कराई। घोषणा शाब्दिक नहीं, बल्कि वस्तुस्थितिका प्राकट्य था। फ़ैक्टरियाँ इतनी बढ़ चुकी थी, कि उनके लिये सुरक्षित बाज़ार मिलने चाहिएँ। ऐसे बाज़ार, जहाँ जर्मनी और फ्रांसके बने मालकी प्रतियोगिताका डर न हो; अर्थात् जहाँके बाज़ारकी इजारदारी बिलकुल अपने हाथमे हो; साथ ही पूँजी भी इतनी जमा हो गई थी, कि उसको नफ़े पर लगानेके लिये सुरक्षित स्थान चाहिये। यह काम भी मुल्कोंको पूरी तौरसे अपने हाथमे करनेसे ही होगा। साम्राज्य शब्दके भीतर डिस्राइलीका यही अर्थ था। भारतमें दोनों बातोंका सुभीता था। योरुपसे भारतकी ओर जाने वाला सबसे छोटा सस्ता रास्ता था स्वेज नहर, जो सन् १८६६ ई०में खुली थी। सन् १८७५ ई०मे मिश्रके ख़दीवके १,७७,००० शेयरोंको चालीस लाख पौण्डोंमे तार द्वारा डिस्राइलीने ख़रीदा। साम्राज्य-घोषणाका और आगे बढ़ानेमे यह दूसरा क़दम था. और पहली जनवरी सन् १८७७ ई० को दिल्लीमे दरबारकर रानी विक्टोरियाको सम्राज्ञी घोषित करके डिस्राइलीकी सरकारने साम्राज्य-वादको इतनी दूर तक पहुँचा दिया कि अब उदार दलके ग्लैडेस्टनके दादा भी मंत्री बनकर आये, किन्तु डिस्राइलीकी नीतिको बदलनेका सामर्थ्य नहीं रखते थे।"

"हम तो अभी तक अपने विद्यार्थियोंको यही पढ़ा रहे थे कि महारानी विक्टोरियाने भारत-सम्राज्ञी—क़ैसर हिन्दकी पदवी धारण कर भारतके ऊपर भारी अनुग्रह किया।"

"और याद रखिये, छः साल पहले प्रुसियाके राजाने भी उस 'क़ैसर'की पदवी धारण की थी। कैसरका नाम कितना महँगा हो गया था। रोमन साम्राज्यके वक्तसे परित्यक्त शब्दकी क़ीमत बाज़ारमें झटपट कितनी तेज़ हो गई!"

"साथ ही रोमन भाषाके शब्द कैसरको सिर्फ़ हिन्दुस्तानमे चलाना

और अँग्रेजीमें उसकी जगह 'इम्प्रेस' रखना, इसमें भी कोई रहस्य तो नहीं है ?"

"हो सकता है। ख़ैर, कैसर शब्दके साथ सन् १८७१से हम साम्राज्यवादके युगमें प्रविष्ट होते हैं। इंग्लैण्ड पहले आता है, पराजित प्रजातन्त्रीय फ्रांस कुछ सँभलनेके बाद सन् १८८१ ई०में तूनिस (अफ्रीका) पर अधिकार जमा साम्राज्यवादका प्रारम्भ करता है। और नई फैक्टरियों और पूँजीपतियोंसे लैस जर्मनी भी सन् १८८४ ई० से उपनिवेशकी माँग पेशकर साम्राज्यवादकी स्थापनाका प्रयत्न करता है।"

"लेकिन इसका भारतमें अँग्रेजोंकी नीति-परिवर्तनसे क्या सम्बन्ध है ?"

"नित्य नये सुधार होते यन्त्रों, बढ़ते हुए कारख़ानों तथा उनसे होनेवाले पूँजीके रूपमें नफ़ेको लगानेका कोई इन्तज़ाम होना चाहिये। सन् १८७४—८० ई०में डिस्राइलीके मन्त्रि-मण्डलने उसे जाकर नाश कर डाला। सन् १८८०—६२ तक रही न उदारदली ग्लैडेस्टन सरकार! वह डिस्राइलीके बढ़ाये क़दमसे पीछे नहीं जा सकती थी। हाँ, पूँजीकी नंगी साम्राज्यवादी दानवताको कुछ भद्र वेष देनेकी ज़रूरत थी, जिसमें साधारण जनता भड़क न उठे। इसके लिये डिस्राइलीने 'भारत-सम्राज्ञी'का नाट्य तो रच ही डाला था। अब उदार दल वालोंको कुछ और उदारता दिखलानेकी ज़रूरत थी। यह उदारता आयर्लैंडके 'होमरूल-बिल'के रूपमें आई; किन्तु आयर्लैंडका प्रश्न आजतक वैसा ही पड़ा हुआ है। इसी 'उदारता'से फ़ायदा उठाकर हम हिन्दुस्तानी साहबोंने सन् १८८५ ई० में अपनी कांग्रेस खड़ी कर डाली। कांग्रेस वस्तुतः ब्रिटिश उदार दलकी धर्मपेटी बनकर पृथ्वी पर आई, और एक युग तक उसने अपने धर्मको निबाहा। किन्तु सन् १८९५से सन् १९०५ तक दस वर्षो के लिये ब्रिटेनमें फिर टोरियोंकी सरकार आ गई, जिसने एल्गिन और कर्ज़न जैसे सपूत भारत भेजे, जिन्होंने साम्राज्यवादकी गाँठोंको और मज़बूत करनेकी कोशिशकी, किन्तु परिणाम उलटा हुआ।"

"क्या आपका मतलब लाल (लाजपतराय), बाल (बाल गंगाधर तिलक), पाल (विपिनचन्द्र पाल) से है ?"

"ये लाल, बाल, पाल उसीके बाहरी प्रतीक थे। जापानने रूसको (८ फरवरी सन् १९०४—सितम्बर सन् १९०५ ई०) हराकर अपनेको बड़ोंकी बिरादरीमे शामिलकर एशियामें एक नई जाग्रति फैलाई। कर्जनके बंग-भंग और इस एशियायी विजयने मिलकर कांग्रेसके मञ्च पर लच्छेदार भाषणोंसे आगे जानेके लिये भारतीय नौजवानोंको प्रेरणा दी। आधी शताब्दी बाद भारतीयोंने अपने लिये मरना सीखा। इसमें आयर्लैंड और रूसके शहीदोंके उदाहरणोंसे हमे भारी मदद मिली। इसलिये इसकी जड़को भी सिर्फ भारतके भीतर ही ढूँढना क्या ग़लत न होगा ?"

"ज़रूर, वस्तुतः दुनिया एक दूसरेसे नथी हुई है।"

"शकर, किसी क्रान्तिकारी आन्दोलनकी ताक़त निर्भर करती है दो बातों पर—उसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा उदाहरणोंसे कितनी प्रेरणा मिल रही है, और देशमें सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी वर्ग उसमें कहाँ तक भाग ले रहा है ? पहले शक्ति-स्रोतका कुछ उदाहरण दे चुका। दूसरा शक्ति-स्रोत है श्रमकर किसान जनता। क्रान्तिकी लड़ाई वही लड़ सकता है, जिसके पास हारनेके लिये कमसे कम चीज़ हो। सकीनाके अधर-राग, इस बॅगले और बापके ताल्लुकदारीके गाँवोंके हाथसे निकल जानेका जिसको डर हो, वह क्रान्तिका सैनिक नहीं हो सकता। इसलिये मैं कहता हूँ कि क्रान्तिका वाहन साधारण जनता ही हो सकती है।"

"मैं सहमत हूँ।"

"अच्छा, तो आज इस जनतामें जो उत्तेजना है, उसे जान रहे हो। और दूसरी ओरसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिसे क्या प्रेरणा मिल रही है, इसकी ओर भी ध्यान दो, पिछला महायुद्ध (सन् १९१४-१८) दुनियामें भारी आग लगा गया है। वह युद्ध था ही साम्राज्यवादकी उपज—पूँजी और तैयार मालके लिये सुरक्षित बाज़ारको पकड़ रखने या छीननेका परिणाम। जर्मनीने नये उपनिवेश लेना चाहे, और

धरती बँट चुकी थी। इसलिए उन्हें लड़कर ही छीना जा सकता था। इसीलिए उपनिवेशोंके मालिकों—इग्लैएड और फ्रांस—से जर्मनीकी ठन गई। ख़ैर, जर्मनी उसमें असफल रहा; लेकिन साथ ही साम्राज्य-वादकी नींदमें जबर्दस्त ख़लल डालने वाला एक और दुश्मन पैदा हो गया—यानी साम्यवाद—चीज़े नफ़ाके लिये नहीं, बल्कि मानव-वंशको सुखी और समृद्ध बनानेके लिए पैदाकी जायँ। मशीनमें सुधार होता है, फ़ैक्टरी बढ़ती है, माल ज्यादा पैदा होता है और उसके लिए ज्यादा बाज़ारकी ज़रूरत होती है। फिर उसे ख़रीदनेके लिए हाथमें पैसेकी ज़रूरत होती है जिसके लिये हर ख़रीदारको पूरा वेतन मिलना चाहिए। जितना ही हाथमे पैसा कम रहेगा, उतना ही माल ख़रीदा नहीं जायगा। उतना ही माल बाज़ारमें या गोदाममे पड़ा रहेगा—मंदी होगी—उतना ही मालको कम पैदा करना होगा, उतने ही कारख़ाने बन्द रहेंगे, उतने ही मज़दूर बेकार होंगे, उतना ही उनके पास माल ख़रीदनेके लिए पैसा नही रहेगा; फिर माल क्या ख़ाक खपेंगे, फैक्टरी क्या धूल चलेगी? साम्यवाद कहता है, नफाका ख्याल छोड़ो। अपने राष्ट्र या सारे संसारको एक परिवार मानकर उसके लिए जितनी आवश्यकताएँ हों उन्हें पैदा करो, हर एकसे उसकी क्षमताके अनुसार काम लो, हर एककी उसकी आवश्यकताके मुताबिक जीवनोपयोगी सामग्री दो; जब तक आवश्यकताको पूरी करने भरके लिए कल-कारखाने और कारीगर इञ्जीनियर न हों, तब तक कामके अनुसार दो। और यह तभी हो सकता है, जब कि वैयक्तिक सम्पतिका अधिकार न भूमि पर रहे, न फैक्टरी पर, अर्थात् सारे उत्पादनके साधनों पर उस महा परिवारका अधिकार हो।"

'कल्पना सुन्दर है।"

"यह अब कल्पना ही नहीं है, शङ्कर! दुनियाके छठे हिस्से—रूस पर नवम्बर सन् १६१७ ई० से साम्यवादी सरकार कायम हो चुकी है। आज भी पूँजीवादी दुनिया मानवताकी उस एक मात्र आशाको

मिटाना चाहती है; किन्तु पहली जबर्दस्त परीक्षामें सोवियत सरकार उत्तीर्ण हो चुकी है। हाँ, फ्रांस, अमेरिकाके पूँजीपतियोंकी मददसे हंगरीमें छः मास (मार्च-अगस्त सन् १९१९ ई०)के बाद वहाँसे सोवियत शासनको खत्मकर दिया गया। सोवियत रूसकी मज़दूर-किसान-सरकारका अस्तित्व दुनियाके लिये भारी प्रेरणा है, और जिन शक्तियों ने सोवियत शासनको कायम किया, वह हर मुल्कमें कामकर रही हैं। लड़ाई बन्द होनेके साथ अँग्रेजोंने रौलट क़ानून पास करनेकी जल्दी क्यों की ? उसी विश्वकी क्रान्तिकारिणी शक्तिको कुंठित करनेके लिये, फिर सोचिये—वह क्रान्तिकारी शक्ति दुनियाको उलटनेके लिये भूमंडलके कोने-कोनेमें दौड़ती, न अँग्रेज़ रौलट क़ानून बनाते, न रौलट क़ानून बनता और न गाँधी उसके विरुद्ध जनताको उठनेके लिये आवाज़ लगाते; न जनताको आवाज़ लगाते और न छिपा हुआ दावानल सन् १८५७ के बाद फिर आज जगता। इसीलिये मैंने कहा कि हम बिलकुल एक नये क्रान्ति-युगमें दाखिल हो रहे हैं।'

'तो आपका ख़्याल है—गाँधी क्रान्तिकारी नेता हैं ? जो गाँधी कि गोखले-जैसे नर्मदली नेताको अपना गुरु मानते हैं, वह कैसे क्रान्तिकारी नेता बन सकते हैं, सफ़्फ़ू भाई ?"

'गाँधीकी तमाम बातों और उनके तमाम विचारोंको मैं क्रान्तिकारी नहीं मानता शङ्कर! क्रान्तिकारी शक्तिके स्रोत साधारण जनताका जो उन्होंने आवाहन किया है, मैं उतने अंशमें उनके इस कामको क्रान्तिकारी कहता हूँ। उनकी धर्मकी दुहाई—ख़िलाफ़तकी खास कर—को मैं सरासर क्रान्ति-विरोधी चाल समझता हूँ। उनके कलों-मशीनोंको छोड़ पीछेकी ओर लौटनेको भी मैं प्रतिगामिता समझता हूँ। उनके स्कूलों, कालेजोंको बन्द करनेकी बातको भी मैं इसी कोटिमें रखता हूँ।"

"तुम्हारा बेटा जीवे सफ़्फ़ू भैया! मेरा साँस तो रुकने लगा था, जब तुम गाँधीकी प्रशंसामें आगे बढ़ रहे थे। मैंने सोचा था—कहीं स्कूल-कालेजोंको शैतानका कारखाना तुम भी तो नहीं कहने जा रहे हो ?"

"शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण हो सकती है शङ्कर, किन्तु आजके स्कूलों कालेजोंसे हमें साइंसका परिचय होता है, जिसके बिना आज मनुष्य-मनुष्य नहीं रह सकता। हमारी मुक्ति जब भी होगी, उसमें साइंसका खास हाथ होगा। दिन-दिन बढ़ती मानव-जातिकी भविष्यकी समृद्धि उसी साइंस पर निर्भर है, इसलिये साइंसको छोड़ कर पीछे हटना आत्म-हत्या है। स्कूलों, कालेजोंको बन्द कर चर्खे कर्घेकी पाठशालायें कायम करना बिलकुल अंधकार-युगकी ओर खींचनेकी चेष्टा है। क्रान्ति सैनिक बननेके लिये विद्यार्थियोंका आह्वान करना बुरा नहीं है इसे तो तुम भी मानोगे शङ्कर!"

"ज़रूर! और दूसरे बायकाट?"

"कचहरियोंका बायकाट ठीक, इसके द्वारा हम अपने विदेशी शासकोंका अपनी क्षमता और रोष दिखलाते हैं। विलायती मालका बायकाट भी अँगरेजी बनियांके मुँह पर जबर्दस्त चपत है, और इससे हमारे स्वदेशी उद्योग-धंधेको मदद मिलेगी।"

"तो सफ़्फ़ू भाई! मैं देखता हूँ, तुम बहुत दूर तक चले गये हो।"

"अभी नहीं, अब जाना चाहता हूँ।"

"जाना चाहते हो!"

"पहले यह बताओ, हम क्रान्ति-युगसे गुज़र रहे हैं कि नहीं?"

"मैंने तुमसे कितने ही सवाल पूछने हीके लिये पूछे, सफ़्फ़ू भाई! नही तो, जिस दिनसे रूसी क्रान्तिकी ख़बर मुझे मिली, तबसे ही मैंने ढूँढ-ढूँढ़ कर साम्यवादी साहित्यको पढ़ना और उससे भी ज्यादा अपनी समस्याओं पर साम्यवादी दृष्टिसे विचार करना शुरू किया। मै समझता हूँ भारत और विश्वके कल्याणका वही रास्ता है। मैं अभी तक सिर्फ़ इस सन्देहमें पड़ा हुआ था कि गाँधीका असहयोग उस महान् उद्देश्यमें साधक होगा या नहीं, किन्तु जैसे ही तुमने क्रान्तिवाहन जनताकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया वैसे ही मेरा सन्देह दूर हो गया। मैं गाँधी को क्रान्तिका योग्य वाहन नही समझता, सफ़्फ़ू भैया! तुमसे साफ़ कहूँ,

किन्तु जनताको मै मानता हूँ। सन् १८५७ ई० में पदच्युत सामन्तोंने चर्बी, कारतूस और 'धर्म ख़तरेमें' की झूठी दुहाई देकर जनताके जबर्दस्त हिस्सेको खींचा था, किन्तु अब जनता रोटीके सवाल पर खींची जा रही है। मैं समझता हूँ, दुहाई ठीक है, क्रान्तिका रुख ठीक है, और गाँधी पीछे यदि अपने वास्तविक रूपमे भी आयेंगे तो भी मैं समझता हूँ, क्रान्तिके चक्रको वह उलट नहीं सकेंगे।"

"इसीलिये मै निश्चय कर रहा हूँ क्रान्तिकी सेनामे दाखिल होने का—असहयोगी बनने का।"

"इतनी जल्दी!"

"जल्दी करनी होती, तो मैं बहुत पहले मैदानमें उतरा होता। बहुत सोचने-समझनेके बाद और आज तुम्हारी राय लेकर मै इस निश्चयको प्रकट कर रहा हूँ।"

सफदरके गम्भीर चेहरेसे जिस वक्त ये शब्द निकल रहे थे, उस वक्त शङ्करकी दृष्टि कुछ दूर गई हुई थी। उन्हें चुप देख सफदरने फिर कहा—'अज़ीजमन! तुम सोच रहे होगे, अपनी भाभीके अधर-रागको, उसकी रेशमी साड़ीको, मखमली गुर्गाबीको अथवा इस बॅगले और खानसामाको। मैं सकीना पर जोर न दूँगा, वह चाहे जैसी जिन्दगी पसद करे, उसके पास अपनी भी जायदाद है और यह बॅगला, अपने कितने गाँव तथा कुछ नक़द भी है। मेरे लिये वह कोई आकर्षण नहीं रखते। उसकी इच्छा चाहे जिस तरहकी जिन्दगी पसंद करे।"

"मैं भाभी और तुम्हारी ही बात नहीं सोच रहा था; सोच रहा था अपने बारेमें। मेरे रास्तेमें जो मानसिक रुकावट थी वह भी दूर हो गई। आओ, हम दोनों भाई साथ ही क्रान्तिके पथ पर उतरें।"

डबडबाई आँखोंसे सफदरने कहा—"ऑक्सफर्डमें शङ्कर! तुम्हारे लिये मैं तरसता था। अब हम फाँसीके तख्ते पर भी हॅसते-हॅसते चढ़ जायॅगे।"

सकीनाने आकर खानेका पैगाम दिया, मजलिस बर्खास्त हुई।

(२)

उसी रातसे सकीनाने सफ़दरके चेहरेको ज्यादा उत्फुल्ल देखा था; किन्तु वह यही समझती थी कि यह देवर शङ्करके साथ बातचीतका परिणाम है। सफ़दरके लिये सबसे मुश्किल था अपने निश्चयको सकीना तक पहुँचाना। वैसे सफ़दर भी लाड़-प्यारमें पले थे, किन्तु वह गाँवके रहने वाले थे और नगी ग़रीबीको सहानुभूतिपूर्ण आँखोंसे देखते-देखते वह अपनेमें विश्वास रखते थे कि जिस परीक्षामें वह अपनेको डालने जा रहे हैं, उसमें उत्तीर्ण होंगे। किन्तु सकीनाकी बात दूसरी थी। वह शहरके एक रईसके घरानेमें पली थी। उसके लिये कहा जा सकता था—'सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।' इतवारको भी सफ़दर हिम्मत नहीं कर सके। सोमवारको चीफ़कोर्टमें वह अपने कुछ नज़दीकी दोस्तों को भी जब अपने निश्चयको सुना चुके तो सकीनाको निश्चय सुनाना उनके लिये लाज़िमी हो उठा।

उस रातको उन्होंने लखनऊमें मिलने वाली सर्वश्रेष्ठ शम्पेन मँगवाई थी। सकीनाने समझा था कि आज कोई और दोस्त आवेगा, किन्तु जब उन्होंने खानेके बाद बैराको शम्पेन खोलकर लानेको कहा, तो सकीनाको कुछ कौतूहल हुआ। सफ़दरने सकीनाके ओठोंमें शम्पेनके प्यालेको लगाते हुए कहा—"प्यारी सकीना! मेरे लिये यह तुम्हारा अन्तिम प्रसाद होगा।"

'शराब छोड़ रहे हो प्रियतम!'

"हाँ, प्यारी! और भी बहुत कुछ; किन्तु तुम्हें नहीं। अबसे तुम्हीं मेरी शराब रहोगी, तुम्हारे सौंदर्यको पीकर ही मेरी आँखें सुर्ख हो जाया करेंगी।" सकीनाके चेहरेको उदास पड़ते देख फिर कहा—"प्यारी सकीना! अभी हम लोग इस शम्पेनको ख़त्म करें, हमें और भी बातें करनी हैं।"

सकीनाको शराबमें लुत्फ़ नहीं आया, यद्यपि सफ़दरने उमर ख़य्याम की कितनी ही रुबाइयाँ उसके प्यालों पर ख़र्च कीं।

नौकर-चाकर चले गये, और जब सकीना सफ़दरके पास आकर किसी अनिष्टकी आशंकासे सिकुड़ी जाती-सी लेट रही, तब सफदरने अपनी ज़बान खोली—"प्यारी सकीना! मैंने एक बड़ा निश्चय कर डाला है, यद्यपि मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ कि ऐसे निश्चयके करनेमें मुझे तुम्हें भी बोलनेका मौका देना चाहिये था। मैंने ऐसा अपराध क्यो किया, इसे तुम आगेकी बातसे समझ जाओगी। सक्षेपमें वह निश्चय है—मैं अब देशकी स्वतन्त्रताका सैनिक बनने जा रहा हूँ।"

सकीनाके हृदय पर ये शब्द बज्रसे पड़े; इसमे सन्देह नहीं, और इसीलिये वह मुँहसे कुछ बोल न सकी। उसे चुप देखकर सफदरने फिर कहा—"किन्तु प्यारी सकीना! तुम्हारे लड़कपनसे सुखके जीवन को देखते हुए मै तुम्हें काँटोंमे घसीटना नहीं चाहता।"

सकीनाको मालूम हुआ उसके हृदय पर एक और जबर्दस्त चोट लगी, जिससे पहली चोट उसे भूल गई, और उसका जाग्रत आत्म-सम्मान तो एकाएक उसके मुँहसे कहला गया—"प्रियतम! क्या तुमने सचमुच मुझे इतना आराम-तलब समझा है कि तुम्हें काँटों पर घसिटते देख मै पलंग पर बैठना चाहूँगी। सफ़दर! मैंने तुम्हे दिलसे प्यार किया है, तो वह मुझे तुम्हारे साथ कहीं भी जानेमे मेरी सहायता करेगा। मैंने अधर-बत्तियाँ बहुत ख़र्च कीं, मैंने अपने समयका बहुतसा हिस्सा बनाव शृंगारमे ख़र्च किया, मैंने कठोर जीवनसे परिचय प्राप्त करनेका कभी प्रयत्न नही किया; किन्तु सफदर! मेरे तुम्हीं सब कुछ हो, इसलिये नहीं कि मैं तुम पर भार होऊँ, बल्कि यह इसलिये मै कह रही हूँ कि मै तुम्हारे साथ रहूंगी, और जैसे तुमने इस जीवनमे पथ-प्रदर्शन किया, वैसे ही आनेवाले जीवनमें भी पथ-प्रदर्शन करना।"

सफदरको इतनी आशा न थी, यद्यपि वह यह जानते थे कि सकीनाका संकल्प बहुत दृढ़ होता है। सफ़दरने फिर कहा—"मैंने नये मुकदमे लेने बन्दकर दिये हैं। पुरानोमे से भी कितनोंको दूसरोंके सुपुर्द करने जा रहा हूँ। मुझे आशा है, इसी हफ़्तेमें कचहरीसे मुझे छुट्टी हो

जायगी। एक बात और सुनाऊँ सकीना! शङ्कर भी मेरे साथ कूद रहे हैं।"

"शङ्कर!" सकीनाने विस्मयसे कहा।

"शङ्कर रत्न है सकीना, रत्न! मेरे साथ वह दुनियाके छोर तक जाता, ऑक्सफर्डमें मैं बराबर उसकी याद करता रहा।"

"लेकिन, सफ़दर! शङ्करकी कुर्बानी तुमसे ज़्यादा है।"

"उसने कुर्बानीके जीवनको स्वयं अख़्तियारकर रखा है, सकीना! जान-बूझकर वह वहाँसे टससे मस नहीं हुआ। नहीं तो वह अच्छा वकील हो सकता था, अपने महकमेमें भी तरक्की कर सकता था।"

"उसके दो बच्चोंके मरने पर तो मैं बहुत रोई थी; किन्तु अब समझती हूँ, चारमे से दोका बोझा कम होना अच्छा ही हुआ।"

"और चम्पा शङ्करके इस निश्चयको कैसे लेगी, सकीना?"

"वह आँख मूँदकर स्वीकार करेगी, उसने मुझे तुम्हारा प्रेम सिखलाया, सफ़्फू!"

"हमे अपने भविष्यके रहन सहनके बारेमें भी तय करना है।"।

"तुमने तो अभी कहा, मैंने सोचनेका अवसर कहाँ पाया! तुम्हीं बतलाओ?"

हमारे गाँवकी दाई शरीफ़न और मंगरको छोड़कर बाकी सारे नौकरोंको दो महीनेकी तन्खाह इनाममें देकर बिदाकर देना होगा।"

"ठीक।"

"दोनों मोटरोंको बेच देना होगा।"

"बिलकुल ठीक!"

"एक दो चारपाई और कुछ कुरसियोंके सिवाय घरके सभी सामान-को बँटवा या नीलामकर देना होगा।"

"यह भी ठीक।"

"लाटूश रोड पर जो खालाकी हवेली हमें मिली है, उसीमें हमें चलकर रहना होगा और इस बँगलेको किराये पर लगा देना होगा।"

"बहुत अच्छा !"

"और तो कोई बात याद नहीं पड़ रही है।"

"मेरे कपड़े—विलायती कपड़े !"

"गांधीके असहयोगमें दाखिल हो रहा हूँ, इसलिये कह रही हो ! मैं इन्हें जलानेके पक्षमें नहीं हूँ, खासकर जब कि विलायती कपड़ोंकी होली काफ़ी जलाई जा चुकी है। लेकिन मेरा खद्दरका कुर्ता और पायजामा सिलकर परसों ही आ रहा है।"

"बड़े ख़ुदगर्ज़ हो सफ़्फ़ू !"

"खद्दरकी भारी-भरकम साड़ी पहिनोगी, सकीना ?"

"मै तुम्हारे साथ दुनियाके अन्त तक चलूँगी।"

"और इन कपड़ोंको ?"

"यही समझमे नहीं आता।"

"यदि नीलाममें बिक जाते तो उसी दामसे गरीबोंके लिये कपड़े खरीदकर बाँट देती, खैर बाँट-बूटकी कोशिश करूँगी।"

(३)

सफ़दर जैसे उदीयमान बैरिस्टरके इस महा त्यागका चारों ओर बखान होने लगा, यद्यपि खुद सफ़दर इसके लिये अपनेसे ज्यादा शङ्करको मुस्तहक समझते थे। अक्टूबर और नवम्बर भर सफ़दरको घूमकर लोगोंमे प्रचार करनेका मौका मिला था। कितनी ही बार उनके साथ सकीना और कितनी ही बार शङ्कर भी रहते थे। उनका मन गाँवोंमे ज्यादा लगता था, क्योंकि उनका विश्वास जितना गाँवके किसानों और श्रमिकों पर था, उतना शहरके पढ़े-लिखों पर नही। लेकिन हफ़्तेके भीतर ही उन्हें पता लगा कि उनकी फसीह उर्दूका चौथाई भी लोगोंके पल्ले नहीं पड़ रहा है। शङ्करने शुरू हीसे "आइन गाइन"में व्याख्यान देना शुरू किया था, जिसके असरको देख सफ़दरने भी अवधीमे बोलनेका निश्चय किया। पहले उनकी भाषामे किताबी शब्द ज्यादा आते थे; किन्तु अपने परिश्रम और शङ्करकी सहायतासे दो

महीने बीतते-बीतते उन्हें अवधीके बहुत भूले और नये शब्द याद हो गये, और ग्रामीण जनता उनकी एक-एक बातको झूम-झूमकर सुनती थी।

दिसम्बर (सन् १९२० ई०) के पहले सप्ताहमें अपने यहाँके बहुतसे राष्ट्रकर्मियोंकी भाँति शङ्करके साथ सफ़दर भी साल भरकी सजा पा फ़ैज़ाबाद जेल भेज दिये गये। चम्पा और सकीना उसके बाद भी काम करती रहीं; किन्तु उन्हें नहीं पकड़ा गया।

जेलमें जाने पर सफदर नियमसे एक घंटा चर्खा चलाते थे। जो लोग उनके गाँधी-विरोधी राजनीतिक विचारोंको जानते थे, उनके चर्खे पर कटाक्ष करते थे। सफदरका कहना था—'विलायती कपड़ेके बायकाटको मैं एक राजनीतिक हथियार समझता हूँ, और साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि हमारे देश मे अभी पर्याप्त कपड़ा तैयार नहीं होता, इसलिये हमें कपड़ा पैदा भी करना चाहिये; किन्तु जिस वक्त देशमें मिलें पर्याप्त कपड़ा तैयार करने लगें, उस वक्त भी चर्खा चलानेका मै पक्षपाती नहीं हूँ।"

जेलमें बैठे-ठाले लोगोंकी सख्या ही ज्यादा थी। ये लोग गाँधीजीके साल भरमें स्वराज्यके वचन पर विश्वासकर बैठे हुये थे, और समझते थे जेलमें आ जानेके साथ ही उनका काम ख़तम हो गया। अभी तक गाँधीवादने पाखड, धोखा और दिखलावेका ठेका नहीं लिया था, इसलिये कह सकते थे कि असहयोगी कैदियोंमे ईमानदार राष्ट्रकर्मियोंकी ही सख्या ज्यादा थी। तो भी सफदर और शङ्करको यह देखकर क्षोभ होता था, कि उनमें अपने राजनीतिक ज्ञानके बढ़ानेकी ओर शायद ही किसीका ध्यान् हो। उनमेंसे कितने ही रामायण, गीता या क़ुरान पढते; हाथमें सुमिरनी ले नाम जपते; कितने सिर्फ ताश और शतरंजमें ही अपना सारा समय ख़तम कर देते।

एक दिन गाँधीवादी राजनीतिके दिग्गज विद्वान् विनायकप्रसादसे सफ़दरकी छिड़ गई। शङ्कर भी उस वक्त वहीं थे। विनायकप्रसादने

कहा— 'अहिंसाका राजनीतिमे इस्तेमाल गाँधीजीका महान् आविष्कार है, और यह अमोघ हथियार है।"

"हमारी वर्त्तमान स्थितिमें वह उपयोगी हो सकता है; किन्तु अहिंसा कोई अमोघ-वमोघ हथियार नहीं है। दुनियामें जितने अहिंसक पशु हैं, उतने ही वही ज्यादा दूसरोंके शिकार होते हैं।"

"पशुमें न हो, किन्तु मनुष्यमें अहिंसा एक अद्भुत बलका संचार करती है।"

"राजनीतिक क्षेत्रमे कोई इसका उदाहरण नहीं है!"

"नये आविष्कारका उदाहरण नहीं हुआ करता?"

'नया आविष्कार भी नहीं है," शङ्करने कहा—"बुद्ध, महावीर, आदि कितने ही धर्मोपदेशकोंने इस पर जोर दिया है।"

"किन्तु राजनीतिक क्षेत्र मे नहीं।"

सफदर—"राजनीतिक क्षेत्रमे इसकी उपयोगिता जो कुछ बढ़ गई है, वह इसीलिये कि आज मानवताका तल कुछ ऊँचा उठ गया है, और अखबारोंमें निहत्थों पर गोली चलानेको लोग बहुत बुरा समझते हैं। अँग्रेज जलियाँवालामे गोली चलाकर इसके परिणामको देख चुके हैं।"

"तो आप समझते हैं, हमारा यह अहिंसात्मक असहयोग स्वराज्यके लिये काफी नहीं है।"

"पहले आप स्वराज्यकी व्याख्या करें।"

"आप भी तो स्वराज्यके युद्धमे आये हैं। आप क्या समझते हैं?"

"मै समझता हूँ, कमाने वालोंका राज्य—केवल कमाने वालोंका!"

"तो आपके स्वराज्यमें तन-मन-धनसे सहायता करने वाले, कष्ट सहकर जेल आने वाले शिक्षितों, सेठों, तालुकदारोंका कोई अधिकार नहीं रहेगा?"

"पहले तो आप देख रहे हैं कि सेठों तालुकदारोंको अमन-सभा बनानेसे ही फ़ुर्सत नहीं है, वह बेचारे जेल क्यों आने लगे? और यदि

कोई आया हो, तो उसे कमाने वालेके स्वार्थसे अपने स्वार्थको अलग नहीं रखना चाहिये।"

शङ्कर और सफ़दर बराबर पुस्तकोंके पढ़ने तथा देशकी आर्थिक, सामाजिक समस्याओं पर मिलकर विचार किया करते थे। पहले तो दूसरे उनकी बातोंको कम सुननेके लिये तैयार थे; किन्तु जब ३१ दिसम्बर (सन् १९२१ ई०)की आधी रात भी बीत गई और जेलका फाटक नहीं खुला, तो उन्हें निराशा हुई, और जब चौरीचौरामें आतंकित, उत्तेजित जनता द्वारा चंद पुलिसके आदमियोंके मारे जानेकी ख़बर सुनकर गांधीजीने सत्याग्रह स्थगितकर दिया तो कितने ही लोग गंभीरतासे सोचने पर मजबूर हुए, और उनमेंसे कुछ आगे चलकर सफदर और शकरकी इस रायसे सहमत हुये—"क्रान्तिका शक्तिस्रोत सिर्फ जनता है, गांधीका दिमाग़ नहीं, गांधीने जनताकी शक्तिके प्रति अविश्वास प्रकटकर अपनेको क्रान्ति-विरोधी साबितकर दिया।"

२०—सुमेर

काल—१९४२ ई०

अगस्त (१९४१) का महीना था। अबकी वर्षा बहुत ज़ोरसे हो रही थी, और कितनी ही बार कितने ही दिनों तक सूर्यका दर्शन नहीं होता था। पटनामें गंगा बहुत बढ़ गई थी और हर वक्त बाँध तोड़कर उसके शहरके भीतर आनेका डर बना रहता था। ऐसे समय बाँधकी चौकसीकी भारी ज़रूरत होती है, और पटनाके तरुणोंने—जिनमे छात्रों-की सख्या अधिक थी—बाँधकी रखवालीका जिम्मा अपने ऊपर लिया था। सुमेर पटना कालेजके एम० ए० प्रथम वर्षका छात्र था। उसकी ड्यूटी दीघाघाटके पास थी। आज आधी रातको मालूम हुआ, कि गगा बढ़ती जा रही है। सवेरे भी उसका बढ़ना रुका नहीं था, और बाँधकी बारी एक बीतेसे भी कम पानीसे ऊपर थी। लोगोंमें भारी आतंक छाया हुआ था, और हज़ारों आदमी जहाँ-तहाँ कुदाल टोकरी लिये खड़े थे, यद्यपि इसमे सदेह था कि ईंटके बाँधको वह एक अगुल भी ऊँचा कर सकते। सुमेर भी सवेरे हीसे बहुत चिंतित होकर बाँध पर टहल रहा था। दोपहरको पानी धीरे-धीरे उतरने लगा, चिन्ताके मारे दबे जाते सुमेरके दिलको कुछ सान्त्वना मिली। अपने पासवाले हिस्सेमे सुमेरने एक और सौम्यमूर्तिको बाँधकी रखवाली करते कितनी ही बार देखा था, और कभी-कभी उसे इच्छा भी हुई थी कि उनसे बात करे, किन्तु बाढ़की चिन्ताने इधर इधर इतना परेशान कर रक्खा था कि बात छेड़नेकी हिम्मत न हुई। आज जब बाढ़ उतरने लगी और आकाशमे बादल भी फटने लगे, तो सुमेरको अपने पड़ोसी प्रहरीको सामने देख बात करनेकी इच्छा हो आई।

दोनोंमे एकका रंग गेहुँआ दूसरेका काला था, और क़द भी एक-

साही मँझोला, किन्तु उम्रमें जहाँ सुमेर इक्कीस सालका छरहरा जवान था, वहाँ दूसरा चालीस सालका ढीला-ढाला कुछ स्थूल शरीरका आदमी मालूम होता था। सुमेरके शरीर पर खाकी हाफपैंट, उलटे कालरकी खाकी हाफशर्ट, कन्धे पर बरसाती, पैरमें रबरकी काली गुर्गाबी थी। उसके साथीके बदन पर खद्दरकी सफेद धोती, वैसा ही कुर्ता गाधी टोपी और एक कंबल था, पैर नंगा था। सुमेर और आगे बढ़ गया, और मुँह पर हँसी की रेखा लाकर बोला—

"शुक्र है, आज बाढ़ उतर रही है।"

"और बादल भी फट रहा है।"

"हाँ हम लोग कितने चिन्तित थे। मैंने एक बार पढ़ा था कि आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व जब पाटलिपुत्र (पटना) बसाया जा रहा था, तो गौतमबुद्धने और तरहसे इसे समृद्ध नगर होनेकी बात करते हुए पाटलिपुत्रके तीन शत्रु बतलाये थे—आग, पानी और आपसकी फूट।"

"तो आप इतिहासके विद्यार्थी हैं।"

"विद्यार्थी तो मैं राजनीतिका हूँ किन्तु इतिहासमें भी शौक है, खास कर मूलके अनुवादोंके पढनेका।"

"हाँ, पानी शत्रुको तो इस प्रकार आज कई दिनसे देख रहे हैं।"

"और आगका भय उस वक्त रहा होगा, जब कि पाटलिपुत्रके मकान अधिकतर लकड़ीके बनते रहे होंगे। शालके जंगलोंकी अधिकताके वक्त यह होना ही था।"

"और फूटने तो सारे भारतकी लक्ष्मीको बर्बाद कर दिया। अच्छा, मैं आपका नाम जान सकता हूँ?"

'मेरा नाम सुमेर है, मैं पटना कालेजके पंचम वर्षका विद्यार्थी हूँ।'

"और मेरा नाम रामबालक ओझा है। मैं भी एक वक्त पटना कालेजका विद्यार्थी रह चुका हूँ, किन्तु उसे बीस सालसे ऊपर हुए। एक मित्रने ज़ोर दिया नहीं तो मैं एम० ए० किये बिना ही असहयोग कर रहा था। ख़ैर! वैसा होने पर भी मुझे अफ़सोस न होता। मुझे

इन वर्षों में साफ मालूम होने लगा है, कि यह स्कूल कालेजकी पढाई अनर्थकारी विद्या है।"

"तो आपने वह विद्या भुला दी होगी?"

"क़रीब क़रीब। बिल्कुल भूल जाती, मैं कोरी सलेट हो जाता, तो कितना अच्छा होता। उस वक्त मैं सचाईको अच्छी तरह पकड़ पाता।"

"अर्थात् बुद्धिके नहीं बल्कि श्रद्धाके पथ पर आँख मूँदकर आरूढ़ होते?"

"श्रद्धाके पथको आप बुरा समझते हैं, सुमेर बाबू?"

"मै बाबू नहीं हूँ ओझा जी! मै एक साधारण चमारका लड़का हूँ। मेरे घरमें एक धूर भर भी अपनी ज़मीन नहीं है, थी, किन्तु ज़मींदारने जबर्दस्ती दख़ल कर वहाँ अपना बग़ीचा बनवा लिया। माँ कूट-पीसकर अब भी पेट पालती है। मुझे पहले एक सज्जनकी कृपा, फिर स्कालरशिप यहाँ तक लाई। इस तरह आप समझ सकते हैं कि मै बाबू शब्दका मुस्तहक़ नहीं हूँ।"

"आदतवश समझिये सुमेर जी! लेकिन मुझे आपका जो परिचय अभी मिला है, उससे मुझे बड़ी खुशी हुई है। जानते हैं, गाधी जीके एक शिष्य को, हरिजन तरुणको इस प्रकार संग्राम करते देख कितना आनंद होता होगा।"

"ओझा जी! मैं आपसे और बाते करना चाहता हूँ, और स्नेहके साथ; इसलिए यदि आप मेरे मतभेदको पहले हीसे जान ले, तो मैं समझता हूँ, अच्छा होगा। मै हरिजन नामसे सख्त घृणा करता हूँ। मै 'हरिजन' पत्रको बिल्कुल पुराण पथी—भारतको अंधकार युगकी ओर खींचनेवाला पत्र—समझता हूँ, और गांधी जीको अपना ज़बर्दस्त दुश्मन।"......

"आप अपनी जाति पर गांधी जीका कोई उपकार नहीं मानते?"

"उतना ही उपकार मानता हूँ, जितना मज़दूरको मिल-मालिकका मानना चाहिए।"

"गाधी जी मालिक बनानेके लिए नहीं कहते।"

"ज़मींदारों, पूँजीपतियों, राजाओंको वली—संरक्षक—गार्जियन—कहनेका दूसरा क्या अर्थ हो सकता है? गाधी जीका हमारे साथ प्रेम इसी लिए है कि हम हिन्दुओंमें से निकल न जायँ। पूनामें आमरण अनशन इसीलिए किया था कि हम हिन्दुओंसे अलग अपनी सत्ता न कायमकर लें। हिन्दुओंको हज़ार वर्षोंसे सस्ते दासोंकी ज़रूरत थी, और हमारी जातिने उस स्थानकी पूर्तिकी। पहले हमें दास ही कहा जाता था अब गाधी जी 'हरिजन' कहकर हमारा उद्धार करनेकी बात करते हैं। शायद हिन्दुओंके बाद हरि ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन रहा है। आप खुद समझ सकते हैं, ऐसे हरिका जन बनना हम कब पसंद करेंगे?

"तो आप भगवान्‌को भी नहीं मानते?"

"किस उपकार पर? हज़ारों वर्षोंसे हमारी जाति पशुसे भी बदतर अछूत, अपमानित समझी जा रही है, और उसी भगवान्‌के नाम पर, जो हिन्दुओंकी बड़ी जातियोंकी ज़रा-ज़रा-सी बात पर अवतार लेते रहे, रथ हाँकते रहे; किन्तु सैकड़ों पीढ़ियोंसे हमारी स्त्रियोंकी इज्ज़त बिगाड़ी जाती रही—हम बाज़ारोंमे सोनपुरके मेलेके पशुओंकी तरह बिकते रहे, आज भी गाली-मार खाना, भूखे मरना ही हमारे लिए भगवान्‌की दया बतलाई जाती है। इतना होने पर भी जिन भगवान्‌के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी, उन्हें माने हमारी बला।"

"तो आप डाक्टर अम्बेडकरके रास्तेको पसद करते होंगे?"

"ग़लत। डाक्टर अम्बेडकर भुक्त-भोगी हैं। मुझे भी प्रथम द्वितीय वर्षमें हिन्दू लड़कोंने होस्टलमे नहीं रहने दिया, किन्तु, मैं अम्बेडकरके रास्ते और कांग्रेसी अछूत नेताओंके रास्तोंमें कोई अन्तर नहीं देखता। और मेरी समझमे वह रास्ता गाँधी-बिड़ला-बजाज रास्तेसे भी मिल जाता है। उसका अर्थ है, अछूतोंमें से भी कुछ पाँच-पाँच छः-छः हज़ार महीना पानेवाले बन जायें। अछूतोंमें भी बिड़ला-बजाज नही तो हजारीमल ही

बन जाये। अछूतोंके पास यदि एक दो देशी रियासतें नहीं, तो एक-दो छोटी-मोटी ज़मींदारियाँ ही आ जायँ। मगर इससे दस करोड़ अछूतोंकी दयनीय दशा दूर नहीं की जा सकती।"

"तो आपका मतलब है शोषण बंद होना चाहिए?"

"हाँ, ग़रीबोंकी कमाई पर मोटे होनेवालोंका भारतमें नामो-निशान यदि न रहे, तभी हमारी समस्या हल हो सकती है।"

"गांधी जी इसी लिए तो हाथके कपड़े, हाथके गुड़, हाथके चावल—सभी हाथकी चीज़ोंके इस्तेमाल करने पर ज़ोर देते हैं।"

"हाँ बिड़लों और बजाजोंके रुपयेके बल पर! जब खादीसंघको लाख दो-लाखका घाटा होता है, तो कोई सेठ उठकर चेक काट देता है। यदि यक़ीन होता, कि गाँधीके चर्खे-कर्घेसे उनकी मिलें बन्द हो जायँगी और मोतीके हार और रेशमकी साड़ियाँ सपना हो जायेंगी, तो याद रखिए ओझा जी! कोई सेठ-सेठानी गांधी जीकी आरती उतारने न आती।"

"तो आप गांधीवादियोंको पूँजीपतियोंका दलाल समझते हैं?"

"मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है। जो कुछ कोर-कसर थी, उसे उन्होंने 'घर फूँक' नीतिके विरुद्ध हिन्दुस्तानी सेठोंके हुआँ हुआँमें शामिल हो पूरा कर दिया।"

"तो आप चाहते हैं, जहाँ जापानी पैर रखनेवाले हों वहाँके कल-कारख़ानोंको जलाकर ख़ाक कर दिया जाय? भारतीयोंने कितने संकट, कितने श्रमके साथ ये कारख़ाने क़ायम किये। ज़रा आप इसपर भी विचार कीजिए सुमेर जी।"

"मैंने संकट और श्रम पर विचार किया है, और इसपर भी कि गांधीवादी मशीनोंके अस्तित्वको एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त नहीं करनेकी बात करते रहे हैं। साथ ही यह भी जानता हूँ—सेठ लोग चाहते हैं कि हमारे कारख़ाने सुरक्षित ही जापानियोंके हाथोंमें चले जायँ। जापानी पूँजीवादके जबर्दस्त समर्थक हैं। जापानी रेडियोको

सुनकर सेठोंको विश्वास है कि जापानी शासनमें कारखानेके मालिक वही रहेंगे। यह छोड़ बतलाइए, उनके दिलमें और कौन-से उच्च आदर्शके निमित्त त्याग-भाव छल-छला आया है ?"

"देशकी अर्जित सम्पत्तिकी वह रक्षा करना चाहते हैं।"

"ओझा जी! मत जले पर नमक छिड़किए। सेठोंको देशकी सम्पत्तिका नहीं अपनी सम्पत्तिका ख्याल है। उनके लिए देश जाये चूल्हा-भाड़में। वह चाहते हैं, ज्यादासे ज्यादा नफा कमाना। मजदूरों की चार पैसा मजदूरी बढानेकी जगह जो लोग हड़तालियोंको मोटरसे कुचलवा देते हैं, उनके लिए देशकी सम्पत्तिके अर्जन-रक्षणकी बात न कीजिए।"

"यदि उनके बारेमे यह मान भी लिया जाये, तो भी गाधी जीकी ईमानदारी पर तो आपको सदेह नही होना चाहिए।"

"मैं ईमानको आदमीके कामसे, उसके वचनसे तौलता हूँ। मैं गाधी जीको दूध पीनेवाला बच्चा नहीं मानता। एंड्रूजके फंडके लिये उन्हें पाँच लाखकी ज़रूरत थी। पाच ही दिनमे बंबईके सेठोंने गाधी जीके चरणोंमें सात लाख अर्पित कर दिये। सेठोका जितना बड़ा काम यह कर रहे हैं, उसके लिए इंग्लैंड-अमेरिकाके सेठ सात करोड़की थैली पेश कर सकते थे, यह तो अत्यत सस्ता सौदा रहा।"

"इसका मतलब है रिश्वत।"

"सेठ भगवान्‌को भी कुछ चढ़ाते हैं, तो सिर्फ उसी ख्यालसे। उनके द्वार पर 'लाभ शुभ' लिखा रहता है।"

"तो चर्खे-कर्घेको आप शोषणका शत्रु नहीं मानते ?"

"उलटा मैं उन्हें शोषणका ज़बर्दस्त पोषक मानता हूँ।"

"तब तो मिलको भी आप शोषणका शत्रु समझते होंगे!"

"सुनिए भी तो मैं क्यों शोषक मानता हूँ, दुनिया जिस तरह पत्थरके हथियारोंको छोड़कर बहुत आगे चली आई है, उसी तरह चर्खे-कर्घेसे भी बहुत आगे चली आई है, मैने पटना म्युज़ियममें हज़ार

वर्ष पुरानी ताल-पत्र पर लिखी पुस्तक देखी है। उस वक्त सेठोंके वही-खाते, तथा नालंदाके विद्यार्थियोंकी पुस्तकें और नोटबुकें इसी तालपत्र पर लिखी जाती थीं। गाधी जी सात जन्म तक 'कहते रह जायें 'लौट चलो तालपत्रके युगमें', मगर दुनिया 'टीटागढ़के कागज़, मोनों टाइप, रोटरी छापेख़ानेके युगसे लौटकर तालपत्रके युगमें नहीं जायेगी। न जानेमे उसका कल्याण है क्योंकि इससे सेवा-ग्रामकी भजनावलीके फैलनेमें भले ही दिक्कत न हो, किन्तु हर एक व्यक्तिको शिक्षित—सो भी आज तकके अर्जित ज्ञान-विज्ञानमें—देखना असम्भव होगा। फ़ासिस्त लुटेरोके टैंकों, हवाई जहाज़ों, पनडुब्बियों, गैसोंके मुक़ाबिलेमें यदि गाँधी जी पत्थरके हथियारोंकी ओर लौटनेकी कोई बात करें, तो इसे रत्ती भर अकल रखनेवाली जाति भी नहीं मान सकेगी, क्योंकि वह सीधी आत्महत्या होगी।"

"तो आप अहिंसाके महान् सिद्धान्तको भी नहीं मानते?"

"गाँधी जीकी अहिंसा, खुदा बचाये उससे। जो अहिंसा किसानो और मज़दूरो पर काग्रेसी सरकारों द्वारा चलाई जाती गोलियोंका समर्थन करे और फासिस्त लुटेरोंके सामने निहत्था बन जानेके लिए कहे, उसे समझना हमारे लिए असम्भव है। मैं आपके पहले प्रश्नको खतमकर देता हूँ। सेठ जानते हैं कि चर्ख़े-कर्घेसे उनके कारख़ानोंका बाल भी बाँका नहीं हो सकता—चर्ख़े-कर्घे जब तक मिलोंके मालसे सस्ते और अच्छे कपड़े बाज़ारमें नहीं ला सकते, तब तक उनका अस्तित्व सेठोंके दान पर निर्भर है। चर्ख़ा-कर्घावाद शोषणकी असली दवा साम्यवादके रास्तेमे भारी बाधक है। कितने ही लोग बेवकूफी से समझते हैं कि शोषण रोकनेके लिए साम्यवाद—'कल-कारख़ानों पर जनता का' अधिकार—से अच्छी दवा चर्ख़ा-कर्घावाद है; बस इसी नीयतसे दुनियाको मिलका कपड़ा पहनानेवाले सेठ चर्खाके भक्त हैं और गाँधी जी इसे भली भाँति समझते हैं।"

"यह उनकी नीयत पर हमला है?"

"उनकी एक-एक हरकत मुझे शोषितों—और भारतमें सबसे

अधिक शोषित हमारी जाति—के लिए ख़तरनाक है। हमे दिमाग़ी गुलामीके अड्डे शोषकोंके ज़बर्दस्त पोषक पुरोहितोंकी दूकानों—इन मंदिरोंमे ताला लगवाना चाहिए—और हमें फँसानेके लिये गाँधी जी उन्हें खुलवाना चाहते हैं। पुरानी पोथियों, अमीरोंके टुकड़ेसे पलनेवाले सन्तोंकी वाणियोंको यदि हम आगमें नहीं जलाते तो सात तालेमें बंद कर देना चाहिए; किन्तु उन्हींकी दुहाई देकर गाँधी जी हमें गुमराह करना चाहते हैं। वर्णव्यवस्था जैसी मरण-व्यवस्थाका भारतमें नाम नही रहने देना चाहिए किन्तु गाँधी जी उसकी अनासक्ति योगसे लच्छेदार व्याख्या करते हैं, इन सबके बाद हरिजन उद्धार सिर्फ ढोंग नहीं तो क्या है? इससे कुछ ऊँची जाति के हरिजन-उद्धारकोंको जीविका भले ही मिल जाय, मगर उद्धारकी आशा अंधा ही कर सकता है।"

"तो आप नहीं चाहते कि अछूत सवर्ण सब एक हो जायँ?"

"कालने हमें एक कर दिया है; किन्तु गाँधी जीके प्रिय धर्म, भगवान, पुराणपंथिता उसे हमें समझने नहीं देती। मुझे देखिए, ओझा जी! मेरा रग गेहुँआ, नाक ज़्यादा पतली ऊँची और आपका रंग काला, नाक बिलकुल चिपटी। इसका क्या अर्थ है? मेरेमें आर्य रक्त अधिक है। आपमें मेरे पूर्वजोंका रक्त अधिक है। आपके पूर्वजोने वर्ण-व्यवस्थाकी लोहेकी दीवार खड़ी कर बहुत चाहा, कि रक्त-सम्मिश्रण न होने पाये, किन्तु चाह नहीं पूरी हुई, इसके सबूत हम आप मौजूद हैं। वोल्गा और गंगाके तटके खून आपसमें मिश्रित हो गये हैं। आज वर्ण (रंग) को लेकर झगड़ा नहीं है—आपको कोई ब्राह्मण जातिसे खारिज करनेके लिए तैयार नहीं है। सारी बातें ठीक हो जायें, यदि धर्म, भगवान्, पुराणपंथिता हमारा पिंड छोड़ दे; और यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि शोषक और गाँधी जी जैसे उनके पोषक मौजूद हैं।"

"मैं आपके तीखे शब्दोंको सुनकर नाराज़ नहीं होता।"

"जला हुआ दिल और जवानी उसके पीछे है ओझा जी ! इस लिए मेरी बातसे कष्ट हुआ हो तो क्षमा कीजियेगा।"

"नहीं मैं बुरा नहीं मानता। किन्तु यदि चर्खे-कर्घे जैसी भारतकी चीज़का आप फिरसे स्थापित होना संभव नहीं समझते, तो क्या विदेशी साम्यवादके लिए भारतकी भूमिको उर्वर समझते हैं ?"

"शोषकोंको जो बात पसंद नहीं वही विदेशी और असंभव है। चूँकि इनकी कृपासे करोड़पति हो गये, इसलिए सेठ लोगोंके लिए चीनीकी मिलें विदेशी नहीं रहीं; कपड़े, जूट, काग़ज़, सीमेंट, लोहे, साइकिल, जहाज़, हवाई जहाज़, मोटर, काँच, बिजलीके सामान, फौंटेनपेन, जूते…की, बिजली या भापसे चलनेवाली लाखों-करोड़ोंकी फैक्टरियाँ विदेशी नहीं रहीं। रेडियो, टेलीविज़न (दूरदर्शक-रेडियो), फ़िल्म, टैंक आदि जैसे ही सेठोंके पाकेटमें मज़दूरोंकी कमाईके करोड़ों रुपये चुपकेसे डालने लगेंगे, वैसे ही उनकी विदेशीयता जाती रहेगी। शोषणमें सहायक सारे विदेशी यंत्र उनके लिए स्वदेशी हैं, किन्तु शोषण-ध्वंसक उपाय—साम्यवाद—सदा स्वदेशी बना रहेगा। ईमानदारी इसे कहते हैं ओझा जी !"

"साम्यवाद धर्मका विरोधी है, और भारत सदासे धर्मप्राण रहा है, ज़रा इस दिक़्क़तका भी ख़्याल करें सुमेर जी।"

"आप कालेजकी सारी पढ़ी-पढ़ाई विद्याको भूल गया कहते हैं, इसलिए मैं क्या कहूँ ! जब धर्मका नाम आप लोग लेते हैं, तो आपके सामने सिर्फ हिन्दू धर्म रहता है। गाँधीजीने बजाजजीके गोसेवा-मण्डलको भी आशीर्वाद दिया है जिसमें मांस छोड़ सब चीज गायकी ही खानेकी प्रतिज्ञा करायी जाती है। पेशाब और पाखानेके भी यदि गोभक्षक, गोभक्षकका भेद करें तो भारतमें गोभक्षक आधे से बढ़ जायेंगे, हमारी जाति भी गोभक्षक है, आप जानते हैं। वैसे भी तो भारतमें एक चौथाईके करीब लोग मुसलमान हैं, करोड़के क़रीब ईसाई, और कुछ लाख बौद्ध। यदि इन धर्मोंको भी आप धर्ममें शुमार करते हैं, तो पृथिवीका कौन

देश है जहाँ धर्मके पक्के विश्वासी नहीं हैं ! गाँधीजीके मित्र भूतपूर्व लार्ड-इर्विन तथा आजके लार्ड हेलीफैक्स एक ज़बर्दस्त ईसाई सन्त हैं। आज तक धर्मकी दुहाई देकर ही धर्मप्राण अँगरेज़ोंको साम्यवादसे दूर रहनेके लिए यह संत लोग प्रचार करते रहे। अरब, तुर्की, ईरान अफ़ग़ानिस्तानके मुसलमान हिन्दी मुसलमानोंसे कम धर्मप्राण नही हैं। लाखों सुन्दरियोंके स्वेच्छासे कटवाये केशोंके रस्सेसे जहाँ मन्दिर बनानेके लिए लकड़ियाँ ढोई गई, उस जापानको आप कम धर्मप्राण नहीं कह सकते। सभी शोषक ज़बर्दस्त धर्मप्राण होते हैं, ओझा जी! और सभी शोषण-शत्रु धर्म-शत्रु घोषित किये जाते हैं। यदि साम्यवादको विदेशी ही मान लें, तो भी जैसे ईसाई, इस्लाम जैसे विदेशी धर्म, रेल, तार, हवाई जहाज़, कल-कारख़ाने जैसी विदेशी चीज़ें हमारी आँखोंके सामने स्वदेशी बनकर मौजूद हैं, वैसे ही साम्यवाद भी स्वदेशी हो जायेगा— वल्कि हो गया है।"

(२)

पटनामें शामके वक्त घूमनेके लिए लॉन और हार्डिंग-पार्क दो ही जगह हैं, और दोनों ही को ऐसी मनहूस हालत मे रक्खा गया है, कि वह स्वयं किसी को आकर्षित कर खींच लाने का सामर्थ्य नहीं रखतीं; ता भी जिनको दिल-बहलाव चहलक़दमी, दोस्तोंसे मिलनेकी ख़्वाहिश होती है, वे इन्हीं जगहोंमें पहुँचते हैं। अँधेरा हो रहा था, तो भी तीन तरुणोंकी बातचीत ख़तम नहीं हो रही थी, और वे बाँकीपुर (पटना)के लॉन—मैदान—में डटे हुए थे। एक कह रहा था—

"साथी सुमेर! मै फिर भी कहूँगा, तुम एक बार फिर सोचो, तुम बहुत भारी क़दम उठाने जा रहे हो।"

"मौतसे खेलनेसे बढ़कर क़दम उठानेकी क्या बात हो सकती है! और ~रूप! इसे तो पक्का समझो, कि मैंने जल्दी नहीं की है। क़दम ही यह जल्दीका नहीं हो सकता था।"

"हवामे उड़ना भाई! मुझे तो कोठेकी छतके किनारे खड़ा होने मे भी डर लगता है।"

"कितने ही लोगोंको साइकलपर चढ़नेमें भी डर लगता है, और तुम उसे दोनों हाथ छोड़कर दौड़ाते हो।"

"ख़ैर, लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आई कि मजदूरिनके लड़के सुमेरको इस साम्राज्यवादी लड़ाईमें जान देनेकी क्यों सूझी?"

"इसलिए कि इसी लड़ाईके साथ मजदूरिनके लड़के और उसकी सारी जमातका भविष्य बँधा हुआ है। इसीलिए कि यह लड़ाई अब सिर्फ़ साम्राज्योंका ही फैसला नहीं करेगी, बल्कि शोषणका भी फैसला करेगी।"

"तो क्या तुम इसे क़बूल नहीं करते, कि इस लड़ाईके लिए सबसे बड़े दोषी अँग्रेज पूँजीपति हैं?"

बाल्डविन् चेम्बरलेन जिनके स्वार्थके प्रतिनिधि थे? हाँ, मै स्वीकार करता हूँ। उन्होंने ही मुसोलिनी, हिटलरको पोसकर बड़ा किया, जिसमें साम्यवादियोंसे शोषकवर्गको त्राण मिले। लेकिन भस्मासुरने पहले बैलनाथ ही पर हाथ साफ़ करना चाहा, और जब तक यह तमाशा होता रहा, तब तक मैने भी इस बड़े क़दमको उठानेका निश्चय नहीं किया। लेकिन आज भस्मासुर बैलनाथपर नहीं हमारे ऊपर हाथ रखना चाहता है।"

"हमारे ऊपर! मुझे तो कोई अन्तर नहीं मालूम होता, पहिलेसे।"

"आपको अन्तर नहीं मालूम होता क्योंकि आपका वर्ग—सेठ वर्ग—फासिस्त शासनमें भी घी चुपड़ीकी आशा रखता है। क्रुप्, मित्सुईकी पाँचो घीमें हैं, इस लड़ाईके होने से; किन्तु, सोवियतके पराजित हानेपर शोषितों—मज़दूरों, किसानों—को कोई आशा नहीं। कसाई हिटलर और तोजोके राज्यमे किसान बकाश्तकी लड़ाई नहीं लड़ सकते, रूपकिशोर बाबू! नहीं मज़दूर बड़ेसे बड़े अत्याचारके लिए हड़ताल कर सकते हैं। फासिज़्म मज़दूर किसानोंको पक्के मानीमें दास बनाना चाहता है। हमारे लिए सोवियत बहुतसे राष्ट्रोंमें एक नहीं,

बल्कि, वही एकमात्र राष्ट्र है। उसे ही दुनियाके किसान मज़दूर अपनी आशा, अपना राष्ट्र कह सकते हैं। डेढ़ शताब्दीके लाखों, करोड़ोंकी क़ुर्बानियोंके बाद मानवताके लिए, सनातन शोषितोंके लिए यह साम्यवादी प्रदीप पृथिवीपर आलोकित हुआ, एक बार इस प्रदीपको बुझ जाने दीजिए, फिर देखिए कितने दिनोंके लिए दुनिया अँधेरेमें चली जाती है। हम जीते जी इस भीषण काडको अपनी आँखोंके सामने होते चुपचाप नहीं देख सकते।"

"लेकिन, सुमेर भाई! और भी तो समाजवादी देशमें हैं; वे भी दुनियासे शोषणको मिटाना चाहते हैं।"

"जिनको सेवाग्रामसे फैलता अन्धकारही प्रकाश मालूम होता है; ऐसे समाजवादियोंसे शैतान बचाये। ऐसे तो हिटलर भी अपनेको समाजवादी कहता है। गाँधीजीके चेले भी उन्हें समाजवादी कहते हैं। समाजवादी कहनेसे कोई समाजवादी नहीं होता। जानते हैं हिटलर, तोजो की विजयसे हिन्दुस्तानका पूँजीवाद और पूँजीपतिवर्ग बर्बाद नहीं, बल्कि वह और मज़बूत होंगे; किन्तु फासिस्त-दस्यु मजदूरों, किसानोंको सास तक लेने नहीं देंगे, और साम्यवादियोंकी क्या हालत होगी, इसके लिए, इटली और जर्मनीका हालका इतिहास देखिये। वहीं क्यों? सिर्फ फ्रांसमें हर रोज़ जो कम्यूनिस्त गोलीसे उड़ाये जा रहे हैं; उन्हींको देख लीजिये। जो अपनेको मार्क्सवादी कहकर अपनेको इस युद्धसे अलग रखना चाहता है, वह या तो अपनेको धोखा दे रहा है या दूसरोंको। हिटलर और तोजोके शासनमें मार्क्सवादी समाजवादियोंकी जानकी क़ीमत एक गोलीमात्र है, इसे हम सब अच्छी तरह जानते हैं। फिर कोई समाजवादी यदि अपनेको तटस्थ कह सकता है, तो चमगादड़ की नीतिसे ही। सोवियतके ध्वसके बाद जो समाजवादका झंडा उड़ाने की हाँक रहे हैं, उन्हें हम तो पागल कह सकते हैं या धोखेबाज़।"

"तो आपका ख़्याल है, इस युद्धमें कोई तटस्थ रही नहीं सकता।

"हाँ, यह मेरी पक्की राय है, कि जिसका मस्तिष्क ठीकसे काम कर

रहा है, उसने अपने लिये एक पक्ष स्वीकार कर लिया है, क्योंकि इस लड़ाईका परिणाम शोषण-विरोधी शक्तियोंको या तो ख़तम करना होगा या उनकी शक्तिको इतना प्रबल कर देगा, कि फिर मुसोलिनी, हिटलर, तोजो या उनके पिताओं—बाल्डविन चेम्बरलेन, हेलीफेक्सोंके लिये दुनियामें जगह नहीं रह जायेगी। हिन्दुस्तानमें सुभाषचन्द्र और उनके अनुयायियोंने अपना स्थान चुन लिया है; और जिनको आप तटस्थ समझते हैं, वह भी तय कर चुके हैं। उनकी तटस्थता सिर्फ ऊपरी दिखावा है, क्योंकि फासिस्तोंके रवैयेसे वह ना-वाक़िफ़ नहीं हैं।"

"लेकिन हमारे यहाँके अंग्रेज शासकोंके मनोभावको देख रहे हो न!" अन्धे हैं ये लोग, तीस बरस पहिलेके ज़मानेमें अब भी अपने को रखनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन क्या, समझते हो लड़ाईके बादकी दुनियाँ इन पुरानी फिसड्डियोंके लिए जीती जा रही है। हम जानते हैं, ये लोग हमारी युद्धकी तैयारीमें पग पग पर बाधा डालेंगे, क्योंकि वह हरएक चीज़को गुज़रे ज़मानेकी दृष्टिसे देखते हैं।"

"हाँ, देख नहीं रहे हो जिन लोगोंकी सूरतें अमन सभाओंमें ही शोभा देती थीं, अब वही राष्ट्रीय मोर्चेके नायक बनकर जनताके सामने दहाड़ रहे हैं। हमारे गवर्नर, गवर्नर-जेनरल जनताको कुर्बानियां करनेका उपदेश दे रहे हैं।" जब कि उनके अपने खर्चेको देखकर हमारा माथा चकराता है। हमारे यहाँ कमसे कम मज़दूरी है एक आना रोज़, जिसके हिसाबसे २५) सालाना आमदनी हुई और इनकी तनखाह है।

	रुपया	
वाइसराय	२,५०,८००	अर्थात् ग़रीब मजदूरकी आमदनीका १० ००० गुणा
बंगाल गवर्नर	१,२०,०००	४८०० गुना
युक्तप्रान्त गवर्नर	" "	" "
बिहार गवर्नर	१,००,०००	४ ००० गुना

यह बाकी खर्च छोड़नेपर है, यदि दूसरे खर्च भी लिए जायँ तो मार्ग-व्यय और छुट्टी व्यय छोड़कर भी बंगाल गवर्नरका सालाना खर्च है ६,०७,२०० रुपया अर्थात् घुरहू मजदूरकी आमदनीका ४२,२६१ गुना। इससे ज़रा मिलाइए इंगलैंडके मज़दूरको जिसकी अल्पतम मज़दूरी ८५ शिलिंग (साढ़े ५६ रु० से अधिक) या ७८ शिलिंग (५२ रु० से अधिक) प्रति सप्ताह कोयलेके खानोंमे मंजूर हुई है। खेतीके मजदूरभी ४५ रुपया सप्ताहसे ज्यादा पाते हैं। जिसका कार्य है २०० या २२१ पौंड वार्षिक मजदूरी और महामंत्री इस हिसाबसे सिर्फ ३६ गुना ज्यादा तनखाह पाता है। सोवियतमें १२००० रूबील महामंत्रीको मिलता है, और मजदूरोंकी बहुत भारी तादाद है जो इतना वेतन पाती है, जबकि सबसे कम तनख्वाह पाने वाला मज़दूर उससे छठे हिस्सेसे कम नहीं पाता। अब मिलाइये—

भारतमें बंगाल गवर्नर	घुरहूसे	४२,२६२ गुना
इगलैंडमें महामत्री	"	३६ गुना
सोवियतरूसमें "	"	६ गुना

"और सेठोंकी आमदनीसे घुरहूकी आमदनीको मिलाओगे तो कलेजा फटने लगेगा।"

"यह सरासर लूट है भाई सुमेर।"

"इसलिए मैं कहता हूँ, हिन्दुस्तानमें नौकरी करनेवाले स्वार्थी, कायर दूर तक देखनेमे असमर्थ इन अंग्रेजोंसे हम कोई आशा नही कर सकते। हम इनके लिए इस लड़ाईको लड़ने और जीतने नहीं जा रहे हैं। हम मर रहे हैं उस दुनियाके लिए जो इस पृथिवीके छठे हिस्सेपर है और जिसको फासिस्त ख़तम करने जा रहे हैं। हम उस आने वाली दुनियाँके लिए मरने जा रहे हैं, जिसमेंकी मानवता स्वतत्र और समृद्ध होगी।"

समद अब तक चुप था, अब उसने भी कुछ पूछनेकी इच्छासे कहा—

"साथी सुमेर ! तुमसे कितनी ही बातोंमें मैं सहमत हूँ, और कितनी ही बातोंमें असहमत । किन्तु तुम्हारी रायकी मैं कितनी इज्जत करता हूँ, यह तुमसे छिपा नहीं है । मैं भी समझता हूँ, इस संसारव्यापी संघर्ष में हम तटस्थ नहीं रह सकते । लेकिन दोस्त ! जब चुनाव आदि तय होकर तुम भरती हो गये, तब तुमने हमें ख़बर दी; कुछ पहिले तो बतलाना चाहिये था ?"

"पहिले बतलाता, और चुनावमें छूट जाता । इसलिए भरतीके बाद चौबीस घंटेकी उड़ान करके मैंने मित्रोंको जाहिर किया । अब ज़ाहिर करनेमें कोई हर्ज भी नहीं, क्योंकि परसों ही मैं जा रहा हूँ अम्बाला उड़न्तू स्कूल में ।"

"और माको खबर दे दी ?"

"माके लिए जैसाही पटना वैसा ही अम्बाला, जब तक मै खोल कर साफ़ न लिख दूँ कि मैं लड़ाईमें मृत्युके मुँहमें जा रहा हूँ, तब तक उसके लिए एक सा ही है । खोलकर लिखनेका मतलब है, सदाके लिये उसकी नींदको हराम कर देना । मैंने निश्चय किया है कि जब तक जीवित रहूँगा, पत्र लिखता रहूँगा, उसीसे उसको सन्तोष रहेगा ।"

"मुझे तुम्हारे साहसका बारबार ख़्याल आता है ?"

"मानव होनेकी क़ीमतको हमें हर वक्त चुकानेके लिए तैयार रहना चाहिये, समद ! और फिर एक आदर्शवादी मानव होने पर तो हमारी जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं ?"

"तो तुम्हारा विश्वास है, यह लड़ाई जबर्दस्त उथल-पुथल लायगी ।"

"पिछली लड़ाईने भी कुछ कम नहीं किया, सोवियत रूसका अस्तित्व—दुनियाँके छठे हिस्सेपर समानताका राज्य—यह कम चीज़ नही है; किन्तु इस लड़ाईके साथ जो परिवर्तन उपस्थित होगा, वह नई धरती, नये आसमानको लायेगा, दोस्त जिधर सोवियत राष्ट्र है, जिधर लालसेना है; जिधरकी विजयके लिए आज चीन, इंगलैंड,

अमेरिकाकी जनता सर्वस्वकी बाजी लगाकर लड़ रही है उस पक्षकी जीतमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।"

समद और रूपकिशोरकी इधर पाकिस्तानको लेकर बहुत चल रही थी आज रूपकिशोरने फिर उसी सवालको छेड़ दिया—

"गाँधवादी स्वराज्य हो या साम्यवादी, इसमें हमारा और तुम्हारा मित्र सुमेर मतभेद हो सकता है, किन्तु, स्वराज्य भारतके लिए होगा, इसमें तो सन्देह नहीं ?"

'भारत भी एक निराकार शब्द है रूप बाबू। जिसके नाम पर बहुत-सी भूल भुलैयोंमें डाला जा सकता है, स्वराज्य भारतीयोंके लिए चाहिये, जिसमें भारतीय अपने भाग्यका आप निर्णय करें, और उसमें भी आसमानसे टपका स्वराज्य चन्द बड़े आदमियों तक ही सीमित नहीं होना चाहिये।"

रूप—"खैर, वैसे भी ले लीजिये, किन्तु स्वराज्यमें जीवित भारत को टुकड़े-टुकड़े तो नहीं होने देना चाहिये।"

सुमेर—"यह फिर भूल-भुलैयाके शब्दको इस्तेमाल कर रहे हैं। भारतका खडित और अखड रहना, उसके निवासियों पर निर्भर है। मौर्योंके समय—हिन्दूकुशसे परे आमू दरिया भारतकी सीमा थी, और भाषा, रीति-रिवाज इतिहासकी दृष्टिसे अफगान जाति (पठान) भारतके अन्तर्गत हैं, दसवी सदी तक क़ाबुल हिन्दू-राज्य रहा, इस तरह हिंदुस्तान की सीमा हिन्दूकुश है। क्या अखड हिन्दुस्तान वाले हिन्दूकुश तक दावा करनेके लिए तैयार हैं ? अफ़गानोंकी इच्छाके विरुद्ध नहीं; तो सिंधुके पश्चिम बसने वाले सरहदी अफगानों (पठानों)को भी उनकी इच्छाके विरुद्ध अखंड हिन्दुस्तानमें नहीं रखा जा सकता। फिर वही बात सिंध, पंजाब, काश्मीर, पूर्वी बगालमें क्यों नही लेनी चाहिये ?"

रूप—"अर्थात् उन्हें भारतसे निकल जाने देना चाहिये ?"

सुमेर—"हाँ, यदि वे इसीपर तुले हुए हैं। हम जनताकी लड़ाई लड़ रहे हैं, इसका अर्थ है, किसी देशकी जनताको उसकी इच्छाके

विरुद्ध राजनीतिक परतन्त्रतामें नहीं रक्खा जा सकता। पाकिस्तानका फैसला हिन्दुओंको नहीं करना है, उसकी निर्णायक है मुस्लिम बहुमत प्रान्तोंकी जनता। यदि हम भारतमें जनताका नहीं शोषकोंका शासन कायम करना चाहेंगे, तो पाकिस्तान होकर रहेगा; यदि दिमाग़ी और शारीरिक श्रम करने वाली जनताका शासन कायम करना चाहते हैं, तो भारत, अनेक स्वतन्त्र जातियोंका एक अखंड देश रहेगा। जबानी एक जाति, एक जातीयताके लिए एक भाषा, एक खान-पान, एक ब्याह-शादी सम्बन्धकी ज़रूरत है, जो साम्यवाद ही करा सकता है। इसपर भी भाषाओंके ख्यालसे हमें ८०से ऊपर स्वतंत्र जातियाँ माननी पड़ेंगी।"

"अस्सीसे ज़्यादा! तुमने तो पाकिस्तानको भी मात कर दिया।"

"भाषाओंको मैंने नहीं बनाया जनताके राज्यमें उसकी मातृभाषा को ही शिक्षाका माध्यम बनाना होगा, और मातृभाषा वही है, जिसके व्याकरणमें बच्चाभी कभी गलती नहीं करता। सोवियत संघ ७० जातियों का एक बहुजातिक राष्ट्र है, उसमें दूनी जन-संख्या वाला भारत यदि १० जातियोंका बहुजातिक राष्ट्र है, तो आश्चर्यकी क्या ज़रूरत?"

"तो तुम पाकिस्तानके पक्षमें हो?"

"जब तक मुस्लिम जनताका उसके लिए आग्रह है। आज हर विचारके मुस्लिम नेता एकमत हैं, कि पाकिस्तानकी माँगको मान लेना चाहिये और मैं समझता हूँ गैर-मुस्लिमोंको इस न्याय्य माँगको ठुकरानेका कोई हक़ नहीं, जिस मुसलमान बहुमत प्रान्तकी बहुसंख्यक जनता भारतीय संघसे अलग जाना चाहती है, उसे वह अधिकार होना चाहिये।"

(३)

नीचे काला समुद्र है, जिसके शान्त जलपर कहीं जातिका चिह्न नहीं मालूम होता और सामने दूर सफेद बादलोंका एक विशाल क्षेत्र वहाँ आसमानमें अपनी गतिके जाननेका कोई साधन नहीं सिवाय गति

मापक यन्त्रके जो कि सुमेरके आगे लगा हुआ है। तीन सौ मील प्रति-घंटेकी चालसे बने यानको उड़ाना! सुमेरका ख़्याल एक बार उस युगमें चला गया, जब कि मनुष्य पत्थरके अनगढ़ हथियारोंको हीअपना सबसे बड़ा आविष्कार, सबसे बड़ी शक्ति समझता था, किन्तु आज वह आकाशका राजा है। मानवता कितनी उन्नत हुई है। किन्तु, उसी वक्त उसका ख़्याल मानवताके शत्रुओं—फ़ासिस्टोंकी ओर गया, जो कि मनुष्यके दिमाग़की इस अद्भुत देनको मानवताके पैरोंमें ग़ुलामीकी बेड़ियाँ डालनेमें लगा रहे हैं। सुमेरका बदन सिहर गया, जब ख़्याल आया कि जापानी फ़ासिस्त भारतके पड़ोसी बर्मामें आ गये हैं। उस वक्त उसकी नज़रोंके सामने कदमकुआँके वह घर और उनमे रहनेवाली वे स्त्रियाँ एक एक कर आने लगीं; जिनमें एक उसकी प्रिया है, और दूसरी भी कितनी ही हैं। जिन्होंने इस अछूत माके मेधावी आदर्शवादी लड़केको बेटा और भाईके तौरपर ग्रहण किया। फ़ासिस्तोंके लिए अपार घृणासे उसका दिल खौलने लगा। उसी वक्त उसे सामने तीन लाल सूर्य वाले विमान उड़ते दीख पड़े। सुमेरने अपने मशीनगनको फ़ोनसे कहा, और दो मिनटमें फासिस्त विमानोंके बीचमें पहुँच गया। बात करनेमें देर लगती है, लिखनेमें तो और भी, किन्तु पता नही लगा, सुमेरके गनर शरीफ़ने किस तरह अपनी मशीनगनको ट्र-ट्र-ट्र किया, और किस तरह सुमेरने अपने विमानको ठीक जगहपर पहुँचाया, और किस तरह दस मिनटके भीतर ही तीनों जापानी फासिस्त विमान परकटे चीलकी भाँति समुद्रमें गिरे।

सुमेरका अपना जौहर दिखलानेका यह पहला मौका था, किन्तु इस सफलता पर उसे बहुत संतोष हुआ। उसने विमानको लौटते वक्त शरीफसे कहा—

"शरू भाई! इसने अपनी कीमत अदा करा ली। इसमेंसे हर एक यदि तीन तीन फासिस्तोंको खतम करे तो कितना अच्छा हो!"

"मेरा मन भी अब बड़ा हलका मालूम होता है। अब मरना मुफ्त नहीं कहा जायगा"।

"अब हम जितने दिन जियेंगे, जापानी फासिस्तोंको मार मार नफे पर नफे कमाते रहेंगे।"

सुमेर दो सौ दिन जीता रहा। उसने सौ जापानियोंको नष्ट किया। अन्तिम दिन बंगालकी खाड़ीमें उसे काम मिला। एंडमनके पच्छिम जापानी जंगी बेड़ा जा रहा था। सुमेरने चालीस हजार टनका एक जंगी महापोत देखा। बेड़ेके आस पास रक्षक विमान उड़ रहे थे, किन्तु दूर बादलोंमेंसे झाँकती सुमेरकी आँखोंको उन्होंने नहीं देखा।

सुमेरने अपने गनरको टारपीडो तैय्यार रखनेकी आज्ञा दी। बादल वहाँसे बेड़ेके ऊपर तक चला गया था। सुमेरने पूरी गतिसे अपने विमानको चलाया, दुश्मनके विमानोंको पता नहीं लग सका, कि कब कोई विमान जंगी पोतके ऊपर पहुँचा, कब भारतीय विमान वाहकने टारपीडो लिये दिये अपने विमानको महापोत पर झोंक दिया। सुमेर और उसके गनरका पता नहीं लगा, किन्तु साथ ही वह उस जंगी महापोतको भी लेते गये।